मुरली मनोहर श्री श्याम

श्री भागवत-दर्शन—

भागवती कथा

(चालीसवाँ खण्ड)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्वता ।
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती-कथा' ॥

—••⊱❖⊰••—
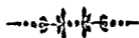
लेखक
श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

प्रकाशक
सङ्कीर्तन-भवन, प्रतिष्ठानपुर झूसी (प्रयाग)

द्वितीय संस्करण] [illegible] मूल्य १-० [illegible]

मुद्रक—भागवत प्रेस, झूसी (प्रयाग)

॥ श्रीहरिः ॥

(ब्रजभाषा में भक्तिभाव पूर्ण, नित्य पाठ के योग्य अनुपम महाकाव्य)

श्रीभागवतचरित

[रचयिता—श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी]

श्रीमद्भागवत, गीता और रामायण ये सनातन वैदिक धर्मावलम्बी हिन्दुओं के नित्य पाठ के अनुपम ग्रंथ हैं। हिन्दी भाषामें रामायण तो गोस्वामी तुलसीदासजी कृत नित्य पाठ के लिये थी, किन्तु भागवत नहीं थी, जिसका संस्कृत न जानने वाले भागवत-प्रेमी नित्य पाठ कर सकें। इस कमी को "भागवत चरित" ने पूरा कर दिया। यह अनुपम ग्रंथ ब्रजभाषा की छप्पय छंदों में लिखा गया है। बीच बीच में दोहा, सोरठा, छन्द, लावनी तथा सरस भजन भी है। सप्ताह क्रम से सात भागों में विभक्त है, पाक्षिक तथा मासिक पाठ के स्थलों का संकेत है। श्रीमद्भागवत की समस्त कथाओं को सरल, सरस तथा प्रांजल छंदों में गाया गया है। सैकड़ों नर-नारी इसका नित्य नियम से पाठ करते हैं, बहुत से कथावाचक पण्डित हारमोनियम तबले पर गाकर इसकी कथा करते हैं और बहुत से पंडित इसी के आधार से भागवत सप्ताह बाँचते हैं। लगभग नौ सौ पृष्ठकी पुस्तक सुन्दर चिकने २८ पौंड सफेद कागज पर छपी है। सैकड़ों सादे एकरंगे चित्र तथा ५-६ बहुरंगे चित्र हैं। कपड़ेकी टिकाऊ बढ़िया जिल्द और उसपर रंगीन कवरपृष्ठ हैं। बाजारमें ऐसी पुस्तक १०) में भी न मिलेगी। आज ही एक पुस्तक मँगाकर अपने लोक परलोक को सुधार लें। न्योछावर केवल ५।) सवापाँच रुपये मात्र, डाकव्यय पृथक्।

पता—संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर (झूसी) प्रयाग

विषय-सूची

वृन्दावन विहारीकी वेणु

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः
सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः ।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टम्,
यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥*

(श्रीभा० १० स्क० २१ अ० ७ श्लो०)

छप्पय

कान्ह ! दये यदि कान गान निज बेनु सुनाओ ।
जगके करकस शब्द कृष्ण ! नयननि न भराओ ॥
सब थल पेखूँ तुमहिँ पगनितैं तव थल जाऊँ ।
सब कछु तुम हित करूँ जीभतैं तव यश गाऊँ ॥
चहरो मोइ बनाइ दैं, भ्रजतैं नातौ जोरिकैं ।
अपर शब्द कबहूँ न सुनूँ, मुरली धुनिकूँ छोरिकैं ॥

संसारकी अवस्थिति द्वन्द्वपर ही अवलम्बित है । जब तक संसारका भान है, तब तक सर्वात्मभावसे शुद्ध सुख कभी प्राप्त

---

* वृन्दावनकी व्रजाङ्गनायें परस्पर कह रही हैं—"सखियो ! हम तो नेत्रवालोंके नेत्रोंका परम लाभ यही समझती हैं कि श्रीकृष्णचन्द्र अपने सखाओंके सहित गौओंके पीछे-पीछे चलकर वनसे लौटकर व्रजमें प्रवेश कर रहे हों । राम श्याम दोनों नन्दजीके कुमारोंका प्रणय कटाक्षयुक्त मुख, बजती हुई वंशीसे सुशोभित हो रहा हो उस मुखामृतका जिन्होंने नेत्रों द्वारा पान किया हो; वे ही धन्य हैं इसके अतिरिक्त नेत्रोंकी सार्थकता और कुछ नहीं है ।

ही नहीं हो सकता। अधिकांश दार्शनिक इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, कि यह संसार दुःख प्रधान है। सुख दुख दोनोंका संसारमें ऐसा समिश्रण हो गया है, कि अधिकांश लोग दुखको ही सुख समझकर उसकी प्राप्तिके लिये सतत प्रयत्न करते रहते हैं और अंतमें दुख ही दुख उनके हाथमें रह जाता है। वसन्त ऋतुके आरम्भमें सेमरपर बड़े लाल लाल फूल खिल जाते हैं। और आम्रकी शाखाओंपर भी छोटी छोटी मंजरी आती हैं। उसमें भीनी भीनी गंध तो रहती है, किन्तु सेमरके सुमनके सदृश शोभा और चाकचिक्य नहीं होता। इसीलिये सुग्गा प्रथम सेमरके ही वृक्षपर बैठता है। वह सोचता है—"अहा! जब इसका पुष्प ही इतना चित्ताकर्षक मनहर है, तो इसपर फल न जाने कैसा रसीला रंगीला लगेगा। इसी आशासे वह सेमरका सेवन करता है शनैः शनैः पुष्पोंके स्थानमें परम मृदुल लंबा-सा चिकना सा फल लगता है, उसको और भी अधिक सुखकी आशा रहती है, वह और भी अधिक उत्साहित होता है। ज्येष्ठ आषाढ़में वह सेमरका फल पक जाता है। अनन्त आशाओंके घनीभूत केन्द्र उस फलमें वह सुखकी इच्छासे चोंच मारता है, उसमेंसे रुई उड़ जाती है, वह निराश हो जाता है, हाथ मलता है। पादपको कोसता है, उड़कर आम्रपर बैठता है, तब तक आम्र पक जाते हैं। पीले पीले पके आमोंमें ज्यों ही चोंच मारता है उसे मधुराति मधुर रस मिलता है। सोचता है—"सुखदाता आम्र ही है। अब सेमरका सेवन न करूँगा।" किन्तु जहाँ आम्रके अवसरका अवसान हुआ, फिर उसे फूली फूली सेमर दिखायी दी, तो फिर उसी ओर जाता है, फिर उसीका सेवन करता है। यही मायाका चक्कर है। मनुष्य समझता भी है इन संसारी सुन्दर वस्तुओंसे आज तक कोई सुखी नहीं हुआ। वेश्याओंके समीप कितने सुंदरसे सुन्दर युवक नित्य जाते हैं, उन्हें अपना सर्वस्व समर्पित करते हैं,

उनके सर्वथा अधीन हो जाते हैं, क्या कोई वेश्या कह सकती है, कि उसको तृप्ति हुई। राजाओंके समीप कितनी सुन्दरसे सुन्दर सुकुमारियाँ रानियाँ रहती हैं, क्या कोई कामी राजा कह सकता है, कि उसकी काम वासना पूरी हो गयी। सभी जानते हैं काम सेवनसे काम बढ़ता है। सांसारिक इच्छापूर्तिसे इच्छा और अधिक प्रबल होती है। यह सब जानते हुए भी कोई सांसरिक आकर्षणसे विरत नहीं होता अधिकाधिक अनुरक्त ही होता जाता है। सर्वसुखधाम रामको पाकर भी सुग्रीवने उनका सत्संग न किया। रामके समीप रहनेपर भी वह उनके दर्शनोंको नहीं गया। जिन रामकी कृपासे उसे संसारी सुख प्राप्त हुए थे। उनके वश वर्ती न होकर मदिरा और मदिरेक्षणाओंके वशीभूत हो गया। शत्रुविनाशक सर्वसुखदाता रामको—उनका प्रबल पराक्रम जानकर भी—भूल गया। इसमें उस विचारेका दोष भी नहीं। भगवानने अपनी इस चेरी मायाको इतना मुँह लगा रखा है कि यह भगवान्की ही भाँति अनेक रूप रख लेती है। जीव इसके चाक-चिक्यमें फँस जाता है। समीपमें बाँसुरी बजाते हुए बिहारी की ओर दृष्टिपात नहीं करता? उनकी ओरसे मुख मोड़ लेता है। कानोंकी वृत्ति दूसरी ओर लगा लेता है, जिससे समीपमें बजती हुई बाँसुरीको भी यह नहीं सुनता।

जिनका चित्त बिगड़ जाता है, उन्हें दूसरी वस्तुका स्वाद नहीं आता। इसी प्रकार जिनके कानोंको विषयवार्ता सुननेका व्यसन लग जाता है, उनको वृन्दावनविहारीकी वेणु सुनायी नहीं देती। कोलाहलमें भला मधुर मधुर वेणुरव कैसे सुनायी दे सकता है। नगरोंमें जहाँ सहस्रों, लक्षों नर नारी निरन्तर विषय वार्ता ही बोलते रहते हैं वहाँ वृन्दावनविहारी न तो वेणु बजाते ही हैं और न सुननेवाले साधिकायें उसे सुन ही सकती हैं। वेणुको सुननेके लिये स्थान, पात्रता, काल, वेष भूषा सभी पृथक्

चाहिये। बाँकेविहारी वृदावन में ही विहार करते हैं। वन चाहिये वन। वन भी वहेड़ेका वन न हो। वहेड़े के नीचे बैठनेसे तो नरक की प्राप्ति होती है। वन भी हो तो वृन्दावन का हो।

वृन्दाको कृतार्थ करने के लिये कृष्ण सब कुछ कर सकते हैं। ऋषि मुनि त्यागी, तपस्वी कृष्ण को पाने के लिये कितने जप, तप यज्ञ अनुष्ठान तथा पुण्य करते हैं, किन्तु कृष्ण टस मे मस नहीं होते। उनके लिये कर्म विधान बना देते हैं, उनको स्वर्गादि का वर देकर *पिंड छुड़ा लेते हैं। पुण्य का फल तो सुखही है।* श्रीकृष्णको पुण्य कर्म प्रिय हैं किन्तु पुण्य कर्म वालों को अपना ही लें सो बात नहीं। जिसे वे अपनाते हैं उसके पुण्य पाप सभी कर्मों को नाशकर देते हैं। उसे अकर्मण्य बना लेते हैं। वृन्दाको वे अपनाना चाहते थे किन्तु वृन्दा को धर्म का आग्रह था। वह अपने आसुर भावसम्पन्न पति में ही अनुरक्त थी। प्रभुने असुरका ही रूप रख लिया। वे वृन्दाको अपनाने के लिये असुर जालंधर बन गये। वे सब कुछ बन सकते हैं, उनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं। भगवान् ने सोचा वृन्दा मेरे मधुरातिमधुर रूप को भूल गयी है। आग्रह वश उसने असुर में ही मेरा भावकर लिया है, कोई बात नहीं मैं इसे अपनाऊँगा। और इसके हठ को छुड़ाऊँगा इसे अपनी नित्य सहचरी बनाऊँगा। इसे अपने अंग से सटाऊँगा। भगवान तो धर्म अधर्म दोनों से परे हैं, वे धर्म अधर्म दोनों के आग्रहको छुड़ाकर निर्द्वंद्व बनाते हैं तब अपनाते हैं। व्रजकुमारियों के मन में ईर्षी भाव था। उनके वस्त्रों का अपहरण करके—उन्हें नग्न बनाकर—श्यामसुन्दर ने उनकी अज्ञान यवनिका को हटा दिया। ऐसा बनाकर तब उन्हें रासमें अपने कंठसे लगाया। इसी प्रकार वृन्दा को भी धर्म भ्रष्ट किया।

"धर्म स्वरूप भगवान् ने धर्माचरण करने वाली सती को धर्म भ्रष्ट क्यों किया जी?" अजी, जो हठधर्मी हमें प्रभु से विमुख

करके आसुर भाव की ओर ले जाय. उसे तो सद्गुरु छुड़ाते ही हैं। नन्दगोपादि इन्द्रयाग करके कोई बुरा काम नहीं कर रहे थे किन्तु इस दुराग्रह के कारण वे इन्द्रों के भी इन्द्र भगवान को भूलकर इन्द्र को ही सब कुछ समझने लगे थे। इधर इन्द्र को भी अभिमान हो गया था। इन्द्र याग जैसे पुण्य कर्म को रोक कर भगवान ने दोनों का ही कल्याण किया। वृन्दा उस असुर में ही अनुरक्त रहती तो जन्म-जन्मान्तरों तक उस असुर की ही पत्नी बनती रहती, उसे भगवानका निरंतर स्पर्श कैसे प्राप्तहोता। भगवान अपने नित्य स्वरुप से उसे कैसे अपनाते। इसीलिये भगवानने उसके साथ छल किया, उसे मिथ्या सतीत्वसे विचलित किया। उसे तो दुराग्रह हो गया था। यथार्थ भेद ज्ञात होने पर उसने भगवान् को शाप दिया—'विष्णु! तुमने मेरा धर्म नष्ट किया है तुम पाषाण हो जाओ।'

भगवान् बोले—"वृन्दे! मुझे सब कुछ बनना स्वीकार है किन्तु मैं तुझे अपनाना चाहता हूँ। तुम तुलसी हो जाओ और सदा मेरे अंग से सटी रहो। जो पुरुष मुझे कभी भी तुमसे पृथक करेगा उसे घोर पाप लगेगा।" यह कह कर भगवान् शालिग्राम रूप में पाषाण हो गये। वृन्दा भी तुलसी हो गयी। इसलिये कभी भी शालिग्राम भगवान को तुलसी से विहीन न करना चाहिये। स्नान कराते समय भी तुलसी डाल दे और स्नान कराके तुरंत नयी तुलसी चढ़ा दे। नयी न मिले तो पुरानी को ही धोकर चढ़ा दे वृन्दा से विष्णु कभी विलग नहीं होते उसे सदा अपने ऊपर धारण किये रहते हैं। उसी के वन में वंशी बजाया करते हैं। वृन्दावन श्यामसुन्दर को अत्यंत प्रिय है इसलिये वे वृन्दावन को छोड़कर अन्यत्र कहीं जाते नहीं। दूसरे स्थानमें वंशी बजाते नहीं।

उसी वृन्दा के वन में बनवारी विहार करते हैं। विहार क्या होता है जी ?

जो आत्मतोषके लिये किया जाय, आमोद प्रमोद के लिये सुख संतोषके लिये किया जाय वही विहार है। सांसारिक विषयी विहार क्या जानें विहार करना तो विहारी ही जानते हैं। अखिल ब्रह्माण्ड उनकी विहारस्थली है, इसमें विहारी विहार कर रहे हैं, उनके रोम रोममें अगणित ब्रह्माण्ड व्याप्त है। वे स्वयं वृन्दावन में विहार करते हैं। उनके ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये रूप तो जगत्के सृष्टि, स्थिति तथा संहारके निमित्त हैं। श्रीकृष्ण तो सर्वगत हैं, सर्वज्ञ हैं, इन रूपोंको तो वे माया का आश्रय लेकर रख लेते हैं। जो ऊपरी रूपों में फँस जाते हैं वे श्रीकृष्णको प्राप्त नहीं हो सकते बाहरी वस्तु देखने पर माया का पसारा ही दिखायी देगा नेत्रोंको बन्द करने पर—संसारकी ओरसे दृष्टि हटानेपर श्रीकृष्णकी मुरली सुनायी देगी।

राजा अश्वशिराने बड़े-बड़े यज्ञ याग किये बहुत दान दिये। शुभ कर्म किये किन्तु उन्हें विष्णु भगवानके दर्शन नहीं हुए। एक दिन राजा मंत्री, पुरोहित तथा सभासदोंके सहित अपनी सभामें बैठे थे कि इतनेमें ही उनकी सभामें महर्षि कपिल और जैगीसव्य ये दो मुनि आये। राजाने दोनोंका विधिवत् स्वागत सत्कार किया और हाथ जोड़कर कहा—"भगवन ! आप मुझे बतावें मैं विष्णु भगवानका कैसे आराधन करूँ, कैसे उनके दर्शन पाऊँ ?"

इसपर वे दोनों महर्षि बोले—"राजन ! तुम विष्णुको कहाँ खोजोगे हम दोनों ही तो विष्णु हैं, हमारा दर्शन कर लो। हमारी पूजा करलो सब काम हो जायगा।"

राजाने विनीत भावसे कहा—"महर्षियो ! आप तपस्वी हैं, योगी हैं, ज्ञानी हैं, निष्पाप हैं, माननीय हैं, पूजनीय हैं किन्तु आप विष्णु कैसे हो सकते हैं। भगवान विष्णु तो चतुर्भुज हैं। शंख, चक्र, गदा और पद्म को धारण किये रहते हैं, गरुड़ पर चढ़ते हैं। मैं तो ऐसे विष्णुके दर्शन करना चाहता हूँ।"

यह सुनकर महर्षि कपिल उसी क्षण शंख, चक्र, गदा तथा पद्मधारी विष्णु बन गये, जैगीशव्य मुनि गरुड़ बन गये उनके ऊपर विष्णु बने कपिल चढ़कर बोले—"राजन्! अब आप गरुड़स्थ चतुर्भुज विष्णुके दर्शन करें।"

यह सुनकर राजा बोले—"भगवन! आपने तो रूप मायामें बना लिया है, आप विष्णु नहीं हैं मैं तो उन विष्णु के दर्शन करना चाहता हूँ, जिनकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ है और उस कमलसे चतुर्मुख ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई है।"

इतना सुनते ही महर्षि कपिल तत्क्षण पद्मनाभ विष्णु बन गये और जैगीशव्य ब्रह्मा बन गये। विष्णु बने कपिल महर्षिकी नाभिसे एक कमल निकला उसपर चार मुख बनाये जैगीशव्य मुनि बैठ गये। तब कपिल मुनि बोले—"राजन! आप पद्मनाभ विष्णुके दर्शन कीजिये।"

इतना सुनकर राजा विस्मित होकर कहने लगे—"महाराज! आप लोगोंने यह भी रूप मायासे ही बना लिया है। विष्णु भगवान् तो सर्वव्यापक हैं। वे सबमें रम रहे हैं। सबके अन्तःकरण में विहार कर रहे हैं।"

राजा के इतना कहते ही, वहाँ राजवनमें असंख्यों नाना भाँतिके जीव जन्तु दिखायी दिये। राजा ने पूछा—"भगवन! ये कौन हैं?"

महर्षि कपिलने कहा—"राजन! इन सबमें सर्वात्मा श्रीहरि रम रहे हैं। वे कामरूप हैं। उन्हें खोजने बाहर नहीं जाना होता। वे सबके समीप ही हैं। वे चित्तकी वृत्तियोंको एकाग्र करने से अपने आपमें ही भीतर ही दिखायी देते हैं।

काम रूपी कृष्णको कोई बाहर खोजे तो वह नहीं मिलता। वृन्दावनके बाहर वह जाता ही नहीं। वह तो गोष्ठ (शरीर)

के समीप ही वृन्दावन में (हृदयकमल मध्य में) वंशी बजाता है। उसकी वंशी मादकता पूर्ण होती है, जिसने भी एकाग्रचित्त से उसे सुन लिया फिर वह अपने आपे में नहीं रह सकता। देह गेह की उसकी समस्त ममता छूट जाती है। जब तक देहाध्यास है। मैं कुलीन हूँ, श्रेष्ठ हूँ, विद्वान हूँ, सुन्दर हूँ, ऐसा हूँ, वैसाहूँ, तब तक मोहन की मनोहारिणी मुरली कैसे सुन पड़ेगी। उन काम रूप कामी की कमनीयां काम क्रीड़ायें कैसे देखने को मिलेंगी। कामी कृष्ण से कामिनियाँ (गोपियाँ) ही मिल सकती हैं वे ही उनकी मुरली धुनि को सुनकर उनके रास विलास में सम्मिलित हो सकती हैं। बाह्य दृष्टिवालों की वहाँ गम नहीं।

वंशी के श्रवणपात्र भी सभी नहीं। जिनका हृदय सरस न होकर कठोर है वे वंशीश्रवण के अधिकारी नहीं. "भैंस के आगे वीन बजाओ भैंस खड़ी पुहनाइ" जिनका हृदय कोमल हो, सरस हो, आर्द्र हो राग रंजित हो, अनुराग पूरित हो, भक्ति भाव से भावित हो, प्रेम मे साविर हो माधुरी में भीगा हो उत्कंठा में अनुस्यूत हो, प्रतीक्षामें पगा हो, लालसामें लाल हो और प्यारेकी स्मृतिसे परिपूर्ण हो उसीमें वृन्दावनविहारी की वेणु सुनायी देती है। जिनको पुरुषपने का अभिमान है या जो स्त्री अपने को सास समझ कर दूसरी स्त्रियों पर शासन करना चाहती है। इनको वंशीध्वनि सुनाई न देगी। इसीलिये बनवारी की वंशी न तो गोपों को सुनाई दी और न बूढ़ी बूढ़ी गोपियों को। यह तो युवती गोपियों के ही श्रवणों ने सुनी। उन्हीं की वंशी का सुमधुर रव सुनायी दिया। उसे सुनकर वे गोष्ठ छोड़कर वन जाने को उद्यत हो गयीं।

वनके लिये वे क्यों चल दीं जी? वन में ही तो एकांत होता है। प्रेम की बातें एकांत में ही तो होती हैं। प्रेमलीला सबके

सामने नहीं प्रदर्शित की जाती। प्यारे से एकांत में ही मिला जाता है। वेणु को सुन कर ऐसा कोई नहीं है जो अपने स्थान पर रुका रहे। उस वेणु के उद्गम स्थान—श्यामसुन्दर—के समीप जाना ही होगा। यदि भौतिक शरीर को कोई रोक भी ले तो दिव्य शरीर से संगम करना पड़ेगा। विना संगम के रहा नहीं जा सकता।

श्यामसुन्दर की वेणु हर समय वजती रहती है। उसके वजने के समय नियत नहीं है। रात्रि में भी वजती है और दिनमें भी दोपहर में वजती भी है और अर्धरात्रि में भी। सायंकालीन संध्या के समय भी और प्रातःकालीन संध्या के समय भी। फिर भ उसकी ध्वनि रात्रि में परम मोहक होती है। रात्रिमें वह वजती ही जाती है वजती ही जाती है। क्षण क्षण में उसकी मधुरता, उन्मादमता, सरसता तथा प्रियता वढ़ती ही जाती है वढ़ती ही जाती है। गोपिकायें सुनती हैं, विकल होती हैं विवश होती हैं, फिर चल देती हैं, उसके उद्गम के अन्वेषण के लिये वे चलती जाती है तव तक चलती ही रहती हैं जब तक मुरलीवाला मिल नहीं जाता। मिलने पर वह दुरदुराता है मुरली से भी मोहक वातें करता है। अधिक अनुरक्त वनानेके लिये—पूरी तरह फँसानेके लिये—वह दया नहीं दर्शाता प्रथम निष्ठुरता दिखाता है। स्वयं मुरली वजाकर वुलाता है। फिर वुलाकर ठुकराता है। कैसा है वह निष्ठुर मुरली वाला। फिर भी गोपिकायें नहीं जातीं, उसके सम्मुख अश्रु वहाती हैं। उसे ही अपना सर्वस्व वताती हैं, उसी के सम्मुख गिड़गिड़ाती हैं दीन होकर विनती सुनाती हैं और उसी के अरुण चरणों पर गिर जाती हैं। उसी को रो रोकर समझाती हैं अपनी विवशता वताती हैं और शरणागत के त्याग का भय दिखाती हैं। श्याम सुन्दर सव सुनते हैं और मुस्कुरा जाते हैं।

मुस्कराते क्यों हैं जी ? मुस्कराते इसलिये कि मेरी मुरली कैसी मधुर है। यह सबको बुला लाती है और चुप हो जाता है। इस मुरलीके पीछे मुझे कितना सुख मिलता है। जिन्हें मैं चाहता हूँ इसी मुरलीके द्वारा बुला लेता हूँ, इसी बातको बार बार विचार कर बनवारी मुस्कराते हैं। कुछ कुछ हँस जाते हैं, किन्तु गोपिकायें रो जाती हैं।

गोपिकायें रोती क्यों हैं जी ? गोपियोंके रोनेका कारण है। वे सोचती हैं मुरली आनंद सागरके पार बज रही है। हमारी चित्त वृत्ति रूप नौका सूखे स्थानमें अड़ गयी है। यदि कहींसे पानी आ जाय और इस शुष्कताको डुबोदे तो हमारी नौका भी बहकर उस पार लग जाय। मुरलीकी ध्वनि तक पहुँच जाय, उद्गम स्थानमें पहुँचकर उसकी उत्ताल तरंगोंमें नृत्य करे। ताथेई करके रास रचे। वे मुरलीसे द्वेष करती हैं।

प्रेममें द्वेषका क्या काम ? गोपिकायें मुरलीसे द्वेष क्यों करती हैं जी ! अजी, यह द्वेष कोई शत्रुता जन्य द्वेष थोड़ा ही है। प्रेमयुक्त द्वेष है, प्रणयसे संमिश्रित कोप है, यह तो प्रेम वृद्धिमें बाधक न होकर साधक है। सभी मुरली बनना चाहती हैं। सभी श्यामसुन्दरके अधरोंको चाटना चाहती हैं, सभी उनके कर कमलोंकी थपकियोंसे गुदगुदी गद्दियोंपर सोना चाहती हैं। यह तो बाँसुरीकी बड़ाई है, उसके भाग्यकी सराहना है। वेणुकी विजय की स्वीकृति है। श्यामसुन्दरसे प्रेम कौन न करेगा। वे तो साक्षात् मन्मथके मनको भी मथने वाले हैं। यदि वे गोपिकाओंके मनको मथते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। कमनीय कृष्णको देख कर कामिनियोंके मनमें कामका उदय होना स्वाभाविक है।

काम भाव कुछ अच्छी बात थोड़े ही है ? गोपियोंके मनमें काम भाव उत्पन्न ही क्यों हुआ जी ?"

कामभाव उत्पन्न क्यों हुआ, इस तो काम जाने और कामका बाप जाने। किन्तु काम अच्छी बात है या बुरी इसे तो शास्त्र भी निर्णय करता है। यह सम्पूर्ण संसार काम द्वारा ही संचालित है। काम न हो तो सृष्टि वृद्धि न हो। संसारकी रक्षा न करके तारक ही प्रजाभक्षक बन जायँ, निष्काम शिवके मनमें भी काम उत्पन्न कराने के लिये ब्रह्मादि देवोंने कितना प्रयत्न किया। संसार के लोग निरन्तर काममें ही लगे रहते हैं। किसीसे पूछो—"कहाँ जा रहे हो?" वह तुरन्त कहेगा "एक कामसे जा रहा हूँ।" किसीसे कहो—"तनिक बैठिये।" वह कहेगा—"अजी, कैसे बैठें बहुत काम है।" कोई लड़का काम नहीं करता, तो उसके अभिभावक कहते हैं—"काम न करोगे तो खाओगे क्या ?" सारांश यह है, चराचर विश्वका संचालन कामसे ही हो रहा है। कामसे ही बंध है कामसे ही मोक्ष है किन्तु काममें कुछ अन्तर है। काम कहते हैं कामनाको, संसारमें बिना किसी कामनाके कोई काम होता नहीं। हमें जीवनकी कामना है इसलिये सांस लेते हैं। हमें परिचयकी कामना है इसलिये देखते हैं। हमें पेट भरनेकी शरीर पोषणकी कामना है इसलिये खाते हैं। हमें संसारको चलाये रखने की कामना है इसलिये सन्तानोत्पत्ति करते हैं। अकेली सांसारिक कामनायें हमें पुनः पुनः संसारमें घसीट घसीटकर लाती हैं। श्रीकृष्णके सम्बन्धकी कामना हमें हठात् संसारसे खींचकर वृन्दावनकी ओर ले जाती हैं। संसारी काम बन्धन कराता है। श्रीकृष्णके सम्बन्धका काम संसारसे मुक्त कराता है। अकेला काम यदि शंकरके समीप भी अपने बल भरोसे जायगा, तो जल कर भस्म हो जायगा। वही काम श्रीकृष्ण पुत्र प्रद्युम्न (परम प्रकाशवान) बन कर जायगा तो सम्बर (परम मोहक) को मारकर लौट आवेगा। इसीलिये भगवानने अपने सुहृद सखा पार्थसे कहा है—धर्माविरुद्धेषु भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।"

ये भरत कुल में श्रेष्ठ प्राणियोंमें धर्म से अविरुद्ध जो काम है वह और कोई नहीं मैं ही हूँ . धर्महीन काम ही संसार में बाँधता है स्वर्ग नरक ले जाता है,जो काम कृष्णके समीप ले जाय—संसारी कामों को छुड़ादे—उसमें और कृष्णमें कोई अन्तर नहीं। जो ऐसे कामको हृदयमें उत्पन्न करदे वही सद्गुरु है।

वृन्दावन विहारी की वेणु बजते ही श्रीकृष्ण विषयक कामना हृदय में उत्पन्न कर देती है। मनको मथकर संसारी कामनाओं को छुड़ा देती है। गोपिकायें जब उस धुनि को सुनती, तो अकाम हो जातीं। दूध दुहना, दूध बिलोना, चक्की चलाना, आटा निकालना, झाड़ू देना, लीपना पोतना, आटा छानना, आटा गूँथना, धान कूटना, धानों को फटकना, धोना, रोटी बनाना, भोजन परसना, चौका बर्तन करना, चरखा कातना, वस्त्र सीना, बालकों की देख रेख करना, शरीर को सजाना, शृंगार करना, शैया बिछाना सेवा करना तथा और भी गृहस्थी के सभ कामों को यह मुरली ध्वनि तत्काल छुड़ा देती है। कान में पड़ते ही बेकाम बना देती है। यह मुरली की ध्वनि सबको सुनाई नहीं देती। किसी भाग्य-शालिनी को ही सुनाई देती है। जिसे यह सुनाई दे गई वह धन्य हो गयी कृतार्थ बन गयी। उसकी संसार से मुक्ति हो गयी। इसीलिये यह वेणु सबकी गुरु है। सबको श्रीकृष्ण चरणों में पहुँचाने वाली है। क्या हम भी कभी समस्त संसारी काम—पैसे की चिंता करना लिखना, पढ़ना, छपाना, संशोधन करना, विज्ञापन करना, सुख सामग्री जुटाना, लोगों का संग्रह करना, इकट्ठा करना, अहंकार करना, दूसरों को अपने अधीन करना चक्कर में फँसाना, स्वार्थ साधन करना—इन सभी को भूलकर मनमोहन की मुरली की ध्वनि सुन सकेंगे ? वृन्दावन विहारी की वेणु सुनकर सभी कामों को अधूरे छोड़कर क्या कभी हम भी विहल हुए—बेसुधि बने—लड़खड़ाते पागलोंकी भाँति गिरते परते

उन बाँकेविहारीके चरणोंमें पहुँचेंगे ? मुरलीदेवी ! प्रणाम प्रणाम ! कभी हमें भी पुकारोगी क्या ? कभी हमारा भी नाम लेकर बुलाओगी क्या ? कभी अपनी ध्वनिका मन्त्र हमारे भी कर्णकुहरोंमें फूँकोगी क्या ? कभी हमें भी अपना शिष्य करके स्वीकारोगी क्या ? देवि ! हम निर्बल हैं, साधनहीन हैं। प्रतिज्ञा करके उसका पालन नहीं कर सकते। नियमको निभा नहीं सकते। कामको रोक नहीं सकते श्रीकृष्णको पुकार नहीं सकते। सब ओरसे निराश हो गये है पुरुषार्थका अभिमान चूर चूर हो गया अब देवि ! तुम्हारा ही सहारा है तुम कृष्णके मुँहलगी ही जो ठहरी। मुँहलगे व्यक्ति न कराने योग्य कामोंको करा लेते हैं। एक बार हमारा भी नाम पुकार लो। दाढ़ीसे क्यों डरती हो वीर! ये तो सब बाह्य चिह्न हैं। तुमने जहाँ पुकारा तहाँ ये बाह्य चिह्न तो सब उड़ जायँगे। गुरुदेवका मन्त्र कानमें पड़ते ही शरीर चिन्मय हो जाता है। सुना दो हमें मोहिनी मन्त्र, जिससे मदन मोहनकी माधुरी मूर्तिको मनमें बसाकर उनके चरणोंमें लोट पोट हो जायँ। वृन्दावनको निभृत निकुञ्जोंमें उनके साथ घूम सकें। रासविलासके सुखका अनुभव कर सकें। हृदय कलुषित होनेसे तुम्हारे शब्दमें भी हम संसारी कामना देखते हैं। कैसी यह विडम्बना है। देवि ! दया करो। दयामयी अपनाओ वेणुरानी ! बज जाओ, बज जाओ ! अपनी मीठी मीठी मधुर मधुर मदमत्त बनानेवाली तानको सुनाओ फिर सुनाओ।

छप्पय

मुरली ! करूँ प्रनाम सरस-सी तान सुनाओ।
बंसी ! बंसी बनो श्याम दृगमाँहि फँसाओ॥
वेणु ! रेणु ब्रजभूमि अङ्ग मेरे लिपटाओ।
बंशवासुरी ! वीर विपिन-वृन्दा बुलवाओ॥
सम्मोहिनि ! आकर्षिनी, प्यारी प्रिय-आनन्दिनी।
करनकुहर स्रवतें भरौ, हे अधरामृतवर्षिनी॥

पौगण्डावस्थाकी कुछ कमनीय क्रीड़ाएँ

(६१६)

एवं निगूढ़ात्मगतिः स्वमायया
गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन्।
रेमे रमालालितपादपल्लवो
ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० १५ अ० १९ श्लो०)

छप्पय

यों करि बलकी विनय वननि विहरे बनवारी।
शिशु सम क्रीडा करें सरस सुन्दर शुभ प्यारी॥
हंसनिकी चालि चालि कूजिकें हँसे हँसावें।
मोरनिके सँग नाचि सखनिकूँ श्याम रिझावें॥
धौरी धूमरि धूसरी, धेनुनिके लै नाम हरि।
टेरि बुलावें दूरितें, छुएँ खुजावे प्यार करि॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! इस प्रकार जिनके चरणारविन्दोंकी सेवा स्वयं साक्षात् लक्ष्मीजी करती हैं, वे ही भगवान् आज अपने वास्तविक स्वरूपको छिपाकर अपने आचरणोंसे गोप कुमारत्वका अनुकरण कर रहे हैं। वे उन ग्रामीण ग्वारियोंके साथ यद्यपि उन्हींके सदृश क्रीड़ा करते हैं, किन्तु फिर भी बीच-बीचमें उनकी भगवत्ता प्रकट हो ही जाती है।

बाल्यकालके वे प्यारे प्यारे खेल सदाके लिये हमसे दूर चले जाते हैं, किन्तु जाते जाते हृदयपर ये अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं, उनकी सुखद स्मृतियोंसे किस सहृदय पुरुषके हृदयमें हूक न उठने लगेगी। श्रीकृष्ण जब राजा हो गये और सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियोंके पति होकर सुवर्णके महलोंमें सुख पूर्वक रहने लगे, तो कभी-कभी रानियाँ देखतीं—उनके नेत्रोंमें जल भर आता और वह टपटप करके बहने लगता। एक दिन अत्यन्त प्यारसे अपने प्राणनाथके कंठमें बाहु डालकर श्रीमती भगवती रुक्मिणीजीने पूछा—"प्राणनाथ! कभी-कभी मैं आपको एकान्तमें रोते देखती हूँ, कभी-कभी आप हमारे सामने भी अपने आँसुओंको नहीं रोक सकते। इसका कारण क्या है? अवश्य ही आपको कोई आन्तरिक व्यथा है। यदि हमारे सुनने योग्य हो तो हमें अवश्य बतावें। हम प्राणोंका पण लगाकर उस दुःखको मेटनेका प्रयत्न करेंगी।" इतना सुनते ही श्याम सुन्दरको हिचकियाँ बँध गयीं। वे भर पेट रोये। और रोते-रोते बोले—"मेरा दुख ऐसा है जिसे तुम मेट नहीं सकतीं। मुझे अपने बाल्यकालकी बातें याद आ जाती हैं। वे ही मेरी हृदयमें हूक उत्पन्न करके उसे मथ देती हैं। वे कितने सुखके दिन थे न कोई चिन्ता थी न क्लेश। चारों ओरसे प्यार ही प्यार प्राप्त था। प्रातःकाल होते ही हम गौओंको चराने ले जाते। गौएँ हमसे कितना प्यार करती थीं, हम उनका नाम लेकर पुकारते थे, पूँछ उठाये वे नाम सुनते ही दौरी आती थीं। मैया छाक लेकर आतीं, सामने प्रेमसे बैठकर खिलाती, उस छाकमें जो आनन्द आता, वह यहाँके छप्पन भोगोंमें कहाँ। वे व्रजकी भोरी भारी व्रजाङ्गनायें अपने मैले कुचैले गोबर लगे वस्त्रोंको पहिने हमें अपने हृदयसे सटा लेतीं, उनके स्नेहालिङ्गनमें जो सुख था, वह इन केशर कस्तूरी और विविध प्रकारके सुगन्धि-

युक्त वस्त्रोंमें कहाँ है हम सब ग्वाल-बाल वनकी घुँघचियोंको पहिनते थे, उन्हें पहिनकर जो सुख होता था—वह इन मणि माणिक्यकी मनोहर मालाओंमें कहाँ मिल सकता है। सखाओंसे एकान्तमें कैसी मधुर मधुर बातें होतीं, वे हमें अपने हाथोंसे खिलाते पिलाते थे, हम उन्हें अपने हाथोंसे खिलाते, उनके स्पर्शमें जो सुख था, यहाँ उसका आभास भी नहीं। गोप ग्वाल कितने स्नेहसे हमारी सेवा करते ऐसा निश्छल स्नेह अब जीवनमें कहाँ मिलेगा। मैं अपने बालकपनको याद करके रोता हूँ, उसकी स्मृति ही मुझे विकल बना देती है। अब मैं ब्रजमें जाऊँ तो मुझे कोई पहिचान भी न सकेगा क्योंकि मेरा ब्रजका जो धन था—बालकपन—वह मुझसे खो गया। वह मुझे छोड़कर दूर चला गया। उसीके लिये मैं रोता हूँ।" रुक्मिणी आदि रानियाँ यह सुनकर चुप हो गयीं। अब वे ब्रजके बालकपनको कहाँसे खोजकर लौटा ला सकती हैं। यथार्थमें बात ऐसी है, बाल्य-कालमें जिस भावसे खेल खेले थे, वे अब आ ही नहीं सकते। अब उन्हें खेलेंगे बनावट हो जायगी। वे भाव अब कहाँ। भावना ही तो आनंद निरानंदमें प्रधान कारण है। बालकोंको अनुकरण बड़ा प्रिय होता है। जिसका चाहो अनुकरण करा लो, उन्हें सबका अनुकरण करनेमें एक प्रकारके आनंदका अनुभव होता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गोपाल बने श्याम अब वनोंमें विहार करते हुए भाँति-भाँतिकी कुमारावस्थाकी क्रीड़ाएँ करने लगे। वे यमुनाजीके पावन पुलिनोंमें गिरिराज गोवर्धनकी ऊँची उपत्यकाओंमें अपनी गौओंको चराने लगे। उनका गोपवेश बड़ा ही विचित्र और चित्ताकर्षक होता था। कंठमें बड़ी सी वन-माला सदा धारण करते रहते थे, वह हिलहिलकर रसिकोंको श्रीकृष्ण चरणोंमें आनेका निमंत्रण-सा देती रहती। वे बलदेवजी

के सहित एक वनसे दूसरे वनमें दूसरे वनसे तीसरे वनमें गौओंके पीछे-पीछे विचरते रहते। उन्हें भ्रमरोंसे बड़ा प्रेम था। प्रेम होना स्वाभाविक ही था। अपने समान गुणवालोंमें प्रेम हो ही जाता है। श्रीकृष्ण भी रसप्रिय हैं और भौंरे भी रसके लोलुप हैं। जिस प्रकार भौंरे रसपान करके अपना स्वार्थ साधकर निष्ठुर वन जाते हैं, यही स्वभाव इन टेढ़ी टाँगवाले श्रीकृष्ण का है। दूसरे के हृदयकी पीरको ये निष्ठुर कृष्ण नहीं जानते इन्हें अपने स्वार्थसे काम, दूसरा चाहे मरौ या जिओ। इन्हें भी गायन बहुत प्रिय है और भौंरे भी गुन-गुन करते हुए निरन्तर गाते रहते हैं। भौंरे भी मधुपान करके मतवाले हो जाते हैं और ये माधव तो सदा प्रेममें मतवाले बने ही रहते हैं। इन सभी कारणोंसे नटवरकी इन भ्रमरोंसे मित्रता है। जहाँ भी ये भ्रमरों के मुंडोंको गुन-गुन करते हुए देखते, तहाँ झट ये भी उनके पीछे लग लेते और उनके स्वरमें स्वर मिलाते गुनगुनाते हुए साथ साथ चलते।

कभी सरोवरोंके समीप विचरण करनेवाले राजहंसोंको देखते, तो उनकी चाल का ही अनुकरण करने लगते। उनकी कूजमें कूज मिलाकर स्वयं कूजते, और हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते। स्वयं हँसते सभी साथियोंको भी हँसाते। ग्वालबाल जब दूर चले जाते, तब आप मेघगंभीर वाणीसे उनका नाम ले लेकर पुकारते—"हे तोक! हे दाम! हे सुदाम! हे सुवल! आओ आओ।" कभी दूर गयी गैओंके नाम लेकर पुकारते, हे नन्दिनी हे चम्पे! हे गंगे! हे काली! हे धौरी! हे सुवले! आओ, आओ उनकी धीर गंभीर वाणीको सुनकर मयूरोंको भ्रम हो जाता समझते—'कोई श्याम घन गरज रहा है, अतः मेघकी गर्जना समझकर वे कूकने लगते। प्रेममें भरकर नाचने लगते। तब आप भी अपने पीताम्बरको फैलाकर मयूरोंके नृत्यका अनुकरण

करते, ठुमुक-ठुमुककर नाचते। गोपोंको भी नचाते, स्वयं उनके नृत्यकी 'साधु-साधु' कहकर प्रशंसा करते।

कभी कहते—"चकोरकी बोली कौन-सा बालक बोल सकता है? चक्रवाकके स्वरका अनुकरण कौन ग्वाल कर सकता है? सारस और मयूरके स्वरमें स्वर कौन मिला सकता है? सबके स्वरोंको सुनते, फिर स्वयं सबकी बोली बोलकर सखाओंको सुखी करते, उन्हें हँसाते। इतनेमें ही किसी सिंहकी दहाड़ सुनते तो भययुक्त आकृति बनाकर भागनेका अनुकरण करते और चिल्लाते—"अरे सारे ? भागियो ? सिंह आया।" बताइये? जिसके भयसे भय भी भयभीत होकर भाग जाता है, वे सिंहके शब्दसे भयभीत होकर भागें, यह केवल क्रीड़ा नहीं तो और क्या है, इसे आप विनोदीके विनोदके अतिरिक्त और कह ही क्या सकते हैं।

कभी-कभी थककर किसी बड़भागीकी गोदमें लोट जाते। प्रभुका सुखद स्पर्श पाकर वह गोपाल निहाल हो जाता और इनके मस्तकको शनैःशनैः अपनी गुद-गुदी कोमल हथेलियोंसे दबाने लगता। कभी जब बलरामजी किसी गोपकी गोदीमें सिर रखकर लेट जाते, तो आप उनके दोनों गोरे-गोरे चरणोंको अपनी गोदीमें रख लेते और शनैः शनैः उन्हें सुहलाने लगते। जब आप अपनी गुद-गुदी गद्दियोंसे उनके पदतलको मींचकर दबाते, तो बलदेव-जीको अत्यंत ही सुख होता, आनंदसे उनका मुख खिल उठता। गोप अनुभव करते कि पैरका पंजा दबानेसे उँगलियोंको चट खानेसे सुख होता है, तो वे भी श्रीकृष्णकी चरणसेवा करनेके लिये उत्सुकता प्रकट करते।

आपको द्वंद्व-युद्ध करनेमें बड़ा आनंद आता था। प्रत्येक वनमें उन्होंने मल्लयुद्ध करनेके निमित्त अखाड़े बना रखे थे। उनमें आप लँगोट कसकर उतरते। डंड पेलते, बैठक लगाते और ताल ठोकते हुए वे अपने साथियोंसे लड़ते। और भी गोपोंके जोड़ छुड़ाते।

कभी-कभी लड़ते-लड़ते अधिक व्यायाम करनेसे थक जाते, तं किसी बड़े वृक्षका सहारा लेकर श्रम मिटानेको लेट जाते। उसी समय कोई बड़भागी गोप दौड़कर उनके दोनों चरणोंको गोदमें

रखकर दबाने लगता। जंघा और जानुओंमें मुट्ठी भरता। पंजोंको दबाता, उँगलियोंको चटखाता। कोई कोमल-कोमल आमके, वटके लाल-लाल पत्ते तोड़ लाते उसकी शैया बनाकर श्यामको उसपर

सुलाते, कोई कमलका पत्ता तोड़कर उसीको पंखा बनाकर उनको बयार करते, कोई स्वरसे ही पंखेका काम लेते। किसीकी ओर देखकर श्यामसुन्दर मुसकराते हुए कहते—"भैया! तेरा स्वर बड़ा अच्छा है, कोई गीत तो गाकर सुना।" तब वह परम भाग्यशाली गोपकुमार स्नेहार्द्र चित्तसे मंद-मंद स्वरमें भगवानकी लीलाओं-के अनुरूप-उनको अत्यंत ही प्रिय लगनेवाले-गीतोंको गाता।

कभी कभी दोनों भाई प्रेमसे हाथमें हाथ मिलाकर साथ-साथ घूमते। कभी श्यामसुन्दर किसीकी गलेमें गलबैंया डालकर उसके साथ-साथ घूमते। कभी आप नाचने लगते, कभी ताल स्वरके सहित वंशी बजा-बजाकर उसमें गीत गाने लगते।

भगवानकी समस्त चेष्टाएँ सरस सुखद स्निग्ध तथा भाव-मयी थीं। भगवान्के यहाँ ऐश्वर्यकी तो कुछ कमी ही नहीं। जो समस्त ऐश्वर्यकी एकमात्र अधिष्ठातृ देवी लक्ष्मीजी हैं, जो सदा उनके पैरोंको पलोटती रहती हैं, उन्हें किसी वस्तुकी आकांक्षा तो हो ही नहीं सकती। आप्तकाम होनेसे उन्हें स्पृहा भी नहीं। केवल भक्तोंको सुख देनेके निमित्त सांसारिक लोगोंकी दृष्टिमें अपने वास्तविक स्वरूपको छिपाकर वे प्राकृत शिशुवत् समस्त क्रीड़ाएँ करते थे। यद्यपि वे अपने ऐश्वर्यको छिपाये रहते थे, किन्तु असुर लोग आ आकर उन्हें विवश करते, वे उन्हें मारें। तब क्या करते, वे भी तो एक प्रकारके भक्त ही हैं, द्वेष बुद्धिसे ही सही, सदा उनका चिन्तन करते रहते हैं। उनकी इच्छाके अनुसार उन्हें मारना पड़ता। जब इतने बड़े बड़े भारी राक्षसोंको मारते तो छिपानेपर भी इनका ऐश्वर्य न छिपता, ईश्वरीय लीला प्रकट हो ही जाती। भगवत्ताका आभास लोगोंको मिल ही जाता।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार भगवान् बालवत् चेष्टाएँ करते हुए वनमें विचरा करते थे। उसी समय बलरामजी-ने एक धेनुक नामक असुरको मारा।"

शौनकजीने पूछा—सूतजी ! धेनुक कौन था और बलरामजी ने उसे कैसे मारा ?"

सूतजी बोले—"भगवन ! धेनुक असुर गधाका रूप रखकर रहता था। बलदेवजीने जैसे उसे मारा, उस कथाको मैं आगे सुनाता हूँ।"

छप्पय

कबहूँ बलके करें पादसंवाहन स्वामी।
कबहूँ डरिके भगें ग्वाल सँग अन्तर्यामी॥
मल्लयुद्ध करि कबहुँ सखनिकूँ पकरि पछारें।
कबहूँ जावें जीति कबहुँ गोपनितें हारें॥
ब्रज ऐश्वर्य भुलाइकें, त्रिभुवनपति हरि रमापति।
बालसुलभ क्रीड़ा करहिं, सुख ब्रजजीवनि देहिं अति॥

धेनुकासुर उद्धारलीला

(६१७)

राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिवर्हण ।
इतोऽविदूरे सुमहद्वनं तालालिसंकुलम् ॥
फलानि तत्र भूरीणि पतन्ति पतितानि च ।
सन्ति किन्त्ववरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना ॥*

(श्री.भा० १० स्क० १५ अ० २१, २२ श्लो०)

छप्पय

एकदिवस बन गये गोप बोले सुनि कनुआँ ।
बलुआ भैया सुनो आज मचल्यो अति मनुआँ ॥
पके ताल की गन्ध सबनिको चित्त चुरावे ।
मनमहँ उठै उचंग जीभ पानी भर लावे ॥
पके पके फल परे खर, रहे धेनुकासुर तहाँ ।
मारे पिछले पगनितैं, जो जावे प्रानी वहाँ ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! ग्वालबालों ने राम और कृष्णको सम्बोधित करते हुए कहा—" हे महाबाहो राम ! हे दुष्टों के नाश करने वाले श्रीकृष्ण ! यहाँ से कुछ ही दूर पर तालके वृक्षों से पूर्ण एक बड़ा भारी बन है । वहाँ पके पके ताल के बहुत से फल नित्य ही गिरा करते हैं । अब भी वहाँ बहुत-से गिरे हुए हैं किन्तु दुष्ट धेनुकासुरने उन सबको अपने वश में कर रखा है ।"

भगवान्को जब जैसी लीला करनी होती है, प्राणियोंके हृदयोंमें तब तैसी प्रेरणा कर देते हैं। वे ही सबको अपनी इच्छानुसार नचा रहे हैं। असुर भी उनकी प्रेरणासे चेष्टा करते हैं और सुर भी। सबके नियामक वे ही घनश्याम हैं। सबके प्रेरक वे ही प्रभु हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान अब नित्य प्रति प्रातः ग्वालबालोंके सहित वनमें गौओंको लेकर आते और सायंकालको लौटकर घर चले जाते। एक दिन भगवान ताल वनके समीपके वनमें बलदेवजीके साथ गौओंको चरा रहे थे। साथमें श्रीदामा, सुबल, तोक कृष्ण आदि और भी बहुतसे बालक थे। वे बालक अब श्रीराम बलरामजी और श्रीकृष्णचन्द्रजीके बलको कुछ कुछ जान गये थे। बहुत-से असुरोंके मार देनेसे उन्हें विश्वास हो गया था, कि ये दोनों भाई अपराजित हैं। इन्हें न कोई हरा सकता है, न मार सकता है। अतः वे अत्यंत ही स्नेहके साथ दोनों भाइयोंसे बोले—"हे बड़ी बड़ी भुजाओंवाले बल भैया। हे दुष्टदर्पघ्न कृष्ण! हम एक बात कहना चाहते हैं, कहो तो कहें—

भगवान्ने सरलताके साथ हँसते हुए कहा—"कहो भाई! क्या बात है?"

सखाओंने कहा—"यहाँसे समीप ही एक बड़ा सुन्दर तालों का बन है, उसमें बड़े सुन्दर सुन्दर पके-पके फल पेड़ोंपर लगे हैं, बहुतसे अपने आप पककर पृथिवीपर गिर पड़े हैं?"

भगवान बोले—"फल तो गिरते ही रहते हैं अपना प्रयोजन बताओ।"

सखा बोले—"क्या प्रयोजन बतावें भैया! उन पके फलों की सुवासको लाकर पवनदेव वायुमंडलमें फैला देते हैं, उन्हींकी गन्धसे तो चारों ओर सुगन्धि फैल रही है।"

भगवान बोले—"पके फलोंमें सुगन्धि तो होती ही है, तुम

चाहते क्या हो, स्पष्ट कहो। बातको घुमा-फिराकर अधूरी क्यों कहते हो ?"

सखा बोले—"अब स्पष्ट क्या कहें, तू सब जानता है, हमारी जीभ उन फलोंके लिये लपलपा रही है, उसमें पानी भर आता है। ऐसे फल हमने पहिले कभी खाये नहीं, उनकी सुगन्धिसे ही हमारा चित्त चंचल हो रहा है।"

भगवान् बोले—"तब चलो, क्या बात है, आज वहीं गौएँ चरे, हम सब पेट भरके तालके फलोंको खायँ।"

सखा अन्यमनस्क होकर बोले—"अरे, भैया ! ऐसा ही सुगम होता, तो अब तक वहाँ फल बचे रहते। लोग कबके खा पीकर समाप्त कर देते। वहाँ तो एक दुष्ट असुर रहता है असुर। वह किसीको उस वनमें झाँकने भी नहीं देता। जो आता है उसे खा जाता है उसने बहुत-से मनुष्योंको खा डाला है। मनुष्योंकी बात तो पृथक रही वहाँ कोई पशु पक्षी भी नहीं जाता।

भगवान् बोले—"वह कौन असुर है ? कैसा उसका रूप है क्यों वह लोगोंको खाता है ?"

सखा बोले—"भैया, वह असुर गधाका रूप बनाये रहता है। उसके और भी बहुत-से परिवार कुटुम्बी हैं। वे सब गधाके ही रूपमें रहते हैं। वह धेनुकासुर बड़ा ही बली है। वहाँ अपने बलवान् साथी असुरोंसे सदा घिरा रहता है। उसीके भयसे वनमें कोई मनुष्य पशु पक्षी तक नहीं जाता। हम लोग जायँगे तो वह हमें भी खा जायगा।"

भगवान् बोले—"अरे, जाओ सारेओ ? जंगली गधासे डर गये। ऐसे रेंगटा तो न जाने कितने घूमते फिरते हैं। चलो—तुम मैं सारेके पैर पकड़के पछाड़ दूँगा।"

सभी गोप प्रसन्नता प्रकट करते हुए बोले—"भगवान् करे भैयाओ ? तुम जुग-जुग जियो। उन फलोंकी सुगन्धिसे हमारा

चित्त उन्हें पानेके लिये अत्यन्त लालायित हो रहा है। चलो भैया, आज भरपेट ताल फल उड़ाये जायँ।"

भगवान् और बलदेवजी दोनों एक स्वरसे बड़े उत्साहके साथ बोले—"अच्छी बात है, चलो। देखें सारे उस गधाको भी।" यह कहकर वे अपने सुहृद् सखाओंका प्रिय करनेकी इच्छासे उनके साथ हँसते खेलते तालवनमें पहुँचे।

वनमें पहुँचकर महाबलशाली बलरामजीने तालोंके वृक्षोंको पकड़कर जैसे हाथी वृक्षोंको हिला देता है, वैसे ही उन्होंने उन्हें हिला दिया। वृक्षोंके हिलाते ही उनपरसे पट्ट पट्ट करके असंख्यों फल गिर पड़े।

गदहा बना वह धेनुक असुर एकान्तमें अपने साथियोंके साथ बैठा था। उसने जब वृक्षोंसे गिरते हुए फलोंका पट्ट पट्ट शब्द सुना, तो वह तुरन्त पृथ्वीको पर्वतोंके सहित कँपाता हुआ गर्जन तर्जन करता हुआ श्रीकृष्ण और बलरामके ऊपर दौड़ा। आते ही उसने न आव गिना—न ताव, बलदेवजीके वक्षःस्थलमें अपने दोनों पैरोंसे दो लातें मारी और आघात करके वह अपने गर्दभ स्वभावानुसार पीछे हट गया। हटकर और क्रोधमें भरकर वह गधाओंकी भाँति हेंचू हेंचू शब्द करने लगा। बलरामजी उसकी ओर क्रोधभरी दृष्टिसे देख ही रहे थे, कि उसने फिर घोर शब्द करते हुए दूसरी बार बड़े वेगसे बलरामजीकी पीठपर पैरोंका प्रहार किया। वह दुलत्ती झाड़कर फिर गर्जना करने लगा।

संकर्षणावतार भगवान् बलदेवजीको भी क्रोध आगया। उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे उसके पिछले दोनों पैर पकड़ लिये और अन्तरिक्षमें गोफनकी भाँति कई बार घुमाया। घुमाते समय ही उसके प्राण शरीरसे निकल गये। तब बलरामजीने उस असुरके मृत शरीरको एक तालके वृक्षके ऊपर पटक दिया।

उसके बेगके आघातसे वह बड़ा भारी तालवृक्ष कम्पित हो गया और वह टूटकर गिर गया। उसके आघातसे दूसरा टूट गया। दूसरेके आघातसे तीसरा और तीसरेके आघातसे चौथा। इस प्रकार बहुत से वृक्ष टूटकर गिर पड़े। श्रीबलदाऊजीके द्वारा लीला-पूर्वक ही मारकर तालवृक्षपर पटका हुआ उस असुरका शरीर भूकम्पके कारणके सदृश बन गया। जैसे बवंडर या भूचाल आनेसे बहुतसे वृक्ष गिर जाते हैं, वैसे ही यहाँ तालके भी बड़े-बड़े वृक्ष फलों सहित गिर गये। इस प्रकार भगवान्के सम्मुख उनके दर्शन करता हुआ वह गधा बना धेनुक असुर महामुनि दुर्वासाके शापसे छूटकर परम पदका अधिकारी बन गया।"

इसपर शौनकजीने पूछा—"सूतजी! यह धेनुक असुर कौन था? यह गधा कैसे बना? दुर्वासाजीने इसे शाप क्यों दिया? कृपा करके हमारे इन प्रश्नोंका उत्तर दीजिये और इस प्रसंगमें कोई कथानक हो, तो उसे भी सुनाइये।"

इसपर सूतजी अत्यन्त गम्भीर होकर बोले—"भगवन्! यह धेनुक असुर पूर्व जन्ममें महाराज असुरराज बलिका पुत्र था। जिस कारणसे दुर्वासाजीने इसे शाप दिया उस कथाको मैं आपको सुनाता हूँ। आप अब इस शिक्षाप्रद कथाको सावधान होकर श्रवण करें।"

छप्पय

हरि हँसि बोले चलो तालफल सब मिलि खावें।
जो कछु बोले असुर मारिकें ताहि गिरावें॥
यों कहि बल अरु श्याम तालवनमाँहि सिधाये।
पादप पकरि हिलाय तालफल बहुत गिराये॥
सुनत शब्द धेनुक असुर, आइ दुलत्ती झाड़िकें।
भग्यो फिर्यो बल पकरिकें, वृक्षनि फेंक्यो मारिकें॥

धेनुकासुरके शापकी कथा

(९१८)

सोऽतिवीर्योऽसुरो राम हे कृष्ण खररूपधृक्।
आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृतः ॥❀

(श्रीभा० १० स्क० १५ अ० २३ श्लो०)

छप्पय

असुर साहसिक बली युवक बलिसुत अति सुन्दर।
गयो एक दिन दैत्य गन्धमादन गिरि ऊपर॥
लखि तिलोत्तमा तहाँ कामसर आहत कीन्हीं।
सोऊ ब्याकुल भई साहसिक संगम दीन्हीं॥
गये गिरि गुहामहँ उभय, करें काम क्रीड़ा तहाँ।
दुर्वासा मुनि प्रथम ही, ध्यान मग्न बैठे तहाँ॥

संसारी विषयोंमें जीवकी स्वाभाविकी प्रवृत्ति है। इन इन्द्रियों द्वारा भोगे जानेवाले पदार्थोंका ध्यान करते करते जीवकी इनमें भोगबुद्धि हो जाती है—अर्थात् आसक्ति बढ़ती है। फिर मनमें कामभाव जागृत होता है। मनमें कामभाव उत्पन्न होनेसे

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! समस्त बालगोपाल श्रीबलदेवजी तथा श्रीकृष्णचन्द्रजीसे कह रहे हैं—हे बलराम! हे श्रीकृष्ण! इस तालवनमें रहनेवाला गधाका रूप बनाये हुए धेनुकासुर स्वयं भी बड़ा बली है और अपने ही समान और भी बहुत-से बली असुरोंसे घिरा रहता है।"

इन्द्रियाँ चंचल हो जाती हैं, वैसे तो सभी इन्द्रियाँ प्रबल हैं। किन्तु रसना और उपस्थ इन दो इन्द्रियोंको अत्यंत प्रबल कहा है। मनमें काम भाव उत्पन्न होते ही प्राणी किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा बन जाता है। जैसे तीक्ष्ण वायु कदलीके वृक्षको झकझोर डालती है, वैसे ही कामके मनमें प्रवेश करते ही सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। जैसे रई गाढ़े दधिके रग-रगको मथ देती है, उसी प्रकार यह अनंग प्राणियोंके—विशेषकर युवक-युवतियोंके—मनकोबलपूर्वक मथ देता है। इसीलिये कामका दूसरा नाम मन-मथ है। कामाधीन होनेपर प्राणी धर्म, कर्म, लज्जा, साहस, प्रतिज्ञा, कर्तव्य, मर्यादा तथा सदाचार सबको भूल जाता है। वह विवश हो जाता है। जो बली कभी भी कहीं भी पराजित नहीं हुए, वे कामके सामने झुक जाते हैं, नतमस्तक हो जाते हैं, उसके वशमें हो जाते हैं। एक नारायण ऋषिको छोड़कर सभीको इसने अधीन कर रखा है। संसारमें ऐसा कोई बिरला ही होगा जिसके मन में यह उत्पन्न न हुआ हो। मनसिज इसका नाम ही है। मनमें उत्पन्न होकर यह इन्द्रियोंको अपने अधीन कर लेता है। इसके कारण ब्रह्मादि देव, इन्द्रादि लोकपाल, विश्वामित्र पराशर जैसे महान् ऋषि सभी दुखी हैं। इसने सबपर अपना अधिपत्य स्थापित कर रखा है। मनुष्य करने चलता है कुछ हो जाता है कुछ। ऋषि-मुनि सर्वस्व त्यागकर वनोंमें जाते हैं, वहाँ इस दुष्टके चक्करमें फँस जाते हैं। भूल जीवोंसे ही होती हो सो बात नहीं. कभी-कभी ईश्वरोंसे भी बड़ी भारी भूल हो जाती है। भोले बाबा शंकरने इस दुष्ट कामको क्रोध करके मार तो डाला, किन्तु फिर दयाके वशीभूत हो गये। अंग-रहित करके भी इसे पुनः सब प्राणियोंके हृदयमें रहनेका वर दे दिया। अंग-वाला होकर जितना बली था, अनंग होकर यह और भी बली हो गया। सब अनर्थोंकी जड़ यही दुष्ट है। इसका कोई रूप

नहीं, रंग नहीं, आकार नहीं, प्रकार नहीं, समय नहीं, यह संकल्पसे उठता है। जो संकल्पहीन हो गये हैं, जिनके मनमें कभी संकल्प-विकल्प उठता ही नहीं, उनके पास तो यह फटकता ही नहीं। अजी, मिट्टीसे ही तो घड़ा बनता है। मिट्टी न हो तो घड़ा बने कैसे। संकल्प न हो तो काम कैसे पैदा हो, किन्तु संकल्पहीन तो इस संसारमें विरले ही होते हैं। यह काम, भक्त अभक्त दोनोंको ही कष्ट देता है, अन्तर इतना ही है, कि अभक्त तो इसके चक्करमें फँसकर चौरासीके चक्करमें घूमते हुए असंख्यों जन्मों तक दुख भोगते है। भक्तोंके मनमें यह होता है, तो कुछ दिन क्लेश सहकर किसीसे शाप दिवाकर अति शाप या अति प्रसाद कराकर प्रभुके पाद पद्मोंमे पहुँचा देता है। भगवानमें यदि इसे लगा दिया जाय, तो मोक्षका श्रेष्ठ साधन बन जाता है, इसीलिये इसकी देवसंज्ञा है। यज्ञादिमें इसका पूजन होता है। वसंत ऋतुमें इसकी पूजाका पर्व होता है और आम्रकी मंजरीसे पूजन करनेका अनंत फल बताया गया है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! आपने मुझसे पूछा था, कि धेनुकको दुर्वासा मुनिका शाप क्यों हुआ, इस प्रसङ्गको मैं आपको सुनाता हूँ, आप शिक्षाप्रद पुण्य प्रसङ्गको समाहित चित्तसे श्रवण करनेकी कृपा करें।

धर्मात्मा असुरराज महाराज प्रह्लादजीके पुत्र हुए महायशस्वी विरोचन। ये इतने सत्यप्रतिज्ञ और ब्राह्मण भक्त थे, कि देवता ब्राह्मणोंका वेष बनाकर इनके प्राणोंकी याचना करने आये। ये जान भी गये थे, कि ये ब्राह्मण वेषधारी मेरे शत्रु देवता हैं, फिर भी वेषपर श्रद्धा रखकर इन्होंने अपने प्राणोंको उन्हें दे दिया। उनके पुत्र हुए परम यशस्वी महाराज बलि। जिन्होंने वामन वेषधारी विष्णुको जानते हुए भी तीनों लोकोंका राज्य दे दिया और स्वयं श्रीहरिकी आज्ञासे सुतललोक चले

गये। इन्हीं हरिभक्तिपरायण दैत्यराज महाराज बलिका एक पुत्र था। जिसका नाम साहसिक था। वह बड़ा ही सुन्दर स्वरूपवान् भगवद्भक्त वृद्धसेवी और युवावस्थापन्न बली असुर था। उसने अपने बल पुरुषार्थसे समस्त देवताओंको जीत लिया था। संसारमें उसे मान, सम्मान, धन, ऐश्वर्य, पद, प्रतिष्ठा तथा अधिकार आदि सभी वस्तुएँ प्राप्त थीं।

एक दिन वह वनमें विहार करनेके निमित्त हिमालय पर्वतके अन्तर्गत उस गन्धमादन पर्वतपर गया, जहाँ भगवान् नर नारायण आकल्पान्त तपस्या करते रहते हैं। जहाँकी, प्रत्येक जड़ी बूटीमें एक प्रकारकी विचित्र गन्ध आती है। मुनियो! जिस कल्पकी बात मैं कह रहा हूँ, उस कल्पमें गंधमादन पर्वतकी शोभा अवर्णनीय थी। वहाँके कुसुमित काननोंसे स्वर्गके नन्दनादि उद्यान स्पृहा करते थे। यह पाद्मकल्पकी कथा है, जिस कल्पमें भगवान्के नाभिकमलसे पद्म हुआ था। जिस कल्पमें नारदजी उपबर्हण गन्धर्व थे। उस कल्पमें गंधमादन पर्वतपर विहार परम पुण्यवानोंको ही प्राप्त होता था। हाँ, तो वसन्तकी ऋतु थी, सभी वीरुध, लता, औषधियाँ अपनी सुवाससे सदा सुवासित गन्धमादन गिरि प्रान्तको और भी अधिक सुवासित बनाये हुए थीं। वहाँ पुष्पोंसे सौरभ और सुवास लेकर पवनदेव इठलाते हुए शीतल बने मन्द-मन्द गतिसे इतस्ततः विहार कर रहे थे। कोकिला कूज-कूजकर कामियोंके हृदयमें हूक पैदा कर रही थीं। प्रकृतिदेवी एकान्त पाकर सौन्दर्यके साथ क्रीड़ा कर रही थीं। उस प्राकृत सौन्दर्यको देखकर साहसिकका मन मुकुर खिल उठा। वह अत्यन्त ही प्रसन्न होकर पुण्य पर्वतकी रमणीयताका अवलोकन करता हुआ विचरण करने लगा।

उसी समय भाग्यवश समस्त अप्सराओंमें श्रेष्ठ तिलोत्तमा वहाँ आ पहुँची। इसके सौन्दर्यके विषयमें इतना ही कहना पर्याप्त

होगा, कि इसके अङ्गमें एक तिलमात्र भी ऐसा स्थान नहीं था, जिसमें अपूर्व सौंदर्य न हो। पुराणोंमें इसकी कथा इस प्रकार है, कि प्रह्लादजीके ही कुलमें एक निकुम्भ नामक बली दैत्य हो गयाहै, उसके सुन्द उपसुन्द दो पुत्र थे। दोनोंमें इतना अधिक स्नेह था, कि एक दूसरेके बिना पलभर भी नहीं रह सकते थे। साथ ही खाते पीते थे, साथ ही सोते बैठते थे। उन दोनों भाइयोंने घोर तपस्या करके ब्रह्माजीसे कभी न मरनेका वर माँगा।

ब्रह्माजीने कहा—"जो जन्मा है वह मरेगा, इसलिये तुम अपनी मृत्युका कोई कठिनसे कठिन कारण माँग लो। तब उन्होंने सोचा हमे दोनों भाइयोंमें इतना प्रेम है, कि साक्षात् ब्रह्माजी भी इसे नहीं हटा सकते, अतः उन्होंने यही वर माँगा, कि हमारी मृत्यु किसी प्राणीसे न हो, यदि हो तो आपसमें ही लड़कर हो।" ब्रह्माजीने 'तथास्तु' कह दिया। अब तो मदमें भरकर देवता, ऋषि, मुनि सबको दुख देने लगे। सबने ब्रह्माजीसे प्रार्थना की। ब्रह्माजीने विश्वकर्माको बुलाकर कहा—"तुम एक ऐसी सुन्दरी स्त्री बनाओ, कि उसे जो भी देखे वही रीझ जाय।" तब विश्वकर्माने सम्पूर्ण संसारकी वस्तुओंसे सौंदर्य लेकर एक स्त्री रत्नकी रचना की। उसके दमकते हुए अङ्गमे मानों असख्यो रत्न विश्वकर्माने जड़ दिये हों। सम्पूर्ण विश्वसे तिल-तिल सौन्दर्य बटोरकर इस कामिनी रत्नकी रचना हुई थी, अतः इसका नाम तिलोत्तमा रखा गया।" फिर यह ब्रह्माजीकी आज्ञासे सुन्द उपसुन्दके समीप गयी दोनों चाहने लगे यह मेरी स्त्री बने। इस बातको लेकर दोनोंमें कलह हुई दोनो मर गये। तबसे यह स्वर्गकी सर्वोत्तम अप्सरा गिनी जाने लगी।

कोई कहते हैं—जब कामदेव नर नारायण ऋषिको अपनी सेना सहित मोहित करने आये थे, तब भगवानने अपनी ऊरुसे एक अत्यन्त ही सुन्दरी अप्सरा निकाली। ऊरुसे उत्पन्न होनेसे

उसका नाम उर्वशी पड़ा। उसके सौन्दर्यके सम्मुख स्वर्गकी समस्त अप्सराओंका सौन्दर्य फीका-फीका दिखायी देने लगा। तब भगवान्ने स्वर्गकी शोभा बढ़ानेको उसे इन्द्रके लिये दे दिया। उसके अङ्गके तिल-तिल स्थानमें उत्तमता थी, इसलिये उर्वशीका ही नाम तिलोत्तमा है। कुछ भी हो कल्प भेदसे दोनों ही कथाएँ सत्य हैं। यहाँ हमारे कहनेका सारांश इतना ही है, कि वह श्रेष्ठ सुर-सुन्दरी अप्सरा थी। उस अप्सराने एकान्तमें विचरण करनेवाले युवावस्थापन्न परम सुन्दर शोभासे युक्त वलि पुत्र साहसिकको देखा। देखते ही उस सुर-सुन्दरीका मन विचलित हो गया। उसने अनुराग भरी दृष्टिसे धर्मात्मा वलि पुत्रकी ओर निहारा।

सोलहों शृङ्गारसे युक्त त्रैलोक्य विमोहिनी परम सुन्दरी युवती अप्सराको एकान्तमें अनुरागपूर्वक निहारते देखकर साहसिकका मन भी खो गया। अवसर पाकर मन्मथने उसके मनको मथन कर दिया। वह अपलक भावसे उस ललना ललाम सुर-सुन्दरीको निहारताका निहारता ही रह गया। जितना ही वह उसकी ओर देखता, उतना ही उसका मन उसकी ओर आकर्षित होता जाता। उसका मन व्याकुल हो गया और शनैः शनैः वह मूर्छित हो गया। कुछ कालमें उसे चेतना हुई, इधर तिलोत्तमाकी दशा भी दयनीय थी। वह आगे बढ़ना चाहती थी, किन्तु बढ़ नहीं सकती थी, उसका सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो रहा था, आननकी रक्ताभा और भी अधिक रक्त होगयी थी। वह अनुराग और प्रणय भरित दृष्टिसे वलि पुत्रकी ओर उसी प्रकार निहार रही थी, जिस प्रकार चकोरी चन्द्रको निहारती रहती है। जब साहसिक उसकी दृष्टि से दृष्टि मिलाता, तब वह दृष्टि फेर लेती अपने मुखको नीचा कर लेती। इससे वह और भी अधिक व्यथित हुआ।

मुनिवर-भगवानने प्राणियोंके हृदयमें अनुरागको क्या उत्प कर दिया है, एक विपत्तिको रख दिया है। स्नेहवान्-रात्रि दि जलता रहता है। उसे सुख नहीं, शान्ति नहीं, स्थिरता नह भूख नहीं, नींद नहीं, वह औरसे और बन जाता है। ना हृदयमें अनुराग तो पुरुषकी अपेक्षा अत्यधिक होता है, किन साथ ही उसमें लज्जाकी मात्रा भी अधिक होती है। पुरु निर्लज्ज होता है, वह अपने भावोंको भाषामें व्यक्त करता है नार अनुराग भरित दृष्टिसे ही सब कुछ कह देती है। साहसिकक साहस छूट गया। वह तिलोत्तमाके समीप गया और अत्यन्त ह स्नेहके स्वरमें कहा—"मैं तुम्हें स्वर्गकी सर्वोपरि अप्सरा शिरो भूषण तिलोत्तमा देवी समझता हूँ।"

लज्जासे कटाक्षपात करती हुई वह सुर-सुन्दरी बोली— "प्रभो! मैं आपके पादपद्मोंमें प्रणाम करती हूँ। आपका अनुमान सत्य है। तिलोत्तमा ही मुझ धार वनिताका नाम है।"

साहसिकने कहा—"देवि! तुम्हारा स्वागत है। मैं इस समय कामवाणोंसे व्यथित हूँ, तुम मेरा प्रिय कार्य करो।"

सिर नीचा करके शनैः शनैः उसने वीणा विनिन्दित स्वरमें रुक-रुककर स्खलित वाणीमें कहना आरम्भ किया—"देव मेरा सौभाग्य जो आपने दासीको इस योग्य समझा। प्रभो! आप जैसे रूपवान्, गुणवान, तेजस्वी, तपस्वी, यशस्वी, कुलीन सच्चरित्र, कृतज्ञ, शृंगारनिपुण, कामशास्त्रविशारद, सदा मनोज्ञ तथा चित्ताकर्षक वेप भूषावाले युवक राजपुत्रको पाकर कौन कामिनी अपने सौभाग्यकी सराहना न करेगी, किन्तु…"

साहसिकने कहा—"किन्तु क्या! उसे भी कह दो।"

कुछ देर रुककर व्रीड़ाका भाव प्रदर्शित करती हुई चिन्ता को व्यक्त करती हुई वह बोली—"प्रभो! रजनीकान्त चन्द्रने मुझे आज अपने यहाँ आमन्त्रित किया है। आज मैं चन्द्रलोकमें

उनकी सेवाके निमित्त जा रही हूँ। रति सुखप्रदान करके उन्होंने मुझे सदासर्वदा सन्तुष्ट किया है। आप जानते ही हैं, मैं कोई पतिव्रता तो हूँ नहीं। किसी एक पतिमें तो मेरा अनुराग है नहीं। मैं तो बहुभर्तृका पण्यस्त्री हूँ। जिनसे मैं पणकर लेती हूँ उस दिन उन्हींकी हो जाती हूँ, यही मेरा धर्म है. यदि पण करके भी मैं रजनीकान्तकी सेवामें समुपस्थित न होऊँ तो मेरा धर्म लोप होगा। पातक की भागिनी बनूँगी यही मुझे चिन्ता है।"

साहसिकने कहा—"देवि! दीन दुखियोंपर दया करना यह सबसे श्रेष्ठ धर्म है, अनुगत आश्रितोंके ऊपर कृपा करना यह कारुणिक जनोंका प्रथम कर्तव्य है।"

बलिपुत्रके ऐसे करुणा भरे हीन वचनोंको सुनकर उसके अनुरागको बढ़ानेके निमित्त वह स्वैरिणी बोली—"प्रभो! आप कुलीन हैं, धर्मात्मा हैं, मुझ बहुभर्तृका वार वनिताके प्रति आप इतने अधीर क्यों हो रहे हैं। भगवन! चाहे प्राणी सर्वज्ञ हो जाय, सब कुछ जान जाय, किन्तु स्वैरिणी कामिनियोंके मनोगत भावोंको कोई जान नहीं सकता। ये पुरातन पतिका परित्याग करके पुनः नूतन पतिसे प्रेम करने लगती हैं। इनका न कोई प्रिय है न अप्रिय। आप ऐसी मुझ वार वनिताके प्रति इतना प्रेम प्रदर्शित क्यों करते हैं?"

साहसिक बोला—"प्रिये! बड़े बड़े देवगण, विश्ववन्दित प्रजापतिगण तुम्हारी अभिलाषा करते हैं।"

उसने कहा—"अच्छी बात है, आज तो मैं चन्द्रलोक जाती हूँ पुनः किसी दिन आकर आपकी सेवामें अवश्य समुपस्थित होऊँगी।"

यह सुनकर साहसिक सहम गये। वह अनुरागयुक्त कटाक्ष मोक्षण करती हुई उनके मुख कमलके सौन्दर्य रूपी मकरन्दका अपने दोनों नेत्र रूपी चसकोंसे निरन्तर पान करने लगी। जब

उसे बलिनन्दन साहसिकने अत्यन्त अनुरागवती अनुभव कि
तब वे साहस करके बोले—"देवि ! मैं आपके सम्मुख ब
प्रयोग तो कर नहीं सकता। यदि मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं
मेरे प्रभावसे सहमत नहीं हो, तो तुम स्वेच्छासे अपने गन्तव
स्थान निमित्त प्रसन्नता-पूर्वक प्रस्थान कर सकती हो। य
द्विविधा स्थिति उचित नहीं विलम्ब करनेसे अघटित घट
घटनेकी संभावना हो सकती है, अतः तुम जाना चाहो तो ज
सकती हो, रहना चाहो तो मुझे कृतार्थ कर सकती हो।"

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! उसे जाना तो था ही नहीं
उसका चित्त तो साहसिकके सौन्दर्य जालमें उलझ गया था
उसने साहसिकका प्रस्ताव स्वीकृत किया। संकेत पाकर एक गि
गुहाके विविक्त प्रदेशमें दोनोंने प्रवेश किया।"

संयोगकी बात उसी गिरि गुहाके एक कोनेमें रुद्रावता
भगवान् दुर्वासा तपस्या कर रहे थे। वे चिरकालसे ध्यान मग्न
थे। उनके शरीरपर दीमकोंने अपना घर बना लिया था। उन
दोनोंकी उनपर दृष्टि ही न पड़ी। वे दोनों काम क्रीड़ामें संलग्न
बने रहे। कुछ कालमें रहस्यमयी प्रेमभरी वार्तोके श्रवणसे, हास
परिहास ध्वनि प्रतिध्वनिसे तथा नूपुर, कंकण किंकिड़ियोंके
कलरवसे मुनिकी समाधि भंग हुई। सम्मुख उन्होंने साहसिक
को संगमावस्थामें निहारा।

क्रोधके तो वे अवतार ही हैं। अपने आगे ऐसी अशिष्टता
देखकर मुनिने रोषमें भरकर दोनोंको शाप दिया। वे साहसिकसे
बोले—"रे निर्लज्ज दुष्ट ! अपने जातिके जीवको देखकर पशु
पक्षियोंके अतिरिक्त सभी लज्जा करते हैं। तैंने बुद्धिहीन होकर
मेरे सम्मुख गधेका-सा व्यवहार किया जा, तू गधा हो जा।
और हे तिलोत्तमे ! तैंने मानवी भावका आचरण किया, अत
जा तेरा जन्म पृथिवी पर मानव योनिमें हो।"

मुनिका शाप सुनकर दोनोंका मद उतर गया। दोनों मुनिके पादपद्मोंमें पड़कर क्षमा याचना करने लगे और अपने अज्ञान को बार बार धिक्कारने लगे। क्षणार्धमन्यु भगवान् दुर्वासा बोले—"देखो, मेरा वचन तो असत्य होगा नहीं। जब श्वेत वाराह कल्पमें अट्ठाइसवें कलियुगके अन्तमें नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अवतरित होंगे, तब उनके सम्मुख उनके अंशभूत बलदेवजीके हाथों मारे जाकर तुम्हें परम पदकी प्राप्ति होगी। तुम संसार बन्धनसे मुक्त हो जाओगे।" इतना कहकर फिर वे तिलोत्तमासे बोले—"तू पृथिवीमें बलिपुत्र बाणकी पुत्री होगी। श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्धके साथ काम क्रीड़ा करके उनकी पत्नी बनकर तू भी संसार सागरसे पार हो जायगी। तुम दोनों को भगवानके दर्शन होंगे और उन्हींकी कृपामें तुम्हारा संसार बन्धन सदाके लिये छूट जायगा। विना कष्ट सहे बोध होता नहीं।"इतना कहकर मुनि दुर्वासा मौन हो गये। वे दोनों मुनिके पादपद्मोंमें प्रणाम करके अपने अपने स्थानोंको चले गये। कालान्तरमें यह साहसिक धेनुकासुर नामक गन्धर्व हुआ जो बलदेवजीके हाथसे मरकर मुक्त हुआ। तिलोत्तमा बाणपुत्री ऊषा हुई, जिसका विवाह भगवान्के पौत्र प्रद्युम्नजीके पुत्र चतुर्व्यूहोंमें से चित्तके अधिष्ठाता श्री अनिरुद्धजीकी पत्नी हुई।

इसपर शौनकजीने पूछा—"सूतजी ! बलिपुत्र साहसिक कुलीन था, गुणवान् था, विवेकी था। उससे ऐसा अनुचित कार्य कैसे बन गया। अस्तु, भावावेशमें आकर हो भी गया, तो सम्मुख बैठे हुए मुनिको उसने क्यों नहीं देखा। यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।"

इसपर अत्यन्त दुःख ही प्रकट करते हुए करुणा भरे स्वरमें सूतजीने कहा—"भगवन् ! जब जीव कामान्ध हो जाता है, तो उसे कुछ भी दिखायी नहीं देता। सामने रखी वस्तु उसे

दिखायी नहीं देती, वह विवेक और विचारसे हीन हो जाता है। मुनि यद्यपि सम्मुख बैठे थे, एक तो उनके शरीरपर दीमक लग गयी थी। दिखायी नहीं देते थे, दूसरे उन दोनोंमें से किसीने ध्यान भी नहीं दिया। वे अपनी धुनिमें मस्त थे।

शौनकजी बोले—"सूतजी! आपने तो साहसिको भगवद् भक्त बताया था। भगवद्भक्तके मनमें ऐसी बात कैसे आयी?"

सूतजी बोले—"महाराज! किसी अदृष्ट कर्मके कारण क्षण भर को उसका ऐसा भाव हो गया। वह उसमें लिप्त नहीं हुआ। दूसरे ही क्षण उसे अपनी भूल मालूम हो गयी, उसने पश्चात्ताप किया। उसका फल यह हुआ कि मरते समय उसके मनमें पूर्व संस्कारोंके कारण भगवद्भक्ति उत्पन्न हुई। असुर होनेसे असुर भाव था ही। अन्तमें श्रीकृष्णका मुख निहारते हुए उसने परमपद प्राप्त किया। महामुनि दुर्वासापर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ा। इतने त्यागी विरागी तपस्वीके मनमें भी उस घटनाको देखकर कामभाव उत्पन्न हो गया। इसीलिये शास्त्रकारोंने इस बातपर स्थान स्थानपर बल दिया है, कि कभी असत् पुरुषोंका साथ न करना चाहिये। विषयोंकी चर्चा न करनी चाहिये, कामियोंसे संसर्ग न रखना चाहिये। किसीको स्पर्श न करना चाहिये। सदा सावधान होकर भगवत्चिन्तन और भगवद् गुण श्रवणमें ही लगे रहना चाहिये। जो लोग रात्रिदिन संसार में ही फँसे रहते हैं, उनका चित्त तो स्त्री, बच्चे, व्यापार, पशु, भवन, भूमि तथा अन्यान्य पचासों बातोंमें बँटा रहता है। जो एकान्तमें ध्यान करते हैं सबसे सम्बन्ध छोड़कर मनवाणीका निरोध करके चित्तको एक विषयमें—भगवद् ध्यानमें—लगाते हैं उनका चित्त यदि दुर्भाग्यवश कहीं चला जाय, तो भगवान ही उसे उस ओरसे हटाते हैं। चित्त एकाग्र होनेसे वे सत्य सङ्कल्प हो जाते हैं। मनमें जो संकल्प हुआ, तुरंत वह पूर्ण हो जाता है,

अतः मनमें असत् संकल्प न आवें इसके लिये भगवानकी ही एकमात्र शरण ग्रहण करनी चाहिये मनमें कोई सङ्कल्प उठे तो उस सङ्कल्प पर ध्यान न देकर विशेप जप अनुष्ठानमें कठोरताके साथ लग जाना चाहिये। महामुनि दुर्वासा शाप देनेके अनन्तर उस विपयको विचारते रहे, अन्तमें उन्हे विवाह करना पड़ा।"

यह सुनकर आश्चर्य प्रकट करते हुए शौनकजी बोले—"सूतजी! दुर्वासाजीने किसके साथ विवाह किया? कृपा करके इस कथाको हमें सुनाइये।"

सूतजी बोले—"महाराज! जब बालपुत्र साहसिक तथा तिलोत्तमा अपने अपने स्थानको चले गये, तो मुनि उसी विपयको सोचने लगे। उन्होंने दोनोंको मिथुन धर्ममें देखा था। उनके भी चित्तमें आया हम भी विवाह करें। मुनि तो सत्य सङ्कल्प थे तुरन्त एक और्व ऋषि अपनी युवती कन्याको लेकर आ पहुँचे। महामुनि और्व ब्रह्माजीकी ऊरुसे उत्पन्न हुए थे। उनकी जानुसे एक कन्दली नाम्नी कन्या उत्पन्न हुई थी। जब वह कन्या युवावस्थापन्न हुई तो उसने महामुनि दुर्वासाकी तपस्याकी बड़ी ख्याति सुनी। उसने निश्चय कर लिया, यदि मैं विवाह करूँगी, तो दुर्वासा मुनिसे करूँगी। वह निरन्तर दुर्वासा मुनिका ही ध्यान करती रहती थी। ध्यानसे जब भगवान वशमें हो जाते हैं, तो अन्य जीवोंकी तो क्या कथा। तन्मय होकर एकाग्र चित्तसे जिसका ध्यान किया जाय उसपर उसका अवश्य प्रभाव पड़ेगा, इस जन्ममें नहीं तो जन्मान्तरमें उसकी प्राप्ति अवश्य होगी।

महामुनि और्वको कन्याके साथ देखकर दुर्वासाजीने उठकर मुनिका स्वागत-सत्कार किया। दोनों ओरसे कुशल प्रश्न होनेके अनंतर दुर्वासाजीने मुनिसे आनेका कारण पूछा। मुनिने कहा—"यह मेरी अयोनिजा त्रैलोक्य सुन्दरी कन्या है। इसमें सब गुण ही गुण हैं एक इसमें अवगुण है, यह कटुभापिणी है। यह

आपको अपना पति बनाना चाहती है। यदि आप इसके कटु वचनोंको सहन कर लें, तो इसके साथ विवाह करके इसकी इच्छाको पूरी करें।"

मुनिने पहिले तो ऊपरके मनसे नाहीं-नूहीं की, किन्तु अंतमें कह दिया—"अच्छी बात है कोई बात नहीं इसके सौ अपराधों को मैं क्षमाकर दिया करूँगा। सुन लूँगा इसकी कड़वी बातोंको।"

विवाह हो गया। अब वहू दुलहा दोनों एकसे मिल गये। दुर्वासा भी क्रोधी और वह भी कटुभाषिणी होने लगा महाभारत। मुनि तो सहते रहे, किन्तु सहनेकी भी कोई सीमा होती है। मुनि अब गृहस्थी हो गये थे, तप-जप तो छोड़ दिया। गृहस्थी को बात बातमें स्त्रीस सम्मति लेनी होती है। ये जब भी बोलें—तभी वह इन्हें काटने दौड़ी। मुनिने सोचा—"अच्छे फंदेमें फँसे' परन्तु क्या करते। सौ अपराध नित्य सहनेकी ससुरसे प्रतिज्ञाकर चुके थे। इसलिये मन मारकर सहते गये। एक दिन सौ से अधिक अपराध हो गये। मुनि अपने क्रोधको न रोक सके, शाप देकर उसे भस्मकर दिया। कन्दली विचारी मर गयी।

शिशुरूपमें श्रीमन्नारायण प्रकट हुए उन्होंने वर दिया—"यह कन्दली पार्वती लक्ष्मीकी अंश थी. अपने रूपमें मिल गयी। यह कल्प कल्पमें उत्पन्न हुआ करेगी। इसके एक अंशसे पृथिवीमें कदलीका वृक्ष होगा। जो कदली सुख देनेवाली, शुभदा, फलदा, कान्ता, सकृत सूता तथा सुदुर्लभा समझी जायगी।'

उसी समय कन्दलीकी साड़ी योग प्रभावसे उड़कर और्व मुनिके ऊपर पड़ी। अपनी पुत्रीकी साड़ी देखकर ध्यान लगाकर वे सब बात समझ गये और दुर्वासा मुनिके समीप आये। दुर्वासाजी ससुरको देखकर सटपटा गये। दोनों ओरसे कहा-सुनी हुई। अन्तमें ससुरने शाप दिया—"जैसे मेरी पुत्रीको मार

कर तुमने मेरा अपमान किया है, उसी प्रकार तुम्हारा भी अपमान एक राजर्षिके द्वारा होगा।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! महामुनि और्वके ही शापका यह परिणाम हुआ, कि अत्रिपुत्र शङ्करावतार दुर्वासाको राजर्षि अम्बरीषके पैरों आकर गिरना पड़ा और एक वर्ष तक सब लोकोंमें भयभीत होकर मारे मारे फिरना पड़ा। यह मैंने अति संक्षेपमें धेनुकशाप और दुर्वासा विवाहकी कथा सुनायी। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं।"

शौनकजीने कहा—"हाँ, तो धेनुकासुरको मारकर भगवान् ने क्या किया? धेनुकासुरकी कथाको पूरी कीजिये।

सूतजी बोले—"अच्छी बात है अब मैं धेनुकासुरकी कथाको ही पूरी करता हूँ।"

छप्पय

अभय बने कामान्ध अत्रिसुत नहीं निहारे।
समुझि तिन्हें निर्लज्ज होहु खर वचन उचारे॥
सुरवनिता बनि ग्रानसुता ऊषा धरनीपै।
सुनत शाप मुनि परे पैर विलखैं करनीपै॥
पुनि मुनिवरने वर दयो, कृष्ण कृपा सद्गति लही।
भये मुक्त हरि संगतें, धन्य कथा धेनुक कही॥

धेनुक वधान्तर व्रजमें प्रवेश

(६१६)

तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्ह —
वन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् ।
वेणुं क्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिम् ,
गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन्समेताः ॥※

(श्रीभा० १० स्क० १५ अ० ४२ श्लो०)

छप्पय

इत धेनुकबध सुनत कुपित खर दौरे आये ।
बन्धु विधाती राम श्यामपै बहुत रिस्याये ॥
पकरे दोनों टाँग खरनिकूँ मारि गिरावें ।
मारि मारिके फेंकि ताल तरुवरनि हलावें ॥
सकल कर्यो बन खर रहित, वृन्दावन हरि चलि दये ।
आवत मुरलीधर सुने, नर नारी हरषित भये ॥

※श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! व्रजमें प्रवेश करने समय जिन भगवान्की अलकावली गौओं की पद्धूलिसे धूसरित हैं, जिनके मस्तकपर मयूरपुच्छ और वन्यप्रसून सुशोभित हैं, जिनकी कमनीय कटाक्षभङ्गी और मनोहर मुसकान मे अद्भुत शोभा है, जिनकी विरुदावलीका बखान ग्वालबाल पीछे-पीछे करते आ रहे हैं, जो मधुर मुरली को बजा रहे हैं, ऐसे भगवान् के दर्शनार्थ उत्कंठित नेत्रोंवाली गोपिकाएँ दर्शनो की अभिलाषासे झुंडकी झुंड व्रज के बाहर आयीं।"

सम्मुख रहनेपर पलक मारनेका जो दर्शनोंमें व्यवधान होता है, वह भी जब असह्य प्रतीत होता है, तो जो दिनभर वनमें जाकर गौएँ चराते हैं, उनके दिनका वियोग कितना असह्य होता होगा, उस वियोगके समयको वे व्रजवनिताएँ कैसे काटती होंगी, इसका अनुभव स्नेहहीन प्राणी कैसे कर सकते हैं। अत्यन्त प्रतीक्षाके अनन्तर चिरवियोगके पश्चात् जो संयोग होता है, वह कितना सुखद आनन्दयुक्त होता है, उसके बिना वियोगिनी बने अनुभव किया ही नहीं जा सकता। व्रजवनिताओंके लिये वनसे लौटनेपर गोष्ठमें प्रवेश करते समय श्यामके दर्शन नित्य नये नये ही दिखायी देते थे। नित नवाड्वान उन दर्शनोंको पाकर बड़भागिनी कृष्ण दर्शनानुरागिना व्रजाङ्गनाएँ धन्य बन जातीं, कृतार्थ हो जातीं। श्यामसुन्दरकी लौटते समय की मुरलीध्वनि सुनकर निहाल हो जातीं, आत्मविस्मृत बन जातीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! संकर्षणावतार भगवान् बलरामने लीला ही लीलामें उस धेनुकासुरको मार गिराया। उन जगत्पति शेषावतार अनन्त प्रभुके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं थी। सम्पूर्ण विश्व उनमें ही उत्पन्न होता है उन्हींमें स्थित रहता है और अन्तमें उन्हींमें विलीन भी हो जाता है। कंकण कुण्डलादिमें कनकके समान, घट सरावादिमें मृत्तिकाके समान, हाथी घोड़ा ऊँट बछेरा आदि शक्करके खिलौनोंमें शर्कराके समान तथा पटमें तन्तुके समान, जो इस विश्वमें व्याप्त हैं, सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड जिनमें ओतप्रोत हो रहा है, उन शेष प्रभुके लिये तुच्छ गदहेको मारना केवल खेलमात्र है।

धेनुकका वध सुनकर उसके अन्य भाई बन्धु अत्यंत कुपित होकर रेंकते हुए राम श्यामके ऊपर बड़े वेगसे लातोंको चलाते हुए दौड़े। श्रीबलदेवजी तथा श्यामसुन्दर दोनों ही सुमेरु और

अंजनके दो शिखरोंके सदृश अविचल भावसे खड़े थे। जो भी गधा सम्मुख आता, उसीके पैर पकड़कर घुमाकर दूर फेंक देते। उस समयका दृश्य दर्शनीय था। मरे हुए गधे इतस्ततः मुँह बाये पड़े हुए थे। उनके वेगसे फेंकनेसे बहुतसे बड़े-बड़े लम्बे-लम्बे ताड़के वृक्ष टूट-टूटकर गिरे हुए थे। उनके बड़े बड़े लाल-लाल फलोंसे पृथिवी रक्तरंजित-सी प्रतीत होती थी। ताड़के वृक्षोंसे जो रस निकलता था। उस ताड़ीकी गन्धसे वहाँका वायुमंडल गंधयुक्त बन गया था। मरे हुए गर्दभोंके शरीर, टूटे हुए तालोंके वृक्ष, भाँति-भाँतिके कच्चे पक्के फल, ये सब ऐसे प्रतीत होते थे, मानों मेघमालासे आच्छादित आकाशमंडल सुशोभित हो रहा हो।

देवताओंने देखा दयासागर देवकीनन्दनने दैत्यराज धेनुकको तथा उसके जाति कुलवालोंको परलोक पठा दिया, तो वे सब परम प्रमुदित होकर दोनों प्रभुओंपर पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे। तथा शंख, दुन्दुभि, मृदंग तथा पणवादि वाद्योंको बजाने लगे। व्रजवासी बालकों, वृद्धों तथा युवकोंके हर्षका ठिकाना नहीं था। सबके सब उन पके-पके तालके फलोंको खानेके लिये समुत्सुक थे, किन्तु धेनुकके कारण खा नहीं सकते थे। अब तो उस वनमें सबका स्वच्छन्द स्वराज्य हो गया, जो चाहता वहीं जाकर इच्छानुसार फल खा सकता था। पशुगण जाकर उसमें घासको सुखपूर्वक चर सकते थे।

आज गोपोंने पेट भर-भर कर तालके पके-पके फल खाये। सबका चित्त भर गया, खड़ी-खड़ी डकारें आने लगीं, सबने कहा—"कनुआ भैया! अब चलो चलें। भगवान् भुवन भास्कर अब अस्ताचलमें प्रस्थान करनेके लिये व्यग्रसे बने प्रतीत होते हैं, हम लोग भी अपने-अपने घर चलें।"

सखाओंकी ऐसी बात सुनकर बलदेवजीके सहित श्यामसुन्दरने गौओंको हांका। लाखों गौएँ मन्थर गतिसे ब्रजकी ओर चलने लगीं उनके पीछे-पीछे बाँसुरीको बजाते, सखाओंसे बतराते, मन्द मन्द मुस्कराते, सबको हँसाते, वनकी शोभा दिखाते आनन्दकन्द भगवान नन्दनन्दन जा रहे थे। उस समय की उनकी शोभाको निरखकर शोभा भी सहमकर सकुचा जाती।

जिनके दोनों नयन विकसित कमलके सदृश हैं ऐसे पुण्य श्रवण कीर्तन भगवान् गौओंके पीछे-पीछे गोष्ठमें प्रवेश करने लगे। बाँसुरी बजानेसे उनके कपोल झलमल-झलमलकर रहे थे। गौओंके सहस्र-सहस्र खुरोंसे रज उड़ रही थी। वह गोपीजनवल्लभ ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरके अलकोंपर, पलकोंपर, कपोलोंकी झलकोंपर उड़कर पड़ रही थी धूल धूसरिताङ्ग माधवके मयूरमुकुटमें स्थान-स्थानपर वन्यपुष्प खुरसे हुए थे। इससे उनकी शोभा विचित्र ही हो रही थी। जैसे सुरापी बन्द दुकानके खुलनेकी प्रतीक्षामें उत्सुकतापूर्वक इधरसे उधर चक्कर लगाते रहते हैं, उसी प्रकार दिन भरके विरहतापसे सन्तप्त दर्शनों की प्यासी ब्रजाङ्गनाएँ उनके आगमनकी प्रतीक्षामें स्नेहभरित हृदयके भारको कठिनतासे थामे हुए खड़ी रहती थीं। जब श्याम सुन्दर दिखायी दे जाते, तो मानों उनकी सब साधें पूरी हो गयीं। जैसे अत्यन्त बुभुक्षित सम्मुख स्वादिष्ट अन्न आनेसे अति शीघ्र-शीघ्र खाने लगता है, जैसे धूपमें आया हुआ चिरकालका पिपासित प्याऊपर आकर पस भर-भरकर पानी पीने लगता है, उसी प्रकार अपलक भावसे वे ब्रजाङ्गनाएँ ब्रजविहारीकी रूपमाधुरी का पान करने लगीं। उनके भ्रमरके सदृश चञ्चल नेत्र श्रीकृष्ण मुखकमल मकरन्दमें मानों चिपकसे गये। उनकी वाणी रुद्ध थी, अनुरागकी बाढ़में वाणी व्यर्थ बन जाती है, उसमेंसे एक शब्द भी नहीं निकलता। वे अपने सलज्ज हास्यपूर्ण विनय

प्रणय कटाक्ष रूप उपायन द्वारा श्यामसुन्दरका सत्कार कर रही थीं। गौओंको खरकमें बाँधकर बल सहित श्याम भीतर माता यशोदा और रोहिणी देवीके समीप गये।

वे पुत्रवत्सला माताएँ अपने प्राणोंसे भी प्यारे पुत्रोंको वनसे आया हुआ देखकर अधीर-सी हो गयीं और नेत्रोंके नीरसे उनके केशोंपर मानों अभिषेक कर रही हों, उनकी गोरजको धो रही हों, इस प्रकार भाव प्रदर्शित करती हुई वे बारम्बार उन्हें हृदयसे लगाकर अपने दिनभरके विरहतापको शान्त करने लगीं। अपने अञ्चलसे उनकी गोरजको पोछती हुई माताएँ समयानुसार यथेष्ट आशीर्वाद देने लगीं। मेरे लाला शीघ्र ही बड़े हो जायँ, ब्याह हो जाय, बहू आ जाय।"

इस प्रकार प्यार और आशीर्वादके अनन्तर उनके श्रीअङ्गको माताओंने स्वयं स्वच्छ किया। उनमें तेल उबटन लगाकर सुन्दर सुगंधित स्वच्छ सलिलसे उन्हें स्नान कराया, धुले हुए सुन्दर वस्त्र पहिनाये, फिर सुगंधित दिव्य मालाओंसे तथा इत्र चंदनादि से उनके शोभायुक्त शरीरको और भी सुशोभित किया। माताओं ने न जाने कितने प्यारसे सुन्दर-सुन्दर षड्‌रस पूर्ण पदार्थ बनाये थे, उन्हें अपने बालकोंको लाड़ प्यारपूर्वक परोसा दिनभर स्वच्छ वायुमें वन उपवनोंमें गौओंके पीछे-पीछे घूमनेसे भूख भी बहुत लगी हुई थी, माताओंके स्नेह सत्कार और आग्रह पूर्वक परसे हुए सुस्वादु अन्नसे बुभुक्षा पियास, शोक, मोह तथा जरा मृत्यु इन षड्ूर्मियोंसे रहित होनेपर भी दोनोंने अपनी बुभुक्षाको शान्त किया। तदनन्तर बगुलेके पंखोंके समान-दुग्ध फेनके समान, कर्पूरके समान सुन्दर स्वच्छ, सुखकर शय्यापर श्यामसुन्दर अपने अग्रजके साथ शयन करने गये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार राम श्यामने धेनुक तथा उसके अन्य साथी असुरोंका वध करके उपवनको भयरहित

बना दिया और व्रजमें आकर सब व्रजवासी नर-नारियोंको सुख दिया। अब आगे जैसे कालियनागका दमन किया, उस कथा प्रसङ्गको मैं आपके सम्मुख कहूँगा।"

छप्पय

साँझ समय श्रीश्याम सखनि सँग सुखतैं आवत।
मन्द-मन्द मुसकान मधुर स्वर वेनु बजावत॥
अलकनि पलकनि और कपोलनिकी झलकनिपै।
गोरज छाई मुकुट पीतपट लकुट लटनिपै॥
करि प्रवेश व्रजमहँ सकल—विरह ताप सबको हरयो।
भोजन करि दाऊ सहित, श्याम शयन शय्या करयो॥

कालियदमन प्रस्ताव

(६२०)

विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः।
तस्या विशुद्धिमन्विच्छन्सर्वं तमुदवासयत् ॥❀

(श्रीभा० १० स्क० १६ अ० १२ श्लो०)

छप्पय

लिये ग्वाल अरु गाय गये यमुनातट ब्रजपति।
आज न सँग बलराम ग्रीष्म ऋतु घाम विकट अति॥
कालिय ह्रदके निकट प्यासतैं सब घबराये।
करि विषयुत जलपान ग्वाल गो प्रान गँमाये॥
अमृतमयी लखि दृष्टितैं, जीवित प्रभु ने सब करे।
करी कृपा करुनायतन, दुःख आश्रितनिके हरे॥

सबके साथ श्यामसुन्दर सदा विहार कर रहे हैं। वे अपने आश्रितोंसे दूर रह ही नहीं सकते। उनके न रहनेसे किन्हींका अस्तित्व ही नहीं। श्यामसुन्दरके साथ रहते हुए भी यह जीव विषयरूपी विषका स्वेच्छासे पान कर लेता है। संसारी सन्तापोंसे संतप्त भोगेच्छारूपी पिपासासे व्याकुल हुआ जीव, अनित्य क्षण

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! श्रीकृष्णचन्द्रजीने श्रीयमुनाजी के जलको कालियनाग के विषसे दूषित हुआ देखकर उसकी विशुद्धि करने की इच्छा से उस सर्पको वहाँ से हटा दिया।"

भंगुर विषयोंको अपनी पिपासाके शान्त होनेका साधन समझ कर विना भगवान्से पूछे उन्हें पेटभरके पी जाता है। अपना ले जाता है, पीछे दुःख पाता है, विषके प्रभावसे मर जाता है। जन्म मृत्युके चक्करमें फँस जाता है। उस विषयरूप विषको पी लेनेके अनन्तर उससे बचनेका एकमात्र उपाय है, श्रीकृष्णको कृपामयी अमृत दृष्टिको वृष्टि। श्यामसुन्दर हा कृपाक दृष्टिसे देखकर जीवको बचाना चाहें तो बच सकता है, अन्यथा विषय-विषप्रिय प्राणीकी कोई अन्य चिकित्सा नहीं, उपचार नहीं, औषधि नहीं।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! वृन्दावनसे कुछ दूरपर यमुनातट पर एक ह्रद था। वर्षाके दिनोंमें तो वह यमुनाजीकी धारामें ही आ जाता किन्तु वर्षाके पश्चात् वह यमुनाजीसे कुछ पृथक् सा प्रतीत होता। वैसे उसका जल यमुनाजीमें आता था, यमुनाजीका जल उसमें जाता था। वह यमुनाजीका ही ह्रद था। उसमें एक कालिय नामक नागोंका राजा सर्प रहता था। वह साधारण सर्प नहीं था। नाग एक उपदेवोंकी संज्ञा है, ये पृथिवीके सात पातालोंमें नीचे रहते हैं। इनके पास बड़ी बड़ी मणियाँ होती हैं, उन्हींके प्रकाशसे इनके भवन प्रकाशित होते हैं, वहाँ पातालमें सूर्यका प्रकाश नहीं रहता। पहिले कुछ नाग पृथिवीपर भी रहते थे अब तो जैसे ऋषि, मुनि, असुर आदि पृथिवीको छोड़कर चले गये, वैसे ही नाग भी चले गये। ये वैसे सर्पके आकारके होते थे—किन्तु ये इच्छानुसार रूप बना सकते हैं, देवताही जो ठहरे। इनकी स्त्रियाँ मानवी स्त्रियोंके सदृश होती थीं। इनके मुखमें विष रहता था और माथेपर मणियाँ। कालियनागके सहस्र फण थे। वह बड़ाबली था, अपने बलके मदमें इसने पक्षियोंके इन्द्र श्रीगरुड़जीसे भी टक्कर ली किन्तु जैसे घास गौसे टक्कर नहीं ले सकती, उसी प्रकार यह उनसे टक्कर न ले सका। यह कालियनाग वृन्दावनके समीप

यमुनाजीके ह्रदमें रहता था। इसके वहाँ रहनेसे वह ह्रद इसीके नामसे विख्यात हो गया। उसे सब कालियदह कहते थे। वह कालियनाग उस ह्रदमें अपना एक विशाल भवन बनाकर अपने स्त्री बच्चोंके सहित सुखपूर्वक रहता था। उसके विषसे उस ह्रदका समस्त जल विषपूर्ण बन गया था। इसीलिये कोई उसके जलको नहीं पीता था। उस ह्रदमेंसे जल बह बहकर यमुनाजीमें जाता था। अतः वहाँ यमुनाजीका जल भी विषैला हो गया था। कालियनागके भयसे वहाँ कोई पशु पक्षी भी पानी पीने नहीं जाते थे। औरकी तो बात ही क्या, आस पासके वृक्ष भी उसके विषसे जल गये थे। एक कदम्बका वृक्ष शेष था।

इसपर शौनकजीने पूछा—"सूतजी! जब विषसे सभी वृक्ष जल गये, तो वह कदम्ब कैसे बच गया?"

सूतजीने कहा—"महाराज! जब गरुड़जी स्वर्गसे अमृतका घट लेकर नागोंके कहनेसे आये थे, तब वे इस कदम्बपर कुछ देर विश्राम करने बैठे थे। उसी समय उसपर कुछ अमृतके बिन्दु पड़ गये थे। इसी कारण विषका प्रभाव उसपर नहीं पड़ा। मुख्य बात तो भगवन्! यह कि उस वृक्षपर भगवान् नन्दनन्दनको क्रीड़ा करनी थी, सृष्टिका कोई कार्य उनकी प्रेरणा के बिना नहीं होता। जो भगवान्को क्रीड़ाका साधन है, उसका उनकी इच्छासे ही जन्म और विनाश होता है।

कंस भी इस बातको जानता था, कि कालिय ह्रदमें जो जाता है, उसकी मृत्यु हो जाती है। उसने सोचा—"कालिय ह्रदमें कुछ विषयुक्त कमल भी हैं, वे कालियके विषसे विनाश न होकर और बढ़ते हैं क्योंकि वे भी विषयुक्त हैं। मैं ब्रजराज नन्दसे उस ह्रदके कमल मँगाऊँ। श्रीकृष्णको अपने बल पौरुषका बड़ा गर्व है। जब नन्द ह्रदसे कमल लानेका प्रस्ताव गोपोंके सम्मुख रखेंगे। तो, सबसे पहिले कृष्ण ही बोल उठेगा कि मैं

लाऊँगा।" उसने मेरे बहुतसे असुरोंको मार दिया है, इससे उसे बड़ा घमंड हो गया है। वह जायेगा तो अवश्य ही मारा जायगा।" यही सब सोचकर उसने नन्दजीके पास संदेश भेजा। नन्दजीने।" अन्यमनस्क भावसे मथुरेश कंसका संदेश सुन लिया और संदेश वाहकको विदा किया।

एक दिन नंदजी एकान्तमे यशोदा मैयासे कह रहे थे— "सुनती है? यह कंस हमारे न जाने क्यों पीछे पड़ा है। आज उसने कालिय ह्रदके कमल भेजनेका संदेस भेज दिया है। यदि कृष्णके कानोंमें यह बात पड़ जाय, तो वह बड़ा हठी है, मानेगा नहीं, कालिय ह्रदमें अवश्य जायगा। उसका जल विषसे ऐसा खौलता रहता है, कि जो उसका स्पर्श करता है, वही मर जाता है, अतः इस बातको किसीसे कहना मत। जो होगा सो देखा जायगा, हम कह देंगे—"वहाँ अपने प्राणोंको देने कौन जाय।"

सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्ण शय्यापर पड़े-पड़े अपने पिता माता की बातोंको सुन रहे थे। उन्होंने उसी समय निश्चय किया, कि मैं कल कालिया ह्रदमें जाऊँगा, कालियनागका दमन करूँगा और वहाँसे कमलोंको लाऊँगा।" भगवान् ऐसा निश्चय करके सो गये।

प्रातःकाल उठकर उन्होंने नित्यके अनुसार ग्वालबालोंको इकट्ठा किया, गौओंको खिरकसे खोला और वनको ओर चल दिये। आज उन्होंने अपने बड़े भाई बलदेवजीको साथ नहीं लिया। वे जानते थे, बलदाऊको साथ लेनेसे यह करुणापूर्ण क्रीड़ा साङ्गोपाङ्ग न उतर सकेगी। इसीलिये किसी उपायान्तरसे आज वे बलदेवजीको व्रजमें ही छोड़ गये। आज उन्होंने गोपोंसे कहा—"देखो भाई आज अपने लोग इधर गौएँ चराने चलेंगे।"

ग्वालबाल तो श्रीकृष्णके वचनोंमें ननु नच करना जानते ही

नहीं थे। उन्होंने तो अपनी समस्त इच्छाएँ श्रीकृष्णको ही समर्पित कर रखी थीं, अतः उन सबने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"अच्छी बात है, चला जाय, इधर ही।" यह कहकर वे गौओंको बढ़ाते हुए कालियह्रदकी ही ओर चले।

ज्येष्ठ वैशाखका महीना था, कड़ाकेकी धूप पड़ रही थी. गौएँ चरते चरते शनैःशनैः चल रही थीं। चलते चलते मध्याह्न के समय सभी ग्वालवाल गौओंके सहित कालियह्रद पर पहुँचे। सभी घामसे पीड़ित थे, पिपासाके कारण सभीके कंठ सूखे हुए थे। उन सबने अत्यंत तृषित होनेके कारण वह विष मिश्रित यमुना जल पान कर लिया।

भवितव्यताके वशसे सबके सब इस बातको भूल ही गये. कि यह विष मिश्रित जल है, उस जलके पान करते ही गौएँ तथा समस्त ग्वाल बाल प्राणहीन होकर जलके किनारे ही मृतक होकर गिर गये।

भगवान्ने देखा, यह तो अद्भुत घटना हो गयी। जिनका मैं ही एक मात्र ईश्वर हूँ, उन मेरे आश्रितोंकी विषयुक्त जलके पानसे मृत्यु हो जाय, तो मेरी शरणागतवत्सलताको धिक्कार है। भगवान् तो योगेश्वरोंके भी ईश्वर हैं, उनके लिये तो कोई बात असंभव या कठिन है ही नहीं। उनकी तो दृष्टिमें ही सृष्टि है। जहाँ उन्होंने मृतक ग्वालबाल तथा गौओंपर अपनी अमृत वर्षिणी दृष्टि घुमायी, तहाँ, वे सबके सब पूर्ववत् जीवित होकर सब क्रियाएँ करने लगे। जैसे कोई निद्रासे जागकर इधर उधर देखने लगे, उसी प्रकार वे स्मृति लाभ होनेपर परस्परमें एक दूसरेको आश्चर्य चकित भावसे निहारने लगे। वे तो भगवान के प्रभावको जानते ही थे, उन्हें निश्चय हो गया, कि हम जो विषयुक्त जल पान करके मर गये थे, ऐसे हम सब मृतकोंको मदनमोहन माधवने ही पुनः जीवित कर दिया है। वे सब

श्रीकृष्णकी ओर कृतज्ञता भरी दृष्टिसे देखने लगे। कुछ ही कालमें वे भगवान्‌की योगमायाके प्रभावसे इन सब बातोंको भूलकर अब वे उन्हें अपना सखा ही समझकर क्रीड़ा करने लगे। भगवान‌ने निश्चय कर लिया कि आज मुझे इस कालिय नागको यहाँसे निकालना है। इसने यहाँके समस्त जलको वायु मंडलको दूषित बना रखा है। इस विदेशीको जहाँसे यह आया है वहीं भेजकर मैं इस स्थानको निरापद और सर्वगम्य बना दूँगा। यहाँ यमुना किनारे इस विषैले जन्तुका रहना उचित नहीं।

यह सुनकर शौनकजीने पूछा— सूतजी! यहाँ कालिय नाग कौन था? पहिले कहाँ रहता था? वह यहाँ यमुनाजीके ह्रदमें किस कारण आकर बस गया, कृपा करके इन सभी बातोंको हमें बताइये। इस विषयमें जो भी कथा हो हमे सुनाइये"

यह सुनकर सूतजी बोले— अच्छी बात है महाराज! पहिले मैं कालियनागके वृन्दावन आनेकी कथाको ही सुनाता हूँ। आप सब इस पुण्य प्रसङ्गको समाहित चित्तसे श्रवण करें"

छप्पय

रमनक नामक द्वीप नाग सब बास करहिँ जहँ।
विष बलतें उनमत्त नाग कालियहु रहे तहँ॥
गरुड़ आइ कछु खाइ कछुनिकूँ मारि गिरावें।
विनतासुत को कृत्य निरखि अहि अति भय पावें॥
सब नागनि सम्मति करी, सन्धि गरुड़जीतें करो।
रोकि जाति विध्वंसकूँ, सब सर्पनिको भय हरो॥

वृन्दावनमें कालियनागके आनेकी कथा

(६२१)

नागालयं रमणकं कस्मात्तत्याज कालियः ।
कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमञ्जसम् ॥*

(श्रीभा० १० स्क० १७ अ० १ श्लो०)

छप्पय

अरुणानुजके निकट सर्प सब मिलिकें आये।
प्रति मावस बलि देहिं सबनि मृदुबचन सुनाये॥
हरिबाहन ने बात अहिनिकी सब स्वीकारी।
पर्व पाईकें सर्प आहिँ सब बारी-बारी॥
कालिय अति बलवीर्य मद, युक्त भयो नहिँ देहि बलि।
स्वय गरुड बलि खाइकें, पहिलेही खल जाहि चलि॥

धनमद बलमद तथा अधिकार आदिके मदमें भरकर प्राणी बड़ोंका अपमान करता है, अपनेसे बड़ोंसे भी भिड़ जाता है और अन्तमें उसका पराभव होता है। यदि किसी भावसे भी जीव साधु शरणमें आजाय, उनके द्वारपर पड़ जाय, तो उसपर

---

*राजा परीक्षित् श्रीशुकदेवजी से पूछते हैं—"भगवन्! कालियनागने नागों के निवासस्थान रमणकद्वीपको क्यों त्याग दिया। उस अकेले ने ही गरुड़जी का ऐसा कौन सा अपराध किया था।

भगवान्‌की कभी न कभी कृपा अवश्य ही होगी। संतोंका समागम, संतोंके समीप निवास कभी व्यर्थ नहीं जाता, स्वभाव न भी छूटे और संकल्प-पूर्वक धाममें निष्ठा रखकर सन्तोंका सामीप्य न छोड़े, तो कृपालु कृष्ण अपने आप आकर, उसके मदसे उन्नत मस्तकको अपने पाद-प्रहारोंसे मर्दन करके नत बना देंगे। भुवनपावन अपने पाद पद्मोंके स्पर्शसे, खलको भी विश्ववन्दित तथा पुण्यश्लोक बनादेंगे। संत पुरुषोंका सान्निध्य क्या-क्या नहीं कर सकता।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जैसे आपने मुझसे नागराज कालियकी कथाके सम्बन्धमें प्रश्न किया है, उसी प्रकार मेरे गुरुदेव भगवान् शुकसे भी महाराज परीक्षितने पूछा था, कि भगवन्! कालिय रमणकद्वीपको छोड़कर यहाँ कालिय दहमें आकर क्यों रहने लगा? गरुड़जीका उसने कौन-सा अप्रिय कार्य किया? इसपर मेरे गुरुदेवने जो कथा सुनायी थी उसे ही मैं यहाँ सुना रहा हूँ।

कश्यपजीकी पत्नी विनता और कद्रू में सूर्यके घोड़ोंकी पूँछको लेकर जो वैर भाव हुआ और गरुड़जीने स्वर्गसे अमृत लाकर स्वयं अपनेको और अपनी माताको नागोंके दासत्वसे मुक्त कर लिया, यह कथा तो मैं पीछे कह ही चूका हूँ। तभीसे गरुड़जीमें और नागोंमें भोक्ता और भोज्यका सम्बन्ध हो गया। जैसे गौका भोजन तृण है वैसे ही विष्णुवाहन गरुड़जीका भोजन सर्प है। वे जहाँ नागोंको देखेंगे खा जायँगे। इस सागरके अन्तमें जो क्षीर समुद्र है उसके बीचमें एक रमणक नामक द्वीप था, उसमें नागोंकी ही बस्ती थी। बहुतसे नागवंशीय उपदेव ही उस द्वीपमें वास करते थे। गरुड़जी वहाँ आते, कुछको खाते कुछको मारकर व्यर्थ ही फेंक जाते। इससे नागोंको बड़ा क्लेश हुआ। नागोंने एक पंचायत की। सबोंने कहा—"गरुड़जी हमें बिना खाये तो

मानेंगे नहीं क्योंकि हम ही उनके आहार हैं। जब उन्हें खाना ही है, तो वे एक व्यवस्थासे खायँ। जब भी वे यहाँ आते हैं। कुछको खा जाते हैं, कुछको व्यर्थ ही मारकर फेंक जाते हैं। इसमें उन्हें भी व्यर्थ श्रम करना पड़ता है, हमारे भी कुलका संहार होता है, अतः श्रेष्ठ तो यह है, कि हम ही पारी-पारीसे स्वयं उनके लिये नियत तिथिपर आहार भेज दिया करें, इससे हमारे कुलका नाश भी बच जायगा, गरुड़जीका काम भी हो जायगा। इस प्रस्तावका पंचायतमें समुपस्थित समस्त नागोंने हृदयसे अनुमोदन समर्थन किया। सर्व सम्मतिसे यह निश्चय मान्य हुआ। एक शिष्ट मंडल जिसमें वृद्ध ज्ञानी और अनुभवी नाग थे। वह गरुड़जीकी सेवामें समुपस्थित हुआ! गरुड़जीने शिष्ट मंडलकी सभी बातें बड़ी शिष्टतासे धैर्यके साथ श्रवण की और अन्तमें उनके प्रस्तावको सुनकर कहा—"अच्छी बात है, मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं। आप एक समय निश्चित करलें।"

नागोंने कहा—"हम प्रत्येक अमावस्याको अमुक वृक्षके समीप आपको पारी-पारीसे बलि भेजा करेंगे। उसमें आपके लिये बहुतसी उपहारकी वस्तुएँ हुआ करेंगी। एक नाग उन्हें लेकर आया करेगा। आप उन वस्तुओंको भी खा लिया करें और उस एक नागको भी खालें। उसके अतिरिक्त आप अन्य किसी नागपर प्रहार न करें! कार्तिकी पूर्णिमाके अवसरपर हम पुष्कर क्षेत्रमें जाकर आपकी बड़ी भारी वार्षिकी पूजा किया करेंगे, उसमें आपको बलि भेंट दिया करेंगे। आप हमपर प्रसन्न रहें।"

गरुड़जीने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"आप लोग अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण करते रहेंगे, तो मैं कभी आपसे न बोलूँगा।"

यह सुनकर सभी नाग गरुड़जीको प्रणाम करके चले आये, उस दिनसे वे पारी-पारी पर्व-पर्वपर गरुड़जीको बलि भेंट और

एक-एक नाग भेजते रहे। गरुड़जी प्रसन्नतापूर्वक आते और बलि भेटको पाकर चुपचाप लौट जाते। सब अपनी अपनी पारीपर प्रसन्नता-पूर्वक भेट दे देते थे। इन नागोंमें एक गणनायक कालिय नाग भी था। यह बड़ा बली था। इसका विष बड़ा उल्वण था, सहस्र इसके सिरपर फण थे, यह अपने सम्मुख किसीको कुछ समझता ही नहीं था। जब इसकी पारी आयी और वृद्ध नागोंने इसे जानेको कहा, तो यह अहंकार-पूर्वक बोला—"मैं गरुड़-फरुड़को कुछ नहीं समझता। गरुड़ हमारा क्या कर लेगा। हम नहीं जाते, न उसे बलि भेंट ही देते हैं। यही नहीं अब तुम लोग जो भेंट रखोगे उसे भी हम खा जायँगे, यदि गरुड़ कुछ तीन पाँच करेगा, आँख दिखावेगा, तो हम उसे भी उसका फल चखावेंगे।"

वह नागोंमें सबसे बली था, सबने उसकी बात सुनली! सब जानते थे, यह हठी है किसीकी सुनेगा नहीं इसलिये चुप हो गये! अब कालियके मनमें गरुड़जीके प्रति ईर्ष्या हुई। गरुड़जीने लोगोंसे पूछा। सबने जो बात सत्य थी, वह बता दी। उसे सुनकर गरुड़जीको कालियपर बड़ा क्रोध आया। अगले पर्वपर वह कुछ प्रथम ही आगये। उन्होंने देखा कालिय बलि खाने आ रहा है। गरुड़जीने उसे ललकारा। उनकी ललकारको सुनकर कालिय भागा नहीं, वह उनसे युद्ध करनेको उद्यत हो गया और उनका अपमान करते हुए बोला—"तुम हमसे बलि उपहार लेनेवाले कौन होते हो? भाग जाओ।"

यह सुनकर भगवान्के परम प्रिय पार्षद उनके मित्र तथा वाहन गरुड़जी कद्रू पुत्र कालियपर परम कुपित हुए। वे उस विषवीर्य से उन्मत्त नागको मारनेके लिये उसके ऊपर झपटे।

गरुड़जीको बड़े वेगसे अपने ऊपर आक्रमण करते देखकर,

वह अपने दाँतोंसे भयंकर विषको उगलता हुआ उनकी ओर दौड़ा। विष और दाँत ही उसके परमास्त्र थे, इधर गरुड़जीके एक मात्र अस्त्र थे—उनके बड़े बड़े पंजोंके तीक्ष्ण नख। अब होने लगी दोनों ओरसे चटाचट, पटापट सटासट। वह अपनी दो सहस्र कराल जिह्वाओंको लपलपा रहा था। उसके छोटे छोटे चमकीले दो सहस्र नेत्र मानों अग्निकी ज्वालाओंको उगल रहे हों। वह अपने अनेक मस्तकोंको उठाकर गरुड़जीकी ओर चढ़ा तथा अपने विषयुक्त तीक्ष्ण दाँतोंसे उनके अंग-प्रत्यंगमें दंशन करने लगा।

यह देखकर परम प्रचण्ड वेगशाली, उग्रपराक्रमी, भगवान् मधुसूदनके प्रिय पार्षद और वाहन तार्क्ष्यपुत्र भगवान् गरुड़जी ने उस दुरात्मा कद्रू पुत्र कालियको बलपूर्वक अपने शरीरसे पृथक् कर दिया। उसे अपने शरीरसे हटाकर अपने सुवर्णके सदृश वर्णवाले दायें पीत पंखसे अत्यंत रोष पूर्वक उसपर आघात किया। जिन अकेले गरुड़जीका सामना अमृत लाते समय समस्त देवता भी मिलकर नहीं कर सके थे, उनके पंखके आघातको भला वह बेचारा कालिय नाग कैसे सहनकर सकता था। वह मुखसे रक्त वमन करता हुआ बड़े वेगसे उड़ा और यहाँ वृन्दावनमें कालिय ह्रदमें आकर छिप गया। यहाँ तो गरुड़जी आ नहीं सकते थे, अतः इसके प्राण बच गये। गरुड़जी लौट गये।"

इसपर शौनकजीने पूछा—महाराज इस यमुनाजीके ह्रदमें गरुड़जी क्यों नहीं आ सकते थे ?"

इसपर सूतजी बोले—"महाराज इस कथाको तो मैं पीछे सुना आया हूँ, इस कुण्डमें भगवान् सौभरि ऋषि तपस्या करते थे। उन्हें मछलियोंसे बड़ा प्रेम था। वे अपनी संतानके सदृश उन

कालको कुण्डके आस पास टहलते थे, तब मछलियाँ अपनी अपनी पूँछोंको उठा-उठाकर उनकी परिक्रमा किया करती थीं। मुनि भी उन्हें खानेकी वस्तु देते। मछलियाँ बहुत बड़ी-बड़ी हो गयी थीं। उनके चमकीले पर धूपमें बड़े ही सुन्दर प्रतीत होते थे। गरुड़जी उसी समय आकाशमें उड़ते रहते। जहाँ किसी मछलीने पूँछ उठायी कि एक झपट्टा मारकर वे उसे अपनी चोंचमें दबाकर उठा ले जाते और प्रेमपूर्वक पेड़पर बैठकर उसे खा जाते।

मुनिने कई बार कहा—"भैया गरुड़! भोजनके लिये इतना बड़ा संसार पड़ा है, तुम चाहे जहाँ पेट भर सकते हो। देखो, ये मछलियाँ मेरी सन्तानके सदृश हैं, मेरे सामने तुम ऐसा अन्याय मत किया करो।" किन्तु गरुड़जी किसकी सुननेवाले थे। जिन दाढ़ोंको मोटी सुन्दर स्वच्छ सरकी मछलियोंका स्वाद लग जाता है, उनके मुखमें उन्हें देखते ही पानी भर आता है। मुनिकी बातपर उन्होंने ध्यान ही न दिया। वे घात पाकर मछलियोंको पकड़ ले जाते।

एक दिन मुनिके सम्मुख ही उन्होंने अपनी इच्छित रुचिके अनुकूल भक्ष्यरूप एक मछलीको पकड़ा। उस समय गरुड़जी को बहुत भूख लगी हुई थी, मुनि मना करते रहे, किन्तु गरुड़-जीने उसे चोंचमें दबा ही लिया। वह बहुत बड़ी मछली थी, गरुड़जीकी चोंचमें वह बिलबिलाने लगी, तड़पने लगी और जलसे पृथक् होनेके कारण कुछ ही कालमें वह कालकवलित बन गयी। उसका प्राणहीन शरीर गरुड़जीकी चोंचमें रह गया। उसके प्राण पखेरू अपने प्रिय पानीके वियोगमें परलोक प्रयाण कर गये। वह मत्स्य सभी मछलियोंका राजा था, उसके मर जानेपर सरोवरकी अन्य सभी मछलियाँ तड़पने लगीं। उन सब मछलियोंको अत्यन्त ही दीन और व्याकुल देखकर दया-

वश उस कुण्डमें रहनेवाली मछलियों तथा अन्यान्य जीवोंकी कुशलताके लिये क्रोधमें भरकर महर्षि सौभरिने कहा—"आजसे यदि कभी गरुड़ यहाँ आकर इस सरोवरमें घुसकर किसी मछली या अन्य जीवको पकड़ेगा तो वह मेरे शापके प्रभावसे तुरन्त ही प्राणहीन हो जायगा।"

भगवान् सौभरि श्रीकृष्णभक्त थे, गरुड़जी उनके शापको सुनकर डर गये और तुरन्त मुनिके चरणोंमें प्रणाम करके वहाँ से चले गये। उस दिनसे वे शापके भयसे वहाँ कभी भूलकर भी नहीं जाते थे। उन्होंने जाना ही छोड़ दिया। क्योंकि विषय सम्मुख आ जानेसे चित्त चञ्चल हो ही जाता है। सुन्दर मछलियोंको देखकर कहीं मुँहमें पानी भर आया और झपट्टा मार दिया तो तुरन्त ही प्राणोंसे हाथ धोने पड़गे। इसीलिये वह स्थान गरुड़जीके लिये अगम्य था।"

इसपर शौनकजीने कहा— तब फिर और भी नाग वहाँ जाकर क्यों नहीं रहने लगे।"

सूतजी बोले— एक तो इस शापको बात सबको विदित नहीं थी। केवल कालिय ही इस रहस्यको जानता था। दूसरे वह ह्रद् अत्यंत गंभीर होनेसे अन्य प्राणियोंके लिये दुर्गम था।

कालान्तरमें भगवान् सौभरि तो संसार छोड़कर परम पदके अधिकारी हुए। वह शाप गरुड़के लिये तो बना ही रहा। उससे लाभ उठाया कालियनागने। इसीलिये वह रमणक द्वीपको छोड़कर उस ह्रदमें रहता था और उसीके नामसे यह कालिय ह्रद अथवा कालिय दह इस नामसे विख्यात हो गया। श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने कालियका दमन करके उसे वहाँसे निकाल दिया।"

शौनकजीने कहा— सूतजी! हमने कालियके रमणकद्वीपसे वृन्दावन आनेकी कथा तो सुनली अब आप कालियदमनकी ही लीला सुनाइये श्रीकृष्णने किस प्रकार कालियका दमन किया ?"

सूतजी बोले "अच्छी बात है, भगवन् ! अब आप कालियदमनकी ही कथा सुनें।

छप्पय

गरुड़ कुपित अति भये दुष्टकूँ दौरि दबायो।
कालियहू भिड गयो, बहुत विषवीर्य चलायो॥
जब नहिं लाग्यो दाव भागि कालो दह आयो।
सौभरि मुनिके शाप कवचतें प्रान बचायो॥
रहै तहाँ विष वमन करि, जल अपेय सब करि दयो।
मरहिं अचर चर जीव सब, हरि कौतुक अद्भुत कियो॥

कालियदहमें श्रीकृष्ण कूदे

(६२२)

तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन
दुष्टां नदीं च खलसंयमनावतारः ।
कृष्णः कदम्बमधिरुह्य ततोऽतितुङ्ग-
मास्फोट्य गाढरसनोन्यपतद्विषोदे ॥❀

(श्रीभा० १० स्क० १६ अ० ६ श्लो०)

छप्पय

चढ़े कँदवपै कृष्ण कूदि कालीदह माहीं ।
उठि उत्ताल तरंग उछलि जल तटनि डुबाहीं ॥
सागरमहँ जनु तरी करैं डगमग त्यों नटवर ।
नीचे ऊपर उछरि करैं क्रीड़ा विश्वम्भर ॥
निकरि भवनतें अहि लख्यो, शिशु सुकुमार सुहावनो ।
कर, पद, सब अँग अति मृदुल, मुख प्यारो मनभावनो ॥

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जिनका अवतार दुष्टोंका दमन करनेके ही निमित्त हुआ है, उन्होंने प्रचण्ड वेगयुक्त विषकी शक्ति से बलवान् कालियनाग को तथा उसके द्वारा दूषित की हुई यमुनाको देखा। तब वे कमरके फेंटे को कसकर ताल ठोकते हुए एक बहुत बड़े कदम्ब वृक्षपर चढ़कर उसपर से उस विषैले जलवाले ह्रदमें कूद पड़े।"

कोई प्राणी शक्तिभर अपना पराभव सहन नहीं कर सकता। जब प्राणी अवश हो जाता है तब वह आत्मसमर्पण करता है, तब दूसरोंके सम्मुख नतमस्तक हो जाता है। जब तक कोई छलसे, दलसे, प्रभाव, प्रलोभन तथा प्रेमसे हमें विवश नहीं कर लेता तब तक हम नवते नहीं, दीन नहीं होते, हाथ नहीं पसारते। स्वेच्छासे हीन कौन होता है। श्रीकृष्ण अपनी रूपमाधुरी वेणुमाधुरी तथा लीलामाधुरी से जिनके चित्तको चुरा लेते हैं, अथवा अपने बल पुरुषार्थसे जिन्हें दबा देते हैं वे उनकी शरणमें आ जाते हैं। उनके अपने बन जाते हैं। प्रभु उन्हें अपना लेते हैं, क्योंकि वे सर्व भूतोंके एकमात्र सच्चे सुहृद् हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब सब गौएँ तथा ग्वालबाल जीवित हो गये, तब भगवान वहाँ ग्वालोंके साथ गेंद खेलने लगे। गेंद थी श्रीदामाकी। खेलते खेलते भगवान्ने जानबूझकर श्रीदामाकी गेंदको कालिय ह्रदमें फेंक दिया। अब तो श्रीदामाने श्रीकृष्णचन्द्रकी फेंट पकड़ ली और रोषके स्वरमें बोला—"हमारी गेंद दे दे।"

भगवान्ने कहा—"भैया! गेंद तो इस कालियदहमें चली गयी। इसमें कालियनाग रहता है, विषैला इसका जल है, घर चलकर मैं तुझे एक नहीं दो गेंद बनवा दूँगा।"

श्रीदामाने कहा—"मुझसे तू चाहें एक बार कहला ले, चाहें सौ बार कहला ले-मुझे अच्छी नहीं चाहिए, मेरी उसी गेंदको ला दे।"

अपने सखाके हृदयमें भगवान्ने ही ऐसी प्रेरणा कर दी थी। भगवान्ने एक बार उस यमुनाजीके अन्तर्गत कालिय कुंडको निहारा, जिसका जल कालिय के मुखसे निकले विषकी ज्वालासे सदा खौलता सा रहता था। उसमें रहनेवाले जीवोंकी बात तो पृथक् रही, उसके ऊपरसे जो पक्षी उड़ जाते थे, वे भी उसकी

लपटसे झुलसकर उसमें गिर जाते थे। उस ह्रदके जलकी उत्ताल तरङ्गोंको स्पर्श करके बहते हुए आर्द्र समीरके संसर्गसे तटके वृक्ष तथा गुल्म लतायें और उनपर निवास करनेवाले विहंगवृन्द निर्जीव होकर भस्मसात हो गये थे।

भगवान्‌ने अपने मनमें सोचा—"यह दुष्ट कालियनाग इस प्रचण्ड वेगयुक्त विषकी शक्तिसे विशेष बलवान् बना हुआ है। इस विषसे ही इसने ह्रदको तथा यमुनाजीके जलको विषैला करके दूषित बना दिया है। मुझे इस दुष्टका दमन भी करना है। कंसमामाके लिये कमल भी लाना है और श्रीदामाकी गेंदको भी निकालना है। मेरा मुख्य काम तो इस दुर्दमनीय दुष्ट कालियके दर्पको चूर करना ही है, क्योंकि मेरा अवतार ही इस निमित्त हुआ है।"

यही सब सोच समझकर श्यामसुन्दर उस बड़े भारी कदंबके वृक्षके ऊपर चढ़ गये, जो अमृतके प्रभावसे कालिय ह्रदके तटपर रहता हुआ भी हरा भरा बचा हुआ था। उन्होंने कसकर अपने पीतपटकी फेंटको बाँधा। बड़े शब्दके साथ उन्होंने अपनी तालोंको ठोका तथा उस विषैले सरोवरमें धड़ामसे कूद ही तो पड़े। उस सरोवरका सलिल सर्पके विषके कारण स्वयं ही उबल-उबलकर उछल सा रहा था, अब श्रीकृष्णके वेगके साथ कूदनेसे वह सम्पूर्ण जल राशि क्षुभित हो गयी।

जिस जलमें विष मिल जाता है, उसके बबूलोंमें उसकी उत्ताल तरंगोंमें लाल पीले रंगकी चमकसी दिखायी देती है, वह सूर्यकी किरणोंके संसर्गसे टूटे हुए इन्द्र धनुषके सदृश प्रतीत होती है। इस प्रकारकी वे रंग बिरंगी लहरें तरंगोंके सहित चार सौ हाथ ऊपर उछलीं तथा सरोवरके चारों तटोंको डुबाकर दूर तक जलको फैलाने लगीं। उस समय उन उत्ताल तरंगोंके ऊपर विहार करते हुए भगवान् ऐसे प्रतीत होते थे मानों किसी महान्

सरोवरमें कोई गजराज क्रीड़ा कर रहा हो। अथवा ऊँची-ऊँची तरङ्गों वाले समुद्रमें कोई पोत डगमगा रहा हो। अथवा प्रलय कालीन समुद्रमें बालमुकुन्द भगवान् विहार कर रहे हों, अथवा मथे जाते हुए समुद्रमें विष निकलते समय कच्छप भगवान् प्रकट होकर हिल रहे हों।

भगवान् अपनी दोनों विशाल भुजाओंको पटक-पटककर जलकी तरङ्गोंको चीरते हुए सरोवरमें इधरसे उधर स्वच्छन्द विहार कर रहे थे। हाथोंके चलानेसे जलमें बड़ा भारी शब्द हो रहा था जिससे दिशायें तथा विदिशायें प्रतिध्वनित हो रही थीं।

इस भीषण शब्दको सुनकर कालिय नागके कान खड़े हुए। आज तक किसीने उसके सरोवरमें आनेका साहस नहीं किया था। वह विदेशी होनेपर भी इस प्रदेशपर अपना आधिपत्य जमाये हुए था। कोई उसके सम्मुख नहीं आता था। इस शब्द को सुनकर ही सर्पने समझ लिया किसीने मेरा तिरस्कार किया है, किसीने मुझे युद्ध के लिये चुनौती दी है। इस अपमानको सहन न कर सकनेके कारण वह अपने भवनसे बाहर निकला। घरसे निकलकर वह भगवान् वासुदेवके सम्मुख उपस्थित हुआ।

भगवान्की भुवनमोहिनी बाँकी-झाँकीको निहारकर वह निहाल हो गया। उसने देखा नूतन जलधरकी द्युतिके समान सुन्दर सुकुमार सुगठित सुखद सलोना शरीर है, जिनके विशाल वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न है। विद्युत्के समान जिनका पीताम्बर कृष्णवर्णके श्रीअङ्गपर झलमल झलमल करता हुआ फहरा रहा है, जिनका मनोहर मधुर मुख मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त है, जिनके युगल चरण कमलकोषके सदृश अत्यन्त ही सुकुमार और कोमल हैं, ऐसा एक अत्यन्त दर्शनीय मनोज्ञ मनहर बालक निर्भय होकर जलपर क्रीड़ा कर रहा है। उसके मुखमण्डलपर विषादकी एक रेखा तक नहीं है, विपक्ष...

शरीरपर कोई भी प्रभाव दिखायी नहीं दे रहा है। यह हँसता हुआ, ताल ठोकता हुआ इधरसे उधर विचरण कर रहा है।

सर्प एक तो स्वभावसे ही क्रोधी होते हैं, फिर यह तो अपने विषवीर्य तथा बलके कारण अत्यन्त ही अभिमानी हो रहा था, अतः उसने शीघ्रतासे आकर कृष्ण भगवान्‌को चारों ओरसे

अपने शरीरसे इस प्रकार लपेट लिया, मानों उन्हें नागपाशमें बाँध लिया हो। इस प्रकार उन्हें अपने शरीरके बन्धनसे जकड़ कर वह अपने शत फणोंसे श्यामसुन्दरके मर्मस्थानोंमें दंशन करने लगा।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार अपने सखा सुहृद् तथा सर्वस्व आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रको कालियनागके शरीर बन्धनसे बँधा हुआ तथा निश्चेष्ट सा देखकर समस्त ग्वाल-बाल अत्यन्त ही पीड़ित हुए। वे श्रीदामाको बार-बार धिक्कारने लगे, श्रीदामा भी बार-बार पश्चात्ताप करता था, कि मैंने श्रीकृष्णसे ऐसा आग्रह क्यों किया। सभी अत्यन्त भयभीत होकर मूर्छित हो गये और अचेतावस्थामें धड़ामसे धरती पर गिर पड़े। क्योंकि उन्होंने तो अपना शरीर, धन तथा परिवार सभी श्रीकृष्णको समर्पित कर रखा था। यहाँ तक कि उन्होंने अपनी समस्त इच्छाएँ भी श्रीकृष्णकी इच्छामें ही मिला दी थीं। ऐसे अनन्यगति सुहृदोंको इतना अधिक दुःख होना स्वाभाविक ही है। गोपोंकी ही यह दशा हो सो बात नहीं। जितनी गौएँ थीं, बैल, बछिया, बछड़े और भी जो सब थे—वे सब अत्यन्त दुःखसे डकराने लगे। सभी श्रीकृष्णकी ओर टकटकी लगाये निश्चेष्ट होकर चित्र लिखेके समान हो गये। उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि नहीं रही।

छप्पय

दहमहँ क्रीड़ा करे न कछु भय मनमहँ माने।
मेरो विष अति उग्र अज्ञ बालक नहिँ जाने॥
ऐसो मनमहँ सोचि क्रोध करि कालिय आयो।
डसे दुष्ट करि कोप कृष्ण तनु अँग लपटायो॥
अहि बन्धनमहँ श्यामकूँ, निरखि बाल व्याकुल भये।
गौ बछरा अरु ग्वाल तहँ, मूर्छित सबरे है गये॥

नागपाशमें आबद्ध श्रीकृष्णको देखकर व्रजवासियोंका विलाप

[६२३]

अन्तर्ह्रदे भुजग भोगपरीतमारात्,
कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयान्ते ।
गोपांश्च मूढधिषणान्परितः पशूंश्च,
संक्रन्दतः परमकश्मलमापुरार्ताः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० १६ अ० १९ श्लो०)

छप्पय

इत व्रजमहँ उत्पात होहिं अति उग्र भयङ्कर ।
तन, मन, भू, आकाश सबनिमहँ उठै बवंडर ॥
आज बिना बल गयो श्याम वन गाय चरावन ।
नर-नारी अति दुखित लगे सब बन-बन खोजन ॥
ध्वज अङ्कुश वज्रादितें, चिह्नित पद पहिचानिकैं ।
पहुँचे कालिय दह निकट, डरे मृतक सब जानिकैं ॥

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! उन व्रजवासियों ने जब दूर से ही कालिय दहमें सर्प-शरीरके बन्धनमें जकड़े हुए श्रीकृष्णचन्द्रको निश्चेष्ट देखा, ग्वालबालों को भी जलाशयके किनारे अचेतावस्थामें देखा तथा सब ओर गौओंको भी आर्त्तस्वरसे डकराते देखा तो वे अत्यन्त ही व्याकुल होकर मूर्छित हो गये ।

अपने शरीरमें दुःख होनेसे उतना क्लेश नहीं होता, जितना अपने प्रियके कष्टको देखकर कष्ट होता है, जिन्हें हम प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते हैं, उनका दुःख प्राणोंका पण लगाकर भी हटाया जा सके, तो प्रेमका मर्म जाननेवाले हँसते-हँसते अपने प्यारेका प्रिय करनेके लिये प्राणोंका उत्सर्ग कर देते हैं। यही नहीं अपने प्रियके प्राणोंके बचनेकी कोई आशा दिखायी न देती हो और स्वयं सब प्रकारसे विवश हों, तो उसके मरनेके पूर्व स्वयं मर जाना प्रेमीगण श्रेष्ठ समझते हैं। ऐसे अनेक उदाहरण सुनने और देखनेमें आते हैं कि जो पत्नी अपने पति परमेश्वरको प्राणोंसे भी अधिक प्यार करती थी, जब उसके पति किसी असाध्य रोगमें व्याप्त हो गये और चिकित्सकोंने निश्चित रूपसे कह दिया कि अब ये नहीं बचेंगे, तो पत्नीने जल या विषके प्रयोगसे उसके मरनेके पूर्व ही प्राणोंका परित्याग कर दिया। यह तो भावनासे पति माननेवालोंके सम्बन्धकी बात है, किन्तु जो स्वयं साक्षात् जगत्पति हैं, परात्पर हैं, उनको ही जिन्होंने अपना सर्वस्व समझ लिया है, उन ब्रजाङ्गनाओंकी श्रीकृष्णको विपत्तिमें फँसा देखकर कैसी दशा हुई होगी, इसे वाणी या लेखनी द्वारा व्यक्त करना असंभव है, पाठक मनसे ही उस दुःख का अनुमान कर लें।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो श्रीकृष्णचन्द्र जब गौएँ लेकर वनको चले जाते थे, तो गोपिकाओंके हृदय उनके वियोगमें संतप्त हो जाते थे, उन तप्त हृदयोंके लिये एकमात्र औषधि थी—श्रीकृष्णकी ही चरचा। कृष्णकथा सूतके सिञ्चन और पान रूप उपचारसे वे जैसे-तैसे अपने समयको बिताया करती थीं। कोई श्रीकृष्णकी रूप माधुरीका ही वर्णन कर रही हैं, दूसरी गोपिकाएँ उसे श्रद्धा सहित तन्मय होकर सुन रही हैं, कोई लीलामाधुरीका ही वर्णनकर रही हैं। कोई वेणु माधुरीकी ही महिमा गा रही है।

इस प्रकार कहते सुनते वे दिनको विता देती थीं। सायंकालको श्रीकृष्ण दर्शन करके अपने श्रमको सफल समझतीं।

प्रेमका सम्बन्ध दोनों ओरसे होता है, जिसकी जो याद करता है, दूसरा उसकी याद न करता हो यह असंभव है। दो प्रेमियोंका मन हो एक नहीं हो जाता, कभी-कभी तो तनमें भी एकसी क्रियायें होने लगती हैं, उसके सुई चुभोओ—तो दूसरेके रक्त निकलेगा। श्रीकृष्ण जब नागके पाशमें बँध गये तथा गौएँ और ग्वाल मूर्छित हो गये, तब व्रजमें भी सबके मन एक साथ क्षुभित हो गये। कथा कीर्तनमें किसीका मन ही न लगने लगा। पृथिवीमें बड़े-बड़े उत्पात दिखाई देने लगे, आकाशसे रक्तकी वर्षा होने लगी। सबके शरीर जलने लगे, मानों किसीने विषका प्रयोगकर दिया हो। सबके मनमें घबड़ाहट उद्विग्नता तथा अशान्ति छा गयी। आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक तीनों प्रकारके भयङ्कर उत्पात दृष्टिगोचर होने लगे। एककी ही यह दशा हुई हो सो भी बात नहीं। समस्त व्रजवासी आबाल वृद्ध नर-नारियोंकी यह दशा थी। नन्दादि समस्त गोपगण इसका कारण खोजने लगे। उनके तो एकमात्र आधार श्रीकृष्ण चन्द्र ही थे, प्रेममें तो पग-पगपर शङ्का बनी ही रहती है, सबकी दृष्टि श्रीकृष्णचन्द्रकी ही ओर गयी। सब परस्परमें पूछने लगे— "आज श्रीकृष्णचन्द्र गौओंको लेकर किधर गये थे ?"

किसीने कहा—"आज तो कुछ पता नहीं। कालियदहकी ओर कुछ गौओंके घंटोंकी-सी धुनि सुनाई देती थी।"

इस बातको सुनते ही सबके सब सन्नसे हो गये। यह जानकर कि आज श्यामसुन्दर बल भैयाके बिना अकेले हो गौओंको चराने गये हैं, इसे स्मरण करके तो वे भयसे और भी अधिक व्याकुल हुए। उनका भगवान‌में माधुर्यभाव था। माधुर्यमें ऐश्वर्य विलीन हो जाता है। जिनको हम हृदयसे

अपना सगा सम्बन्धी मान लेते हैं, फिर चाहें वे कैसे भी ऐश्वर्यशाली क्यों न हों, उनकी महत्ता हमें स्मरण ही नहीं आती। ब्रजवासी भगवानके अनेक अद्भुत अलौकिक कार्योंको यद्यपि देख चुके थे, फिर भी प्रेममें उन सबको भूल गये। उनके मनमें यह बात बैठ गयी कि ये भयङ्कर उत्पात घोर अनिष्टके सूचक हैं। अवश्य ही श्रीकृष्णके प्राणोंका भय उपस्थित हुआ है, क्या हम अब फिर श्रीकृष्णको जीवितावस्थामें देख सकेंगे, इस विचारके आते ही वे सबके सब दुख, शोक तथा भयसे व्याकुल होकर अत्यन्त ही अधीर बन गये। उन सब ब्रजवासियोंके प्राण तथा मन सदा सर्वदा श्यामसुन्दरमें ही लगे रहते थे। गौएँ जिस प्रकार तुरन्त उत्पन्न हुए बच्चेसे प्यार करती हैं उसी प्रकार सभी ब्रजाङ्गनायें श्रीकृष्णको प्यार करती थीं। श्रीकृष्णके अनिष्ट की बात याद आते ही समस्त ब्रजवासी बालक, वृद्ध, युवा तथा नरनारी अपने अपने घरोंसे अत्यन्त दीन होकर निकल पड़े। अब उनका एकमात्र ध्येय श्रीकृष्णके दर्शन करनेका ही था। जैसे हो तैसे हमें श्रीकृष्णके जीवितावस्थामें दर्शन हो जायँ, हम उनके मन्द मन्द मुसकानसे युक्त कमल मुखको निहार सकें यही उन सबकी अत्युत्कट अभिलाषा थी। उन सबके साथ संकर्षणावतार भगवान् बलदेवजी भी थे। श्रीकृष्णके लिये ब्रजवासियोंको इस प्रकार अधीर होते देखकर वे मन ही मन हँसने लगे। क्योंकि वे तो अपने छोटे भाईके प्रभावको भली भाँति जानते थे, उन्हें तो विश्वास था, उन परात्पर प्रभुका, कोई कुछ अनिष्ट कर ही नहीं सकता। वे भयको भी भय देने वाले मृत्युके भी मृत्यु तथा कालके नियामक हैं, फिर भी उन्होंने ब्रजवासियोंसे कुछ कहा नहीं। उन्होंने सोचा—"अच्छी बात है, हृदयमें जितना ही अधिक विरह बढ़ेगा, दर्शनोंकी लालसा जितनी ही अधिक उत्कट होगी, अंतःकरण उतना ही अधिक

शुद्ध होगा। वाह्य संयोगसे विरहमें मनका संयोग सर्वश्रेष्ठ होता है। इसीलिये रोते हुए नरनारियोंके पीछे ये भी वैसा ही भाव प्रदर्शित करते हुए उनके साथ साथ चले।

श्रीकृष्णको ढूँढ़ना कोई कठिन कार्य तो था नहीं। एक तो गौओंके खुरोंके चिह्नसे हीसहजमें जाना जा सकता है, कि आज गौओंका झुण्ड किधर गया है, फिर सबसे प्रामाणिक वात तो यह थी, कि श्रीकृष्णके चरणोंमें ध्वज, वज्र, अंकुश तथा कमल आदिके ऐसे चिह्न थे, जिनसे समस्त व्रजवासी भलीभाँति परिचित थे। उन परम पावन पुण्यप्रद पादपद्मोंके चिन्होंका अनुसरण करते हुए व्रजवासी उसी ओर बढ़े। मार्गमें उन्हें गौओंके आजके ही असंख्यों खुर उभरे हुए दिखाई दे रहे थे। समस्त ग्वालबालोंके पैरोंके भी चिन्ह थे और उनके बीच बीचमें गोपालक गोविन्दके चरण-चिन्ह सुशोभित हो रहे थे। उन सबसे शीघ्रता पूर्वक चलते चलते दूरसे ही कालियह्रदमें सर्पके शरीरमें कसे हुए उसके बन्धनमें बँधे हुए दामोदरको देखा। उन्होंने अनुभव किया, कि श्यामसुन्दर उस सर्पके शरीरसे जकड़े होनेके कारण निश्चेष्ट हो गये हैं, उनका बल पौरुष अब कुछ काम नहीं दे रहा है। इधर श्रीकृष्णचन्द्रकी तो यह दशा थी। समस्त ग्वालवाल जलाशयके निकट ही तटपर अचेतनावस्थामें मृतप्रायः पड़े हैं। समस्त गौएँ नेत्रोंसे नीर वहाती हुई आर्त स्वरसे डकरा रही हैं। इन सबकी ऐसी दुर्दशा देखकर तथा श्यामसुन्दरको सर्प शरीरसे बँधा देखकर वे सबके सब मूर्छित हो गये।

गोपियोंकी दशा दयनीय थी उनका उन अच्युत अनन्तके प्रति अत्यन्त ही अनुपम अनुराग था। जिन्हें हम अपने बाहु-पाशमें बाँधकर अनुराग भरित हृदयसे सटाकर आलिंगन करती थीं वे ही हमारे प्रियतम प्राणवल्लभ आज नागके पाशमें कसे

हुए पड़े हैं। इस बातको विचारकर तथा उनकी मन्द-मन्द-मुसकान, अत्यन्त आकर्षणसे युक्त टेढ़ी चितवन, प्रेमपूर्वक मिलना जुलना तथा बोलना आदि सौहार्द्र की बातोंको बार-बार स्मरण करके—अत्यन्त ही अधीर हो उठीं। उनका हृदय अत्यधिक संतप्त था। प्राणाधिक प्रिय ब्रजवल्लभके बिना उन्हें समस्त संसार सूना-सूना-सा दिखाई देने लगा।

जब अन्य गोपियोंकी ऐसी दशा थी, तब यशोदाजीकी दशा का वर्णन करना तो असम्भव ही है। उनके दोनों नयनोंसे झर-झर करके नीर बह रहा था, वे अपने दोनों हाथोंसे छातीको पीट रही थीं, आर्तस्वरसे कुररीकी भाँति श्रीकृष्णके सुमधुर नामोंको लेकर डकरा रही थीं। वे बलपूर्वक अपने प्राणोंको छोड़नेके लिये कालियदहमें प्रवेश करनेका प्रयत्न कर रही थीं। अन्य गोपी-गोप उन्हें रोते-रोते निवारण कर रहे थे। माता शोकसे अत्यन्त ही छटपटाती हुई विलाप करती हुई कह रही थीं—"बहिनाओ! मुझे छोड़ दो—छोड़दो। अपने प्यारे कृष्णके बिना मैं जीवित नहीं रह सकती। मैं उसके मुख कमलको म्लान नहीं देख सकती। इसने बड़े-बड़े असुरोंको पछाड़ा था, किन्तु आज कालियके फंदेमें फँसकर यह विवश-सा बन गया है। अब यह हाथ पैर भी नहीं चला सकता। इस सर्पने इसे कैसे कसकर जकड़ रखा है।" इस प्रकार मैया यशोदा मृतकके सदृश बनकर ब्रज जीवन घनश्यामसुन्दरके गुणोंका विलाप करते करते गान करती जाती थीं और शोकके कारण अङ्गोंको हिलाती हुई रोती जाती थीं।

गोपिकायें तो यशोदाजीको पकड़े हुए थीं किन्तु नन्दादि गोपों की दशा तो और भी बुरी थी, वे किंकर्तव्यविमूढ़-से बने श्रीकृष्ण को छुड़ानेके लिये कालियदहमें कूदने लगे। सहस्रों गोप अपने प्राणोंकी कुछ भी चिन्ता न करके कालियपर आक्रमण करनेके

निमित्त आगे बढ़े उन सबको कालके मुखमें उद्यत देखकर और सबसे आगे नन्दजीको कूदनेके लिये उद्यत देखकर दौड़कर बलदेवजी उनके समीप पहुँचे और बड़े धैर्यके साथ बोले—"बाबा! बाबा! तुम यह क्या कर रहे हो? आप ही जब इस प्रकार अधीर होंगे, तो फिर हम सब लोगोंकी क्या दशा होगी। आपको तो हमें समझाना चाहिये। आप श्रीकृष्णकी महिमाको क्या नहीं जानते? क्या आप सर्वज्ञ भगवान् गर्ग मुनिके वचनोंको भूल गये। मेरे छोटे भाईका यह दुष्ट कालिय क्या बिगाड़ सकता है? आप धैर्य धारण करें। आप कुछ ही देरमें देखेंगे कृष्ण इस सर्पके दर्पको दमन करके सकुशल ह्रदसे अभी निकलता है। श्रीकृष्णके प्रभावको मैं जानता हूँ। आप उसके लिये चिन्ता न करें।" यह कहकर तब बलदेवजीने श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा—"कृष्ण! तुम यह क्या मानुषी लीला कर रहे हो? देखो, तुम्हारे वियोगके कारण ये सभी ब्रजवासी कितने व्याकुल हो रहे हैं। अब इस दृश्यको अधिक कारुणिक मत बनाओ। अब शीघ्र ही इस दुष्टका दमन करके जलसे बाहर आ जाओ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अपने बड़े भाईकी ऐसी बात सुनकर श्यामसुन्दर हँस पड़े। वे नटवर ही जो ठहरे। उन्हें दूसरोंके दुःखकी तो चिन्ता ही नहीं, उन्हें तो खेल चाहिये। क्रीड़ाप्रिय हैं। नाचना, गाना, खेलना-कूदना यही उनका व्यापार है। अब उन्हें कालिय कुण्डमें नाचनेकी याद आयी। उन्होंने सोचा—"बहुत लोग बतासोंपर नाचते हैं, बहुतसे तलवारोंकी धारपर नाचते हैं, बहुतसे सिरपर घड़ा रखकर नाचते हैं। हम सर्पके फणोंपर ही नाचें तभी तो हमारा नटनागर नाम सार्थक होगा।" यह सोचकर सभीको सुख देने बनवारी कालियकी फणालीपर ताली देकर नाचनेको उद्यत हुए। भगवानने जैसे कालीकी फणाली पर नृत्य किया उस प्रसंगको मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

लखि अहि अंगनि बँधे श्याम गोपिन दुख दूनो ।
भयो निरखि अति कठिन हृदय सबरो जग सूनो ॥
धरि धरि हरिकी याद दुखित होवैं डकरावैं ।
दौरि दौरिकें मातु डूबिवे दहमहँ जावैं ॥
है मूर्छित सब गोपगन, गिरैं परैं दहमहँ धँसे ।
बार-बार बल बरजिकें, हरिलीला लखिकें हँसे ॥

कालियकी फणावली पर बनवारीका नृत्य

(६२४)

तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु
यद् यत्समुन्नमति निःश्वसतोरुषोच्चैः ।
नृत्यन्पदानुनमयन्दमयाम्बभूव
पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान्पुराणः ॥❀
(श्रीभा० १० स्क० १६ अ० २९ श्लो०)

छप्पय

समुझे हरि सब दुखी सुनी बलदाउ बानी ।
कालिय फनपै नृत्य करन नटवर मन ठानी ॥
समुझि श्याम सकेत सुमन सुरगन बरसावैं ।
बीणा पणव बजाइ तालमहँ ताल मिलावे ॥
मधुर-मधुर नूपुर बजहिँ, नाचैं नटवर फननिपै ।
जो न नवैं रौंदैं तिनहिँ, चरन चलावैं सबनिपै ॥

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! भगवान् नटनागर कालिके फणोंपर नृत्य करने लगे । वह नाग अपने नयनोंसे विषवमन करता हुआ क्रोधके कारण वेगके साथ फुफकारें छोड़ने लगा । वह अपने सहस्र शिरोंमें से जिस-जिसको ऊँचा उठाता, उसी-उसीको नृत्य करते हुए नटवर अपने चरणोंकी ठोकरसे रौंदकर नत कर देते थे । देवता पुष्पों द्वारा उनकी पूजा कर रहे थे । उस समय वे पुराण पुरुष सुमनों द्वारा पूजित होकर शेषशायी श्यामके समान सुशोभित हुए ।

जिनका अवतार ही लीलाके लिये, क्रीड़ाके लिये हुआ है, उन्हें और कुछ सुहाता नहीं, वे तो प्रत्येक कार्यमें क्रीड़ा ही देखते हैं। जहाँ भी जाते हैं, वहीं क्रीड़ा करते हैं। क्रीड़ामें अच्छे बुरेका स्थान-अस्थानका कोई भेद भाव नहीं। भूमि तो सभी गोपालकी है। गोपाल जहाँ जायँगे वहीं क्रीड़ा करेंगे। यह विश्वही उनकी क्रीड़ास्थली है। नटवरके लिये सभी नाट्य स्थान हैं। सभी रंगमंच हैं, वे जहाँ भी जायँगे, जहाँ भी अपने चरणोंको रखेंगे वहीं नृत्य करेंगे। नृत्य ही तो उनका कृत्य है। तभी तो वे नटवर, नटनागर, नटराज और नटेश्वर कहलाते हैं। उनके नृत्यसे निरंतर विश्वका कल्याण ही होता रहता है, क्योंकि वे कल्याणके धाम हैं। उनके प्रत्येक कार्यमें कल्याण छिपा हुआ है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो, ! भगवान्ने अपने आश्रित समस्त ब्रजवासियोंको शोक चिन्ता दुःखमें रुदन करते और विलाप करते देखा, तब उन्होंने सोचा—"अरे, यह लीला तो आवश्यकतासे अधिक कारुणिक हो गयी। अब बहुत मैंने मनुष्य भावका अनुकरण किया। इस समय मुझे अपना कुछ बल वीर्य प्रकट करके इन सबको प्रसन्न करना चाहिये। नृत्य एक ऐसी कला है, जिसमें सबका मन रीझ जाता है। नृत्यमें संगीतके गायन, वाद्य और अंगों द्वारा भाव भृंगी प्रदर्शित करना ये तीनों अंग आजाते हैं। इसीलिये सभीका नृत्यसे मनोरंजन होता है। मैं आज इस कालियके फणोंपर नृत्य करके ही इन ब्रजवासियोंको प्रमुदित और आश्चर्यचकित करूँ।" ऐसा सोचकर मुहूर्त पर्यन्त तो भगवान् कालियके बन्धनमें जकड़े रहे तदनन्तर उन्होंने उसके फंदेसे निकलनेका संकल्प किया।

भगवान्ने अपने श्रीअंगमें वायुका निरोध करके उसे फुलाना आरंभ किया। श्रीअंगके फूलनेसे कालियका शरीर अत्यंत ही व्यथित हुआ। अब तक वह कुंडली मारे हुए भगवान्को

हुए था। अब जब भगवान्का अंग-अंग फूलने लगा तो, वह कुंडलीको मारे न रह सका, तुरन्त उसने अपनी गुड़मुड़ी खोल दी। भगवान् तुरंत उसके फंदेसे छूट गये और उसे व्यथित करनेके निमित्त कौतुक करने लगे।

सर्पका स्वभाव होता है, वह सहसा मुड़ नहीं सकता। उसकी गति तो टेढ़ी होती है, सीधा जा रहा है, तो सीधा ही चला जायगा। जाते जाते उसे मुड़ना होगा, तो सहसा मुड़ न सकेगा। घूमकर मुड़ेगा। भगवान् जब उसके फन्देसे निकल गये तब उनपर आघात करनेकी इच्छासे वह क्रोधमें भरकर, फणोंको उठाकर तथा लम्बी-लम्बी फुफकारोंको छोड़ता हुआ टकटकी लगाये भगवान् बालकृष्णकी ओर सरोष निहारने लगा। उस समय उसकी नासिकाओंसे विष निकल रहा था। उसके लाल-लाल अपलक अचंचल नेत्र भाड़में तपाये हुए खपड़ेके समान, लुहारकी भट्टीमें तपाये लोहेके समान, प्रलयकालमें तीक्ष्ण हुए सूर्यके समान, तथा शंकरके तीसरे नेत्रके समान लाल हो रहे थे।

उसके समस्त मुखोंसे प्रज्वलित अग्निके समान लपटें निकल रहीं थीं। वह अपनी बीचसे फटी सैकड़ों जिह्वाओंसे बारबार ओठोंके किनारोंको चाट रहा था। भयङ्कर विषाग्निमयी दृष्टि-वाले उस सर्पके चारों ओर कृपालु कृष्ण क्रीड़ा कर रहे थे।

भगवान् तो क्रीड़ाप्रिय नटवर ही ठहरे, उनके अंग-अंगमें अद्भुत स्फूर्ति थी, वे तुरंत इधरसे उधर घूम जाते। कालिय ज्योंही चोट करने की इच्छासे उधर मुड़ता तो ये फिर दूसरी ओर चले जाते। जैसे अत्यंत चंचल घोड़ेको शिक्षक अश्वारोही दौड़ा दौड़ाकर प्रथम उसे थका लेता है और तदनंतर शिक्षा देता है, इसी प्रकार पहिले भगवान्ने उसे इधरसे उधर घुमा घुमाकर निर्बल बना दिया। बार बार इधरसे उधर घूमनेसे उसका बल क्षीण हो गया। भगवान् तो माताके उदरसे ही चौंसठ कलाओंमें

निपुण होकर पैदा हुए थे। उन्होंने सोचा लाओ यहाँ अपनी नृत्यकलाका प्रदर्शन करें। यह सोचकर वे तुरंत उछलकर कालिय के फणोंपर चढ़ गये तथा थेई-थेई करके उनपर नाचना आरंभ कर दिया।

समस्त विद्याओंके आदिगुरु भगवान् वासुदेव, बलवीर्यसे दीप्त, दर्पसे उन्नत मस्तकवाले उस सर्पके सिरको नवाकर तथा स्थूल और गुदगुदे उसके फणोंपर चढ़कर अपने चरणोंके घुँघरुओंको बजाते हुए नृत्य करने लगे। भगवान्के चरण अरुण कमलके सदृश कोमल तथा लाल थे। उस कालियके फणोंपर मणियाँ दमक रही थीं, उन मणियोंके प्रकाशमें भगवान्के चरणोंकी लालिमा और भी अत्यधिक अरुण वरणकी बन गयी थी।

ऊपर आकाशमें विमानोंपर बैठे हुए देव, गन्धर्व, किंपुरुष तथा सिद्धगण इस दृश्यको देख रहे थे। उन्होंने सोचा— "सेवा करनेका अब यही सुंदर सुअवसर है। भगवान् नृत्य तो ताल स्वरमें कर रहे हैं, किन्तु उनकी तालमें ताल मिलानेवाले वाद्य न हों तो नाचनेवालेका उत्साह बढ़ता नहीं। यही सोचकर वे पहिले जो बहुत दूरसे दृश्य देख रहे थे अब भगवान् के निकट ही आ गये। भगवान्की तालमें ताले मिलाकर मृदंग, पणव, आनक, वीणा, वेणु, मंजीर तथा और भी विविध भाँतिके बाजों-को बजाने लगे। अप्सरायें मुखसे—एक दो तीन एक दो तीन—इस प्रकार बोल निकालती हुई भगवान्के नृत्यका अनुकरण करने लगीं। कालियके फणोंपर तो बनवारी नृत्य कर रहे थे और आकाशमें विमानोंपर बैठी हुई स्वर्गकी अप्सरायें तान छेड़ रही थीं। देवगण बीच बचमें जय जय, नमो नमः, साधु साधु आदि ध्वनियोंको करते हुए पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे और अपने सिरोंको कृतज्ञताके कारण बारबार झुका रहे थे।

जैसे सितारके तारोंको उँगलियोंसे दबाकर विचित्र स्वर निकालते हैं, उसी प्रकार कालियके उन्नत फणोंको अपने चरणोंके प्रहारसे दबाते हुए अखिल कलाओं के गुरु श्यामसुंदर नृत्यकी एक विचित्र आभा दिखा रहे थे। वह अभिमानी नाग अपने जिस-जिस फणकों नहीं झुकाता था, प्रचण्ड दण्डधारी भगवान् उसके उसी-उसी फणको अपने पाद-प्रहारसे कुचल डालते। उसके गर्वको खर्व कर देते।

अब तो नागका अभिमान चकनाचूर हो गया। वह बार बार विष वमन करता, लम्बी-लम्बी फुफकारें छोड़ता, प्रहार करनेका अवसर खोजता, किन्तु वह अपने कृत्यमें सर्वथा असफल ही रहा। भगवान्के पाद प्रहारोंसे वह मृतकतुल्य बन गया, मु और नासिकाओंसे रक्तकी वमन करने लगा, उसे चक्कर आ लगे और वह चेतनाशून्य होकर गिर गया। उसका बल पुरुषा पुराण पुरुष प्रभुके सम्मुख कुछ भी काम न आया। उसके फण रूप छत्र छिन्न भिन्न हो गये। समस्त अंग-प्रत्यङ्ग चकनाचू हो गये। देवताओंने इतने पुष्प बरसाये कि भगवान् पुष्पों मानों ढक गये। वे ऐसे लगे मानों शेष शय्यापर पुष्पोंके आस्त रण लगे हों। अब वह कर ही क्या सकता था। निर्बलके बल राम, जब उसका समस्त बल पुरुषार्थ समाप्त हो गया, तब अन्य कोई शरण न समझकर वह अशरणशरण दयाके सागर, चरा चर जगत्के गुरु पुराण पुरुष भगवान् श्रीहरिकी ही शरण में गया।

भगवान्के चरणोंके तले दबा हुआ वह स्वयं तो कुछ कह नहीं सकता था, अनेकों ब्रह्माण्ड जिनके उदरमें परमाणुके समान विहार कर रहे हैं, उनके भारको तुच्छ कालिय कैसे सह सकता था, वह तो उनकी ही शक्तिसे—उन्हींकी कृपासे—ऐसा करनेमें कुछ कालके लिये समर्थ हो सका था। उसकी सैकड़ों

पत्नियाँ सोलहों शृङ्गार किये हुए इस दृश्यको दूरसे देख रहीं थीं। उन्होंने जब देखा, अब तो हमारे पति अचेत हो गये हैं। इन्हें दमन करनेवाले ये कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। ये तो साक्षात् अखिलकोटि ब्रह्माण्डनायक पुराण पुरुष श्रीमन्नारायण ही हैं, तो वे शीघ्रताके साथ भगवान्के समीप आयीं। पतिके दुःखके कारण वे सबकी सब अत्यंत व्याकुल हो रही थीं। अधीरता और आतुरतावश उनके बहुमूल्य वस्त्र, दिव्य आभूषण तथा सुगंधित पुष्पमालाओंसे सुशोभित केशपाश शिथिल हो रहे थे।

मनुष्य कितना भी क्रोधमें भरा हुआ हो यदि दीन होकर अश्रु विमोचन करती हुई स्त्री उसके सम्मुख आजाय, तो उसका क्रोध कपूरके सदृश उड़ जायगा। यदि उसकी गोदमें नन्हें नन्हें फूल से भोले भाले बच्चे भी हों, तो पाषाण हृदय भी बिना पिघले न रहेगा। नाग पत्नियोंने देखा चराचरके स्वामी भगवान् वासुदेव हमारे स्वामीके अपराधके कारण उनपर कुपित हैं, तो करुणासागरके हृदयमें हमें विनय द्वारा इनके प्रति करुणा उत्पन्न करनी चाहिये।" यही सोचकर वे सबकी सब अपने छोटे बड़े बाल बच्चोंको आगे करके अत्यंत उद्विग्न चित्तसे भगवान्के समीप आयीं। आकर उन्होंने निखिल भूतपति भगवान् विश्वम्भरके पादपद्मोंमें—पृथिवीमे लोटकर—प्रणाम किया। यद्यपि स्त्रियोंको साष्टाङ्ग प्रणाम करनेका विधान नहीं है, प्रणाम करते समय उनके स्तन पृथिवीसे स्पर्श हो जायँ, तो यह दोष माना जाता है, किन्तु अधीरता और आतुरताके कारण वे सब इस नियमको भूल गयीं। अत्यंत उद्विग्न होनेसे अपनी अति तुच्छता दिखाने तथा भगवान्के हृदयमें क्रूरके प्रति भी करुणा उत्पन्न करनेके निमित्त उन्होंने संभ्रममें सहसा ऐसा आचरण किया। साष्टाङ्ग प्रणाम करनेके अनंतर अपने अपराधी पतिको बन्धन मुक्त करनेकी इच्छासे वे दोनों हाथोंकी

अञ्जलि बाँधकर श्रीहरिके सम्मुख खड़ी हो गयीं। शरणागत-वत्सल श्यामसुन्दरका शरणागतिको स्वीकार करके वे सबकी सब दीनवाणीमें गद्गद् कंठसे स्तुति करने लगीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! उन नागपत्नियोंने भगवान्‌की जो दिव्य स्तोत्रसे स्तुति की है, उससे उनका अगाध ज्ञान प्रकट

होता है, वह स्तुति समस्त वेद शास्त्रोंका सार है। इससे प्रतीत होता है, कि वे सब स्त्रियाँ परम विदुषी थीं। उनके एक-एक अक्षरमें अगाध ज्ञान भरा है, उस स्तोत्रको मैं प्रसंगानुसार स्तुति प्रकरणमें कहूँगा। उनकी स्तुति लम्बी है। स्तुतिके अन्तमें उन्होंने यही कहा—"हे सबके आश्रयदाता भगवन्! हम सब अबलायें आपकी शरणमें हैं, आपके द्वार-पर भिक्षा माँगने आई हैं, आप हमें हमारे सुहागकी भिक्षा दीजिये, हमारा सिंदूर हमारी माँगमें भरा रहे ऐसा वर दीजिये। स्त्रियाँ तो सदासे ही साधुपुरूषोंकी दयापात्र मानी गई हैं। सज्जन पुरूष स्त्रियोंका कभी अपमान नहीं करते उनके भारीसे भारी अपराधको भी क्षमा कर देते हैं। हमारे प्राण तो पति ही हैं, पतिके बिना हम सब पतिव्रतायें कैसे जीवित रह सकती हैं, अतः प्राण रूप जो हमारे प्राणनाथ पति हैं उन्हें आप हमें प्रसन्नता पूर्वक प्रदान करें। अब बहुत दण्ड इन्हें मिल चुका, अब आप इन्हें अधिक दण्ड न दें।"

नागपत्नियोंकी इस प्रकार प्रार्थना सुनकर भगवान्ने—जो उनके चरण प्रहारसे चेतना शून्य हो गया था, उस कालियको छोड़ दिया। तदनन्तर छोड़ देनेपर शनैः शनैः कालियके प्राणोंमें प्राण आये, वह कुछ कुछ सचेत हुआ और फिर बड़ी दीनताके साथ भगवान्की स्तुति करने लगा।

शौनकजीने पूछा—"सूतजी! उन रोते हुए ब्रजवासियोंका क्या हुआ?"

सूतजी बोले—"अब जो हुआ होगा, वह सब मैं आगे बताऊँगा ही, जिस प्रकार समस्त ब्रजवासी प्रसन्न हुए और कालियका ब्रजसे निष्कासन हुआ इन प्रसंगोंको अब मैं आपको सुनाता हूँ, आप सावधान होकर इस सुखद प्रसंगको श्रवण करें।

छप्पय

बहत मुखनितैं रक्त भयो कालियं मूर्छित तब।
छिन्न भिन्न ह्वै गये नागफण छत्ररूप सब॥
अनत शरन नहिं निरखि शरन हरिकी अहिआयो।
अखिल भुवनपति पादपद्ममहँ चित्त लगायो॥
पत्नी सबरी नागकी, आईं पतिकूँ बिकल लखि।
शिशु सम्मुख करि नयन भरि, श्रीहरितैं बोलीं बिलखि॥

कालियनागका व्रजसे निष्कासन

[६२५]

सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगाम ह।
तदैव सामृतजला यमुना निर्विषाभवत्।
अनुग्रहाद् भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः *॥
(श्री भा० १० स्क० १६ अ० ६७ श्लो०)

छप्पय

हम सबके पति प्रान प्रानपति भिक्षा दीजे।
हैं अबला भयभीत अभय अखिलेश्वर कीजे॥
नाग बहुनिकी विनय करुन स्वर मुरलीधर सुनि।
करयो न पाद प्रहार फननिपै नटनागर पुनि॥
नाग तज्यो तब सो कहे, नाथ ? तुमहिँ सब कछु करो।
तुम ही डारो जगत्महँ, जीव विपति तुमही हरो॥

जिनकी संस्कृति पृथक् है, ऐसे विदेशी आर्यभूमिपर आकर यहाँके अन्न जलको ही दूषित नहीं करते, अपितुवहाँके वायु

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! कालियनाग अपने समस्त पुत्रों मित्रों तथा कलत्रोंके सहित अपने पूर्वस्थान समुद्रके बीचमें स्थित रमणक द्वीपमें चला गया। उसी दिनसे लीलासे ही मनुष्य बने भगवान् वासुदेवकी कृपासे यमुनाजी निर्विषा बन गयीं। उनका जल अमृतके सदृश सुस्वादु हो गया।

मंडलको भी विषैला कर देते हैं। वहाँके समाजमें संकरता दोष भी उत्पन्न कर देते हैं। अतः पृथक् संस्कृति वालोंको रखना ही आवश्यक हो, तो उन्हें अपनी संस्कृतिमें विलीन कर लेना चाहिये। अपना पृथक् आधिपत्य स्थापित करके वे यहाँकी विशुद्ध परम्पराको दूषित बना देंगे, अतः ऐसे लोगोंका निष्कासन ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है। उनका यही दमन है, कि उन्हें अपने देशमें लौटा देना चाहिये। ऐसे विषवमन करनेवाले व्यक्ति वायु मंडलमें विद्वेष तथा विग्रहका बीज वपन करके विद्रोह खड़ा कर देते हैं। दुष्टोंका दमन करनेवाले श्रीहरि उनके सिरपर पैर रख कर उन्हें देशसे निकाल देते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब नागपत्नियोंने अपने पतिकी परात्पर प्रभुसे याचना की, तब भगवान्ने उस नागको छोड़ दिया। दोनोंमें युद्ध हो रहा था। भगवान्ने उसे मसल दिया था। उसके अंग प्रत्यङ्गोंका मर्दन कर दिया था। कुछ काल में उसे चेतना प्राप्त हुई। सम्मुख उसने सजल जलधरके समान श्रीश्यामसुन्दरको निहारा। तब वह दीर्घ निश्वास छोड़ता हुआ बड़ी कठिनताके साथ दीन वाणीमें आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र से कहने लगा—"प्रभो! मैंने जान बूझकर कोई अपराध नहीं किया है।"

भगवान्ने कहा—"अरे भाई! इससे बड़ा और अपराध क्या होगा, तैंने अपने विषसे सम्पूर्ण यमुनाजीको दूषित बना रखा है।"

कालियने कहा—"भगवन्! यह सृष्टि त्रिगुणात्मिका है। कोई स्वभावसे सात्विक होते हैं, कोई राजसिक और कोई तामसिक। सर्प जातिके जन्तु जन्मसे ही बड़े क्रूर, तमोगुणी और महाक्रोधी होते हैं। हम तो जहाँ भी रहेंगे, वहीं दुष्टता ही करेंगे।"

भगवान्ने कहा—"अब तुम यह जानते हो, तो अपने तमोगुणी स्वभावको बदलो।"

कालिय बोला—"भगवन्! केवल जानने मात्रसे ही तो स्वभाव नहीं बदला जा सकता। जीवोंको दुःखमें सुखका, अनित्यमें नित्यका मिथ्याभिनिवेश हो गया है, अनात्ममें जो आत्म प्रतीति हो रही है, उसका छोड़ना जिस प्रकार कठिन है, उसी प्रकार सभी जीवोंके लिये अपने स्वभावको छोड़ना अत्यन्त कठिन है। मनीषियोंने स्वभावको दुरतिक्रम बताया है। सभी अपने स्वभावसे विवश हैं। यदि महराज अपराध क्षमा हो, तो मैं एक बात और कहूँ?

भगवानने कहा—हाँ, कहो। क्या कहना चाहते हो?

कालिय नागने कहा—"दीनबन्धो! मैं यह निवेदन कर रहा था, कि सबके स्वभावोंके बनानेवाले भी तो आप ही हैं। आपने ही तो इस त्रिगुणात्मक जगत्की रचना की है। सबके स्वभाव आपने ही भिन्न-भिन्न बनाये हैं। सबके बलवीर्य भी पृथक्-पृथक् हैं। आप यद्यपि हाथी तथा चींटीके शरीरमें समान रूपसे स्थित हैं फिर भी चींटी और हाथीके बलवीर्यमें अन्तर होता ही है। इसी प्रकार आपने नाना योनियोंकी रचनाकी है। सबकी योनियाँ पृथक्-पृथक् हैं। सबके आकार पृथक् हैं, सबकी चित्तवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं। इस पृथक्ताके रचयिता भी तो आप ही हैं। हम सर्पोंको आपने क्रोधी ही बनाया है, फिर हम माया मोहित जीव आपकी दुस्त्यज मायाको बिना आपकी कृपासे अपने आप स्वयं कैसे छोड़ सकते हैं? आपसे कुछ कहना सूर्यको दीपकसे दिखानेके समान है। आप तो सर्वज्ञ हैं। इस निखिल विश्वब्रह्माण्डके एक मात्र अधीश्वर हैं। हम तो आपकी मायासे ही समस्त चेष्टायें कर रहे हैं। उसमें बाँधनेवाले भी आप ही हैं और छुड़ानेवाले भी। हमने जो दुष्टता की है, उसके लिये आप

चाहे दण्ड दें या क्षमा करें। आप निग्रह अनुग्रह सभी कुछ करनेमें समर्थ हैं। आपकी शरणमें आ जानेपर फिर जीव की दुर्गति नहीं होती, यह तो निश्चित सिद्धान्त है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कालियके ऐसे युक्तियुक्त वचन सुनकर श्यामसुंदर हँसे और हँसते हुए बोले—"देखो, भैया कालिय! मैं तुम्हें मारना नहीं चाहता, किन्तु तुम्हें मेरी एक बात माननी होगी?"

कालियने दीनताके स्वरमें कहा—"प्रभो! आज्ञा करें, अब तो आपकी कृपासे-आपके पादद्मोंके प्रहारसे—मेरा मद उतर गया है। अब तो मेरा एक मात्र कर्तव्य आपकी आज्ञाओंका पालन करनाही रह गया है।"

भगवान बोले—"देखो, नागराज! यह वृन्दावनकी पावन भूमि है। यहाँ तुम्हारा अपने बन्धु बान्धवों तथा स्त्री बच्चोंके साथ रहना उचित नहीं। तुम क्रोधी स्वभावके हो, विजातीय हो, तुम्हारे रहनेसे यहाँका वायुमण्डल दूषित और विषाक्त बनता है। तुम समुद्रके बीचके देशके रहने वाले हो। अतः अपने बाल बच्चों और परिवार वालोंके सहित अपने द्वीपमें ही चले जाओ। "हाँ, परन्तु एक प्रतिज्ञा तुम्हें और करनी होगी।"

कालिय नागने कहा—"हाँ, प्रभो! उसकी भी आज्ञा हो जाय?"

भगवान् बोले—देखो, हमारे तुम्हारे इस पूरे कथा प्रसङ्ग को—जो श्रद्धा भक्तिके साथ श्रवण करें, उन्हें तुमसे ही नहीं तुम्हारी समस्त नाग जातिसे किसी प्रकारका भय न हो, तुम लोग उसे कभी मत काटना।"

कालियने कहा—'अच्छी बात है भगवन्! कालिय दमन प्रस्तावसे लेकर कालियनाग निष्कासन तककी कथाको जो समय

समय पर श्रद्धासे पढ़ेंगे सुनेंगे, उन्हें हमारी जातिसे किसीभी प्रकारका भय न होगा।"

भगवान् बोले—"एक वर मैं अपनी ओरसे देता हूँ—जो मेरे इस क्रीड़ास्थल कालियदहमें आकर स्नान, ध्यान, पूजन करेंगे, देवता पितर तथा ऋषियोंका जलसे तर्पण करेंगे। उपवास करके मेरा ध्यान अथवा पूजन करेंगे। वे सभी पापोंसे छूटकर निष्पाप हो जायँगे। अब तुम अपने समस्त जाति वालोंके साथ, पुत्र, स्त्री तथा अन्य स्वजनोंके साथ यहाँसे समुद्रसे अपने टापूमें चले जाओ।"

कालियने दीनताके स्वरमें कहा—भगवन्! मुझे अपने देश लौटनेमें तो कोई आपत्ति नहीं, किन्तु गरुड़जीसे मेरा द्वेष हो गया है। वे जाते ही मेरे ऊपर प्रहार करेंगे मेरे बन्धु बान्धव तथा परिवार वालोंको क्लेश देंगे।"

भगवान् प्रसन्नता प्रकट करते हुए बोले—"तुमने जिन गरुड़के भयसे अपने देशको छोड़ा था अब उनसे तुम्हें कुछ भी भय न होगा। मेरे चरण चिन्होंसे चिह्नित फणोंको देखकर गरूड़ तुम्हें देखते ही भाग जायगा, वह तुम्हें भक्षण न करेगा।

भगवान्ने कालिय नागको जीता था, वे विजयी थे, दूसरे उसके घरपर पधारे थे, अतः सर्वश्रेष्ठ अतिथि थे। इसलिये अपनी पत्नियों और पुत्रोंके सहित प्रसन्नता पूर्वक कालियने उनका शास्त्रीय विधानसे पूजन किया। नागोंके पास बड़ी-बड़ी बहुमूल्य मणियाँ होती हैं। भाँति-भाँतिके आभूषण होते हैं। देवताओंके जैसे वस्त्र आभूषण, मालायें तथा दिव्य गन्धमय चन्दनादि लेप होते हैं। नागने ये सब वस्तुएँ उपहारमें दीं, भगवान्को रेशमी वस्त्र पहिनाये, मुक्ता मणियोंसे युक्त दिव्य आभूषण पहिनाये तथा महामूल्यवान् मणियोंकी मनोहर मालायें उन्हें पहिनायीं। कमलके पुष्प और कमलकी मालाओंसे भी उनकी पूजा अर्चा की।

भगवान्ने कालिय द्वारा की हुई पूजाको विधिपूर्वक स्वीकार किया और अन्तमें कालियसे कहा—"अच्छी बात है। अब तुम सुखपूर्वक यहाँसे जा सकते हो।"

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! भगवान्की आज्ञा पाकर कालिय नाग अपने बन्धु बान्धव पुत्र तथा पत्नियोंके सहित उनकी परिक्रमा करके अपने परिवारके साथ यमुनाजीके मार्गसे रमणक द्वीपकी ओर चल दिया। वह मार्गमें कुछ दिन प्रयागमें भी ठहरा था। अबतक बरुआ घाटके समीप यमुनाजीमें कालियह्रद् तीर्थ विख्यात है और उसीके नामसे 'अहियापुर' एक मुहल्ला भी प्रयागमें विद्यमान है।

इस प्रकार भगवान्ने उस दुष्ट सर्पको यमुनाजीके ह्रद्से बाहर निकाल दिया। उसी दिनसे उस कुंडका तथा वहाँके आसपासकी यमुनाजीका जल विषहीन अमृतके समान सुस्वादु बन गया। उस दिनसे गौएँ, बछड़े तथा ग्वालबाल निर्भय होकर उस जलका पान करते थे। कालिय नागके निकलनेसे समस्त ब्रजवासियोंको बड़ा आनंद हुआ। कालियको ह्रद्से निकालकर अब भगवान् सज बजकर बड़े आनंदके साथ सरोवरसे निकले। उनको देखकर ब्रजवासियोंको कितना आनंद हुआ इसका कुछ दिग्दर्शन आगे कराया जायगा।

छप्पय

मुनि बोले घनश्याम महाँतैं अहि तुम जाओ।
अब स्वदेश महँ रहो सदा मेरे गुन गाओ॥
मम पद अङ्कित शीश गरुड लखि ढिंग नहिं आवें।
कालियह्रद महँ न्हाय सुकृतकरि नरसुख पावें॥
कालियदह अरु कृष्णको, अति पावन सुखकर चरित।
रहहिं अभयतें अहिनितें, पढ़हिं सुनहिं श्रद्धासहित॥

श्रीहरिके बन्धुओंसे सम्मिलन तथा दावानलपान

(६२६)

तां रात्रिं तत्र राजेन्द्र क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्शिताः ।
ऊषुर्व्रजौकसो गावः कालिन्द्या उपकूलतः ॥❀

(श्रीभा० १० स्क० १७ अ० २० श्लो०)

छप्पय

दिव्य वस्त्र मणिमाल पहिन हरि दहतें निकसे ।
मनहु उदधिमहँ नील सरोरुह मणियुत विकसे ॥
मृतक देह जनु प्रान लौटिकें फिरितें आये ।
त्यों उठि सबने प्रेम सहित हरि हृदय लगाये ॥
आलिङ्गन पुनि पुनि करें, दये दान प्रमुदित भये ।
भूखे प्यासे ग्वाल गौ, ग्वा दिन तट पै बसि गये ॥

चिरकालके वियोगके अनंतर प्राणांतक विपत्तिके पश्चात् जो अपने प्रियसे भेंट होती है, उसमें अत्यन्त उत्कण्ठा तथा उत्सुकता सन्निहित रहती है। उस समय सभी अङ्ग चाहते हैं—हम उनके अंगोंमें मिल जायँ। नेत्र चाहते हैं हम इन्हें पी जायँ, रसना

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजेन्द्र ! जिस दिन भगवान्ने कालिय नागका दमन किया था, उस दिन सभी व्रजवासी और गौएँ क्षुधा पिपासा तथा श्रमके कारण अत्यन्त दुर्बल हो रहे थे। अतः उस रात्रिको वे सबके सब वहीं यमुना तटपर ही रह गये।

चाहती हैं हम इनके सौन्दर्यका स्वाद चखें। माता पिताका प्रेम सन्तानके प्रति अत्यधिक होता है। हृदय रोता रहता है, वियोगमें संयोगमें सदा सन्तानके निमित्त अश्रु बहते रहते हैं, अंतर केवल इतना ही होता हैं, कि वियोगमें जो आँसू निकलते हैं, वे शोकके होते हैं और संयोगमें जो अश्रु आते हैं, वे हर्ष तथा प्रेमके आते हैं। संतान किसी भारी दुःखसे छूट जाय तो माता पिताको इतना हर्ष होता है, कि उस हर्षमें वे धन रत्नको तुच्छ समझते हैं और उसकी मंगल कामनाके निमित्त उसे दोनों हाथों से लुटाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कालियको व्रजसे निकालकर अब नटवर स्वयं भी दहसे बाहर निकले। उस समय उनका श्रीअंग तेज, प्रभाव, कान्ति, विजय तथा दिव्य वस्त्राभूषणोंके प्रभावसे दमदम दमक रहा था। नाग और नागपत्नियों द्वारा पूजामें दिये हुए चमकीले दिव्य पीले वस्त्रोंको भगवान् धारण किये हुए थे। कंठमें महामूल्यवाली मणियोंकी मनोहर मालायें सुशोभित हो रही थीं। सम्पूर्ण श्रीअङ्ग दिव्य गन्धसे अनुलिप्त था। सुवर्ण-मय आभूषण जिनमें स्थान स्थानपर बहुमूल्य रत्न जड़े हुए थे, वे उनके शरीरको पाकर स्वयं सुशोभित हो रहे थे। दिव्य मणियों के चाकचिक्यसे दशों दिशाएँ आलोकित हो रही थीं।

भगवान्‌को कालिय दहसे निकलते देखकर मृतकके सदृश निश्चेष्ट पड़े हुए व्रजवासियों तथा समस्त गौओंके शरीरोंमें मानों एक साथ नवजीवनका संचार हो गया। मृतक शरीरमें जैसे पुनः प्राण आनेसे उसकी समस्त इन्द्रियाँ पूर्ववत् चेष्टायें करने लगती हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण दर्शनसे मूर्छा भंग होनेपर व्रजवासी सहसा उठकर खड़े हो गये। उन सबके नेत्र आनन्दके अश्रुओंसे आपूर्ण थे। अभी भगवान् उनके निकट नहीं आये थे, फिर भी वे मनसे मानों उनका आलिङ्गन कर रहे हों। यशोदा

जी, रोहिणीजी, नन्दजी तथा उनके सभी भाइयोंको कितना आनन्द हुआ इसका वर्णन करना कविकी कृतिके बाहरकी बात है। श्रीकृष्णको पाकर आबाल वृद्ध सभी सफल मनोरथ होकर सचेत हो गये। उन सबको ऐसा लगा मानों हमारे सर्वस्व अभी मृत्युके मुखसे लौटकर आये हों।

बलरामजी तो भगवानका प्रभाव जानते थे, उनका तो विश्वास था, कि चाहें एक मशक सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको ग्रस ले, चाहें सातों समुद्रका जल एक चींटीके बिलमें विलीन हो जाय, किन्तु कालिय नाग इन विश्वम्भर वनवारी विहारीका कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकता। इसीलिये उन्होंने हँसते हुए श्रीकृष्णका आलिंगन किया। वे मन्द मन्द मुसकराते हुए श्रीकृष्णकी ओर निर्निमेष दृष्टि से निहार रहे थे। मानों सैनों ही सैनोंमें कह रहे हों, कि यह क्या आपने लीला रच डाली।

इस दृश्यको देखकर पर्वतकी दूब हरी भरी हो गयी। मानों स्वयं गिरिराज गोवर्धनका शरीर प्रसन्नतासे रोमाञ्चित हो रहा हो। गौओंके हर्षका तो कुछ ठिकाना ही नहीं था, वे अपने प्यारे गोपालको पाकर कानोंको उठाकर उनके अपार सौंदर्यका मानों अपलक दृष्टिसे पान कर रही हों। बैल तथा साँड़ रम्हा रहे थे, बछड़े इधरसे उधर हर्षके कारण फुदक रहे थे। श्रीकृष्णके श्रीअंगोंमें सट रहे थे।

गोपोंके जो कुलगुरू पुरोहित थे—जो कि सदा उनके सुख दुखमें साथ ही रहते थे—उन्होंने अपनी पत्नियों सहित आकर नंदजीको आशीर्वाद दिया। श्रीकृष्णकी मंगल कामनाकी और हर्ष प्रकट करते हुए नन्दजीसे बोले—"व्रजराज ! आज तुम्हारे बालकका मानों पुनर्जन्म हुआ है। आपने जैसे पहिले जन्मोत्सव मानाया था वैसे फिर मनायें। बड़े आनन्दके साथ छने-घुटे। ब्राह्मणोंको दान-दक्षिणा दीजिये। हलुआ, मालपुआ, मोदक

चाहती है हम इनके सौन्दर्यका स्वाद चखें। माता पिताका प्रेम सन्तानके प्रति अत्यधिक होता है। हृदय रोता रहता है, वियोगमें संयोगमें सदा सन्तानके निमित्त अश्रु बहते रहते हैं, अंतर केवल इतना ही होता है, कि वियोगमें जो आँसू निकलते हैं, वे शोकके होते हैं और संयोगमें जो अश्रु आते हैं, वे हर्ष तथा प्रेमके आते हैं। संतान किसी भारी दुःखसे छूट जाय तो माता पिताको इतना हर्ष होता है, कि उस हर्षमें वे धन रत्नको तुच्छ समझते हैं और उसकी मंगल कामनाके निमित्त उसे दोनों हाथों से लुटाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कालियको व्रजसे निकालकर अब नटवर स्वयं भी दहसे बाहर निकले। उस समय उनका श्रीअंग तेज, प्रभाव, कान्ति, विजय तथा दिव्य वस्त्राभूषणोंके प्रभावसे दमदम दमक रहा था। नाग और नागपत्नियों द्वारा पूजामें दिये हुए चमकीले दिव्य पीले वस्त्रोंको भगवान् धारण किये हुए थे। कंठमें महामूल्यवाली मणियोंकी मनोहर मालायें सुशोभित हो रही थीं। सम्पूर्ण श्रीअङ्ग दिव्य गन्धसे अनुलिप्त था। सुवर्ण-मय आभूषण जिनमें स्थान स्थानपर बहुमूल्य रत्न जड़े हुए थे, वे उनके शरीरको पाकर स्वयं सुशोभित हो रहे थे। दिव्य मणियों के चाकचिक्यसे दशों दिशाएँ आलोकित हो रही थीं।

भगवान्‌को कालिय दहसे निकलते देखकर मृतकके सदृश निश्चेष्ट पड़े हुए व्रजवासियों तथा समस्त गौओंके शरीरमें मानों एक साथ नवजीवनका संचार हो गया। मृतक शरीरमें जैसे पुनः प्राण आनेसे उसकी समस्त इन्द्रियाँ पूर्ववत् चेष्टायें करने लगती हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण दर्शनसे मूर्छा भंग होनेपर व्रजवासी सहसा उठकर खड़े हो गये। उन सबके नेत्र आनन्दके अश्रुओंसे आपूर्ण थे। अभी भगवान् उनके निकट नहीं आये थे, फिर भी वे मनसे मानों उनका आलिङ्गन कर रहे हों। यशोदा

जी, रोहिणजी, नन्दजी तथा उनके सभी भाइयोंको कितना आनन्द हुआ इसका वर्णन करना कविकी कृतिके बाहरकी बात है। श्रीकृष्णको पाकर आबाल वृद्ध सभी सफल मनोरथ होकर सचेत हो गये। उन सबको ऐसा लगा मानों हमारे सर्वस्व अभी मृत्युके मुखसे लौटकर आये हों।

बलरामजी तो भगवानका प्रभाव जानते थे, उनका तो विश्वास था, कि चाहें एक मशक सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको ग्रस ले, चाहें सातों समुद्रका जल एक चींटीके बिलमें विलीन हो जाय, किन्तु कालिय नाग इन विश्वम्भर वनवारी विहारीका कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकता। इसीलिये उन्होंने हँसते हुए श्रीकृष्णका आलिंगन किया। वे मन्द मन्द मुसकराते हुए श्रीकृष्णकी ओर निर्निमेष दृष्टि से निहार रहे थे। मानों सैनों ही सैनोंमें कह रहे हों, कि यह क्या आपने लीला रच डाली।

इस दृश्यको देखकर पर्वतकी दूब हरी भरी हो गयी। मानों स्वयं गिरिराज गोवर्धनका शरीर प्रसन्नतासे रोमाञ्चित हो रहा हो। गौओंके हर्षका तो कुछ ठिकाना ही नहीं था, वे अपने प्यारे गोपालको पाकर कानोंको उठाकर उनके अपार सौंदर्यका मानों अपलक दृष्टिसे पान कर रही हों। बैल तथा साँड़ रम्हा रहे थे, बछड़े इधरसे उधर हर्षके कारण फुदक रहे थे। श्रीकृष्णके श्रीअंगोंमें सट रहे थे।

गोपोंके जो कुलगुरू पुरोहित थे—जो कि सदा उनके सुख दुखमें साथ ही रहते थे—उन्होंने अपनी पत्नियों सहित आकर नंदजीको आशीर्वाद दिया। श्रीकृष्णकी मंगल कामनाकी और हर्ष प्रकट करते हुए नन्दजीसे बोले—"व्रजराज ! आज तुम्हारे बालकका मानों पुनर्जन्म हुआ है। आपने जैसे पहिले जन्मोत्सव मानाया था वैसे फिर मनायें। बड़े आनन्दके साथ छूने-घुटे। ब्राह्मणोंको दान-दक्षिणा दीजिये। हलुआ, मालपुआ, मोदक

तथा, तरमैं आदिका भोज हो, मन तो मीठा हो ही गया—मुँह और मीठा हो।"

उदारमनवाले नन्दजीने अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"अच्छी बात है। ब्राह्मणो! आप सबके सफल आशीर्वाद से ही आज मेरे लालाके प्राणोंकी रक्षा हुई है। आप जो कहेंगे वही होगा। मेरे यहाँ धन, रत्न तथा गौओंकी तो आप सबके आशीर्वादसे कमी ही नहीं है। यह सुवर्ण और गौओंका संकल्प तो अभी छुड़ाइये। शेष गोष्ठमें चलकर सब विधि विधान पूर्वक करेंगे।" ऐसा कहकर नन्दजीने तुरन्त वहीं बहुतसे सुवर्ण तथा गौओंका संकल्प किया।

यशोदाजीके हृदयमें मानों प्रेमका समुद्र हिलोरें मार रहा हो, वे बार-बार श्रीकृष्णको गोदीमें बिठाकर उनका आलिंगन करतीं मुख चूमतीं और उनके श्रीअंगपर अपने कम्पित करको फिरातीं। बड़ी देर तक यह लीला होती रही। इन सब बातोंमें कब भगवान् भुवनभास्कर अस्ताचलमें प्रस्थान कर गये, इसका पता किसीको भी नहीं लगा। सभी बाह्य ज्ञान शून्य हुए आत्म-विभोर बने हुए थे। जब कुछ चेतना हुई तो आपसमें कहने लगे—"अरे, अब तो बड़ी रात्रि हो गयी, हम सब लौटकर घर कैसे जायँगे। साथमें स्त्रियाँ हैं, छोटे छोटे बच्चे हैं।"

नन्दजीने कहा—"देखो, भाई हम अपने गोष्ठसे बहुत दूर आ गये हैं। आज इन गौओंने एक तृण भी मुखमें नहीं दिया है, हम सब भी भूखे प्यासे हैं, अतः आज अब गोष्ठमें लौटनेका विचार छोड़ दो। जैसे बन सके तैसे सुखसे-दुखसे आजकी रात्रि यहीं बिताओ, प्रातःकाल व्रजको चलेंगे।"

नन्दजीकी इस सम्मतिका सभीने सहर्ष अनुमोदन किया। अब वहीं कालियदहके निकट यमुना तटपर सबके आसन लगे। ग्रीष्म ऋतु थी। यमुना किनारे शीतल मन्द सुगन्धित वायु

चल रही थी, यमुनाजीकी कोमल गुदगुदी सीतल वायुमें बड़ा आनन्द आ रहा था, बातों ही बातोंमें आधी रात्रि हो गयी। आस पास बड़ा भारी सघन वन था। वनमें गीष्म ऋतुके कारण सूखे पत्ते झड़े हुए थे। वायु लगनेसे वे खड़ खड़ शब्द कर रहे थे। कुछ दूर पर बाँसोंका भी वन था। वायुके झोंकेसे परस्परमें संघर्ष होनेके कारण बाँस चर्र मर्र-चर्र मर्र कर रहे थे। सहसा बाँसोंके संघर्षसे वनमें दावानल लग गयी। चारों ओरसे प्रलयाग्निके समान बड़ी बड़ी लपटोंवाली अग्नि व्रजवासियोंको जलानेके लिये आ रही थी। बहुतसे ग्वालबाल माताओंकी गोदियोंमें सो गये थे। बहुतसे गोप भी दिनभरके श्रमसे पड़ते ही सो गये। अब सहसा आधी रात्रिके समय यह अप्रत्याशित विपत्ति सम्मुख आ गयी, इससे वे सबके सब घबड़ा कर उठ खड़े हुए। उन्होंने देखा अब अग्निसे बचनेका दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। चारों ओरसे अग्नि बढ़ी चली आ रही है। इन स्त्री बच्चों और गौओंको लेकर किधर जायँ, जब उन्हें कोई भी उपाय न सूझा, तो वे सोचने लगे—"जिस कृष्णने हमारी अघासुर, बकासुर तथा धेनुकासुर ऐसे बड़े बड़े असुरोंसे रक्षा की, जिसने इतने बलशाली कालिय नागका अभी अभी दमन किया, क्या वह कृष्ण हमें इस भयंकर दावानलसे नहीं बचा सकता? क्यों नहीं हम उसीकी शरणमें जायँ।" यह सोचकर वे मायासे मानुष बने अशरण शरण श्यामसुन्दरकी शरणमें गये। उनके समीप जाकर वे दुःखके साथ कहने लगे—"हे श्रीकृष्ण! तुम ही हम अशरणोंकी शरण हो। हे अमित-विक्रम! बलराम जी, तुम ही चाहो तो हमें इस विपत्तिसे बचा सकते हो। तुम दोनों हमें मनुष्य प्रतीत नहीं होते! तुम हमारे ही नहीं, इस चराचर जगत्के स्वामी भी हो। देखिये, आपने हमें अपना स्वजन करके स्वीकार किया है, आप दोनोंके रहते, हमपर ऐसी घोर विपत्ति

पड़े यह उचित नहीं है। आपने सदा हमारी बड़े बड़े क्लेशों से रक्षाकी है। आज इस संकटसे भी हमें बचाइये। इस भयङ्कर दावाग्निसे हमारी रक्षा कीजिये। आपके श्रीचरण कमल अकुतो भय हैं। जो इन चरणोंकी शरण आ जाता है, उसे इन छोटे मोटे दुःखोंकी तो बात ही क्या संसारका दुःख नहीं होता। अब हमारी इस विपत्तिसे रक्षा करें।"

अपने ग्वालबाल और गोपोंकी ऐसी दीन और कातर वाणी सुनकर श्यामसुन्दर हँस पड़े और बोले—अरे, जाओ सारेओ तनिक सी चिनगारीसे डर गये। अच्छा सबके सब आँखें मींच लो।"

सूतजीने कहा—"महराज! भगवान्की आज्ञा पाते ही सब गोपोंने दोनों हाथोंसे कसकर अपनी अपनी आँखें मींच लीं तब अनन्त शक्तिधारी सर्वसमर्थ जगदीश्वर श्रीकृष्णचन्द्र उस अग्निको पान कर गये। जो विश्व ब्रह्माण्डोंको श्वास श्वासमें पान कर जाते हैं, उनके लिये तनिकसी दावाग्निका पान करना कोई कठिन बात नहीं है। पान करनेके अनन्तर भगवान्ने कहा—"अच्छी बात है, खोलो सब अपनी-अपनी आँखें।

भगवान्की आज्ञा पाकर सबने आँखें खोलीं, तो न वहाँ अग्नि, न धूँआ। यह देखकर सभी बड़े विस्मित हुए। तदनंतर सभी तान दुपट्टा सोये! प्रातःकाल होते ही सब ब्रजमें आये। आते ही ब्रजमें खीर घुटी, चकाचक मालपूआ छने। ब्राम्हणोंको भोजन कराया और समस्त गोप गोपियोंने मिलकर प्रभुके साथ प्रसाद पाया। यह मैंने अत्यंत संक्षेपमें कालिय निग्रहकी कथा कही, अब भगवान्ने जैसे प्रलम्बासुरका उद्धार किया, उस कथाको आगे कहूँगा। आप सब समाहित चित्त से श्रवण करें।

छप्पय

शीतल मंद सुगन्ध पवन बालू अति कोमल।
सोये आधी राति, उठी बनमहँ दावानल॥
देखि अगिनिकी लपट गोप सबरे घबराये।
दीन दुखी अति भये शरन श्रीहरिकी आये॥
ब्रजवासिनिकूँ सभय लखि, हँसि मोहन ठाढ़े भये।
नयन मुँदाये सबनिपै, तुरत अगिनि सब पी गये॥

तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजनार्दनौ ।
कृष्णसंघट्टिनः केचिदासन् रामस्य चापरे ॥
आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणाः ।
यत्रारोहन्ति जेतारो वहन्ति च पराजिताः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० १८ अ० २०-२१ श्लो०)

छप्पय

करि कालिय उद्धार प्रात आये वृन्दावन ।
नित नित जावें श्याम सबल बन धेनु चरावन ॥
मोर मुकुट सिर धारि गले वैजन्ती माला ।
बनि ठनि बनकूँ जाहि करें क्रीड़ा नँदलाला ॥
दादुर, केकी, हंस, अहि, चाल चलें चंचल चपल ।
समर करहिँ नृप बनि कबहुँ, करहिँ खेल नितनव नवल ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! वनमें जाकर गोपोंने खेलमें श्रीकृष्णचन्द्रजी तथा बलरामजीको अपने अपने दलका प्रधान बनाया । गोपोंमें से कुछ श्रीकृष्णकी ओर हो गये, कुछ बलरामजीकी ओर । फिर वे घोड़ा बनकर चढ़ने चढ़ानेको बहुतसे खेल खेलने लगे । इन खेलोंमें जो दल हार जाता, उसे विजित दलके लोगोंको पीठपर चढ़ाकर ले जाना पड़ता ।

लोग कहा करते हैं, एक बातको बार बार क्या कहना, कोई नयी बात कही जाय। वे भोले भाई यह नहीं जानते, संसारमें नयी कोई बात ही नहीं। सदा सर्वदा उन्हीं-उन्हीं पुरानी घटनाओंकी आवृत्ति होती रहती है। हम नित्य ही शौच जाते हैं, नित्य ही स्नान करते हैं, नित्य ही भोजन करते है, नित्य ही दैनिक व्यापार करते हैं। वे ही सोलह स्वर और चालीस व्यंजन हैं, चाहे तुम कितना भी बड़ा ग्रन्थ लिखो, कितनी भी खोज पूर्ण बातें लिखो, सबको इन्हीं स्वर व्यंजनोंमें लिखना होगा। एक भी शब्द ऐसा न होगा, जो इनसे भिन्न हो। इसी प्रकार भगवान्‌की लीलाओंका भी कई स्थानपर बार बार वर्णन हुआ है। इसमें पुनरुक्ति दोष नहीं होता। वे तो भक्तोंको, जितनी बार सुनते हैं उतनी ही बार नयी-नयी सो प्रतीत होती हैं।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! भगवान् आनंदकन्द ब्रजचन्द्र छैऊ ऋतुओंमें ब्रजमें निवास करते हैं। उनके निवाससे ब्रजमें सभी ऋतुएँ सुखदायिनी बन जाती हैं। भगवान्‌ने तो लीलाके निमित्त गोपाल वेष धारणकर रखा है। वे उसी वेषसे ब्रजमें विचित्र विचित्र क्रीड़ाएँ किया करते हैं। कालियदमन और दावानल पानकी ये ललित लीलायें लावण्यधाम श्यामने ग्रीष्म ऋतुमें की थीं। ग्रीष्म ऋतु प्राणियोंको कुछ विशेष सुखदायिनी तो होती नहीं। दिनभर अग्नि बरसती है, सबके शरीर तप जाते हैं। रोमोंके छिद्रोंसे सदा स्वेद निकलता रहता है। भूख कम हो जाती है, प्यास बढ़ जाती है, नींद कठिनतासे आती है। घास सूख जाती है, भुमि तप जाती है, बालूमें बाहर निकलना मृत्युके सदश प्रतीत होता है। दंश-मच्छर बहुत हो जाते हैं, खाटोंमें खटमल पड़ जाते हैं, नदियोंका जल सूख जाता है। अग्निके समीप जानेमें भी भय लगता है। वायु भी उष्ण हो जाती है, लू चलते लगती है, धूलि उड़ती है। कहाँ तक कहें ग्रीष्म

ऋतुमें सभी संतप्त हो जाते हैं। कुछ काम नहीं होने पाता। वैसे ग्रीष्मके विना वरपा नहीं होती। वर्षाके विना अन्न नहीं होता अन्नके विना जीवन नहीं। इसलिये ग्रीष्म—उष्णता—आवश्यक है, फिर भी प्राणियोंको यह ऋतु अधिक सुखकर प्रतीत नहीं होती किन्तु वृन्दावनमें यह बात नहीं। वहाँ तो सभी ऋतुएँ भगवान्‌का मुख देखकर ही सरदी गरमी करती हैं। जहाँ अपने अंशभूत वलदेवजी के सहित बाँके विहारी विहार करते थे, उस वृन्दावनको रसमयी पावन भुमिमें तो बारहों महीने वसंतकी-सी छटा छायी रहती थी। वहाँके झरने तब कभी सूखते नहीं थे। सदा कल-कल नाद करते हुए कृष्णलीलाका सतत गान करते हुए से प्रतीत होते थे। सघन वनमें जो झिल्लियोंका झनझन शब्द होता रहता था, उससे झरने प्रतिस्पर्धा करते थे और अपने कल-कल निनादसे उस शब्दको दवा देते थे। यद्यपि ग्रीष्मकी उष्णतासे सब स्थानोंकी भूमि तप जाती है, शुष्क हो जाती है, वायु गरम हो जाती है, किन्तु वृन्दावनके झरनोंके कणोंको लेकर अनिल वहाँकी दूर्वा को आर्द्र बना देता था। वहाँके वृक्ष शीतल हो जाते थे और वहाँकी वायु सुखद स्पर्श बन जाती थी। वहाँकी वायु शीतल ही नहीं हो जाती थी, किन्तु वह न बहुत मंद चलती थी न बहुत वेगसे। नदी, सरोवर, झरनों तथा अन्य क्षुद्र जलाशयोंकी तरङ्गोंके संसर्गसे और उनमें खिले हुए लाल, सफेद तथा नील आदि कमलोंके परागके कारण वह सुगन्धित भी होती थी। ऐसी शीतल मन्द सुगन्ध वायुके कारण पथिकोंको वृन्दावनकी वीथियोंमें विचरनेसे न श्रम होता था, न स्वेद, वे संतापसे बचकर सुखपूर्वक इधर से उधर डोलते रहते थे। व्रजमें बहने वाली नदियोंका जल सुन्दर सुस्वादु स्वच्छ और अगाध था, उनके ऊँचे ऊँचे तटों पर टक्कर मारती हुई लहरें उसके समस्त कछार-प्रदेशको आर्द्र बनाये रहती थीं। इससे वहाँकी

घास अत्यंत हरी और चिकनी होती थी। समान भूमिपर एक सी हरी हरी घास ऐसी प्रतीत होती थी, मानों किसीने हरे रंगका रेशमी गुदगुदा गलीचा बिछा दिया हो।

बृन्दावनके बन्दर, मयूर, खग-मृग तथा अन्य स्थलजन्तु सारस, चक्रवाक, जल कुक्कुट बक तथा अन्यान्य जलजन्तु सभी क्रीड़ा प्रिय और दर्शनीय थे। वे पशु पक्षी क्या थे, गूढ़ रूपसे बड़े बड़े सिद्ध योगी मुनि श्रीकृष्ण सेवा करनेके निमित्त इन रूपोंमें विचरण कर रहे थे। अपनेको इन योनियोंमें छिपाकर श्रीकृष्ण मुखकमल मकरन्दका मत्त होकर पान कर रहे थे। श्रीवृन्दावन, बाँकेबिहारीके विहार करनेकी विशेष क्रीड़ास्थली है। श्रीकृष्ण जैसे क्रीड़ा कौतुक प्रिय हैं उसी प्रकार वहाँके समस्त जीवजन्तु भी क्रीड़ाप्रिय हैं, वे सबके सब श्यामसुन्दरकी सुमधुर मुरलीकी धुनि सुनकर चित्र लिखेसे रह जाते हैं और वनमें प्रवेश करते ही उनके पीछे-पीछे लग जाते हैं। छैल चिकनिया कन्हैया सदा बने ठने रहते थे। उनके मुखपर सदा मन्द-मन्द मुसकान ही छिटकती रहती थी। विषाद करना तो वे जानते ही नहीं थे। गौओंको आगे करके बलदेवजी और अन्य गोपोंके साथ वनमें गौएँ चराने जाते थे। यही उनका नित्यका व्यापार था, यही कार्य था, यही उनकी दैनिक लीला थी। एक दिनकी बात है, कि भगवान ने उसी नटवर वेषसे, मुरली बजाते हुए पल्लवित पुष्पित तथा फलित सुन्दर-से एक वनमें प्रवेश किया। वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर तो सबके सब अपने अपने घरोंसे ही आये थे। यहाँ आकर वनका नाटक करना है न? गोपलीलाका अनुकरण करना है न? इसीलिये घुँघची, गेरू, सेलखड़ी, मोरपंख, फूल-फलोंके स्तवक, फूलोंकी मालाएँ आदि वस्तुएँ ले आये। इन सबसे गोप परस्परमें एक दूसरेका शृंगार करने लगे, एक दूसरेको सजाने लगे।

भगवान्‌के साथ सहस्रों ग्वालबाल थे। उन सबके अधिनायक ये दोनों भाई श्याम और राम ही थे। अतः ये सबको विचित्र-विचित्र खेल खिलाते थे। श्रीकृष्णचन्द्रजीने आज सबसे पूछा—"भाई देखो, आज विचित्र-विचित्र खेल-खेलने हैं, अब अपनी-अपनी रुचिकी बात बताओ, किसे कौनसा खेल अधिक प्रिय है। सबसे पूछनेका कारण यह भी है, कि मुझे फिरसे सब खेल याद आ जाय। सब अपना एक-एक प्रिय खेल बताओ।

यह सुनकर किसीने कहा—"हमें तो भैया! तेरा नाच बड़ा अच्छा लगता है, जब तू घुँघरुओंको बजाकर भावोंको दिखाकर सैनोंको चलाकर ताल स्वरसे नाचता है और हम सब तेरे साथ गाते हैं, तेरी तालमें ताल मिलाकर वंशी, नरसिंहा तथा हाथकी तालियोंको बजाते हैं, तो आनन्द आ जाता है। इस खेलके सम्मुख हमें तो सब खेल फीके लगते हैं।"

किसी ने कहा—"नाच तो अच्छा ही है, किन्तु सच्ची बात यह है, कि हमें नाच गानसे द्वन्द्व युद्ध अत्यंत प्रिय है। जब कछनी कसकर। ताल ठोंकते हुए परस्परमें बराबरके जोड़ अखाड़ेमें लड़ते हैं, तो उनके दावपेचोंको देखकर हमें बड़ा आनंद आता है। दोनों ओरसे चटाचट-पटापट होती है। वह उसे पटकता है, वह उसके नीचेसे इधर उधर सटकता है। अतः और चाहे खेल कम हों—मल्लयुद्ध नित्य हुआ करे।"

किसीने कहा—"हमें तो भैया, गेंद-बल्लीका खेल अच्छा लगता है। गेंद चक्कर काटती हुई सन्न-सन्न करती हुई ऊपर उछलती है। फिर गिरती है उसे बीचमें ही लपक लेने में बड़ा आनन्द आता है। गेंदका खेल लाभदायक भी है, सुन्दर भी है सुखकर भी है। अतः कंदुकक्रीड़ा सदा हुआ करे।"

किसीने कहा—"हमें तो दौड़कर लाँघना, ठेका मारना,

उछलना कूदना ये खेल बहुत प्रिय हैं। जो जितना ही दौड़कर कूद जायगा उतना ही उसका शरीर स्फूर्तिदायक होगा।"

किसीने कहा—"हमें तो बेलोंका खेल बहुत प्रिय है। बेल बहुत गुणदायक फल हैं। पेटके समस्त रोगोंकी औषधि भी है, इसका मुरब्बा भी सुंदर बनता है, हम तो समझते हैं—नित्य बेलोंको तोड़कर उन्हें उछालकर उनसे खेला जाय, खेल समाप्त होनेपर आगमें भूनकर खा लिया जाय, एक पन्थ दो काज। खेलका खेल और भोजनका भोजन।"

किसीने कहा—"हमें तो बेलकी अपेक्षा आँवलेका खेल अत्यंत प्रिय है। वैद्य लोग कहते हैं आँवलेसे बढ़कर लाभदायक कोई फल नहीं, धर्मशास्त्रवाले कहते हैं—आँवला खानेसे ही मोक्ष हो जाती है। हमारा कहना है—आँवलोंसे खेलनेसे ही मोक्षकी नानी मिल जायगी। आँवलोंको तोड़ो, उछालो, एक दूसरेको मारो। खेलकर अपनी अपनी जेबमें रखकर ले जाओ मैयासे चटनी बनाकर चट्ट-चट्ट रोटीके संग खा जाओ।

किसीने कहा—"ये सब तो स्थलके खेल हैं। हमारा विचार ऐसा है, कि घड़ोंकी घिटनी बनाकर उन पर चढ़कर यमुनाजीके इस पारसे उस पार चला जाय और उस पारकी बालूमें कबड्डी खेली जाय।"

किसीने कहा—"अरे, कहाँ उस पार जाना। यहीं सब मिलकर आँख मिचौनी खेल खेलो। हमारा तो निश्चित सिद्धान्त है आँख मिचौनी खेलके सदृश खेल न हुआ है न आगे होगा।

एक बोला—"चील झपट्टा हो, लभेरवशी हो, कोई भी खेल हो—ऐसा हो जिसमें छूनेके लिये सबको भागना पड़े। सबको समान श्रम करना पड़े।

भगवान् बोले—"इन सब खेलोंको तो खेलते ही हैं। आज

भी खेलेंगे। अब यह बताओ ? कौन-कौन किस पक्षीकी चाल चलना, बोली बोलना जानते हैं ?"

इसपर एकने कहा—"कनुआ भैया ! हम तो देख मोरकीचाल कैसी चल लेते हैं।" यह कहकर उसने हाथोंको भूमिपर रखकर दोनों पैर ऊपर कर दिये और हाथोंके बल मयूरकी भाँति चलने लगा।" किसीने कहा—"देख, हम हिरन की भाँति उछल-उछल कर कैसे दौड़ते हैं।' यह कहकर वह हिरनोंकी भाँति उछलने लगा। किसीने कहा—हम मेढ़क चाल जानते हैं किसीने मगरचाल किसीने सर्पचाल और किसीने कुक्कुट चालोंको दिखाया। कोई कुत्ताकी बोली बोलने लगे कोई बिल्लीकी। कोई कोकिलकी भाँति कूजकर हँसने लगे, कोई गधेकी भाँति हेंचू हेंचू करके रेंकने लगे।

इसपर श्रीदामा बोला—"अब भैया कोई खेल हो।"

श्रीकृष्ण बोले—"तुझे कौनसा खेल अच्छा लगता है ?'

श्रीदामा बोला—"हमें तो सभी खेल अच्छे लगते हैं, किन्तु हाथोंकी डोली बनाकर दुलहा बनाकर जो ब्याहका खेल है, वह हमें सबसे अच्छा लगता है।'

श्रीकृष्णने हँसकर कहा—"चल सारे ! तुझे सदा ब्याहकी ही चटपटी लगी रहती है।

श्रीदामाने झूठी गंभीरता दिखाते हुए कहा—"ब्याहकी चटपटी तो भैया तुझे भी लगी रहती है। किन्तु अब तू सबके सामने बाबाजी बनता है—देखें तू कभी विवाह न करेगा।

श्रीकृष्ण बोले—"अरे करेंगे तब करेंगे। अभीसे क्या ?' फिर बलदाऊजीकी ओर देखकर भगवान् बोले—"दादा ! तुम बताओ तुम्हें कौनसा खेल प्रिय है ?"

बलदेवजी बोले—"हमें तो भैया, वही राजा वाला खेल अच्छा लगता है। एक राजा बने, उसके बहुतसे मंत्री बने, बहुत सैनिक हों। एक दूसरा राजा बने, उसकी भी सेना हो, दोनोंमें

ा युद्ध हो । इस एकही खेलमें सब लड़के सम्मिलित हो सकते हैं।"

यह सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा—"दादा ! तुम ही हम सबके राजा हो। यही खेल हो। तब बहुत देर तक यही खेल

होता रहा। किसी गोपको नाचनेवाला बना दिया, वह राजा बने बलदेवजीके सम्मुख नाचने लगा। श्रीकृष्णको प्रधान मंत्री बना दिया। वे बलदेवजीके साथ बैठकर राजकाज करने लगे। बहुतसे गोप राय भाट बनकर आये, राजा और मंत्रीकी प्रशंसा करने लगे। ये गोप तो सबके सब देवता ही थे। सब जानते थे। खेलमें भी ज्योंकी त्यों वही स्तुति करते थे। दोनोंके सुंदर कटे हुए, कढ़े हुए चिकने बाल थे। वनोंमें स्वच्छन्द होकर गोपोंके साथ नाना भाँतिकी क्रीड़ाएँ किया करते थे। जब जो जिस खेलकी याद दिला देता तब आप उसी खेलको खेलने लगते। इस प्रकार लोकमें जितने बालकोंके खेल प्रसिद्ध हैं, उन सबको वृन्दावनके

नदी, पर्वत, कन्दरा, वनों और कुञ्ज निकुञ्जोंमें सदा खेलते रहते खेलते खेलते श्रीकृष्णचन्द्रको एक खेलकी याद आ गयी। वे बोले भाई 'घुड़ चड्डी" का खेल बहुत दिनोंसे नहीं किया।

सबने कहा—"हाँ, उसमें बड़ा आनन्द आता है वह खेल हो।"

श्रीकृष्णने पूछा—"खेलके दो दलोंके दलपति कौन होंगे।" श्रीदाना बोला—"एक दलका तो भैया! तू दलपति बन जा और दूसरे के बलदाऊ बन जायँ।"

सबने एक मतसे स्वीकार किया। दोनों भाई बैठ गये। अब दो दो लड़के अपना गुप्त नाम रखकर आने लगे। आकर कहते "चीरा फारी" यह सुनकर दोनों दलपतियोंमेंसे कह देता "अरे फरे" तब उन दोनोंमें से जिसने चीरा फारी नहीं कही है, वह गुप्त नामोंको लेकर पूछेगा—"आम लोगे या जामुन" तो इसपर दूसरा दलपति कह देगा—"आम" तो जिसका आम नाम होगा। वह उस दलमें चला जायगा, बचा हुआ इसमें। इस प्रकार बड़ी देर तक बटवारा होता रहा।

जब सब गोप इस प्रकार क्रीड़ा कर रहे थे, उसी बीचमें एक असुर श्रीकृष्ण और बलरामजीको मारनेकी इच्छासे वहाँ आ गया। उसने श्रीकृष्णके बल पुरुषार्थकी प्रशंसा बहुत सुनी थी, इसलिये उसने सोचा—"पहिले मैं बलदेवजीको मार डालूँ। बलदेवजीके मार देनेसे श्रीकृष्णका बल आधा हो जायगा। निर्बल हो जानेसे फिर इन्हें भी मार दूँगा।" ऐसा निश्चय करके उसने एक गोपका वेष बना लिया। जो गोप नहीं आया था, उसी का ज्योंका त्यों रूप उसने रख लिया। और कोई गोप तो समझ ही न सके, भगवान उसे ताड़ गये। उसकी इच्छा भी थी, मैं श्रीकृष्णके पक्षमें होकर खेलूँ।" श्रीकृष्ण तो सबके घट घटकी जानते हैं, जो उनके साथ खेलना चाहता है, उसे सहर्ष अपने

खेल में सम्मिलित कर लेते हैं। इसलिये उस गोप बने छद्म वेष धारी असुरको भी अपने दल में मिला लिया। जब दोनों दल बँट कर पृथक् हो गये, तब होने लगा खेल।"

शौनकजीने शंकायुक्त होकर पूछा—"सूतजी! उस असुर प्रलम्बने कुछ खेल में गड़बड़ सड़बड़ तो नहीं की ?"

हँसकर सूतजी बोले—"अजी, महाराज! वह अघासुर भगवानके खेलमें क्या गड़बड़ सड़बड़ करेगा। उसका आना यह भी एक खेल ही था। जैसे खेल ही खेल में बलदेवजी ने उसे अघासुर बकासुर तथा धेनुकादि असुरोंका मार्ग दिखा दिया। उस प्रसङ्गको मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

घुड़चढ़ीको खेल होहि बोले बालक सब।
दलपति बनि बलश्याम उभयदल बँटे ग्वाल तब॥
शुभ अवसर लखि असुर गोप बनिकै तहँ आयो।
प्रभु प्रलम्ब पहिचान पत निजमाँहि मिलायो॥
हारे हरि निज दल सहित, जीते बल आगे बढ़े।
श्रीदामा हरिपै चढ्यो, बल प्रलम्ब ऊपर चढ़े॥

प्रलम्बासुर उद्धारलीला

(१२८)

पापे प्रलम्बे निहते देवाः परमनिर्वृताः।
अभ्यवर्षन्बलं माल्यैः शशंसुः साधु साध्विति ॥*

(श्रीभा० १० स्क० १८ अ० ३२ श्लो०

छप्पय

श्रीदामाकूँ लिये श्याम निरखें मुरिमुरिकें।
बलकूँ लीये असुर वेगतें चले उछुरिकें॥
हँसि श्रीदामा कहे हमारो घोड़ा अड़ियल।
बलदाऊको भगे देखिवेमहँ जो सड़ियल॥
संकर्षनकूँ लै असुर, दाईतें आगे बढ़्यो।
गोपरूप तजि रूप निज, धारन करि नभमहँ उड़्यो॥

कौन सुर है, कौन असुर है, ऊपरी रूप देखकर कोई नहीं पहिचान सकता, जिसका मन सदा मनमोहनसे मिला रहता है, वह तो सुर हैं और जो ऊपरसे चाहे कितना भी सुन्दर वेष बनाये हुए हो, जिसके मनमें कपट है, जो ठगनेके लिये सुन्दर

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! बलरामजीके द्वारा पापी प्रलम्बासुरके मारे जानेपर देवगण परम प्रमुदित हुए और संकर्षण भगवान्पर फूलोंकी वर्षा करने लगे तथा उनकी प्रशंसा करते हुए बार बार साधु साधु कहने लगे।

वेष बनाये हुए हैं, असुर हैं, वध्य हैं। असुर बनकर भी जो भगवान्से द्वेष करता है, भगवान्के साथ खेलता है, भगवान्को छलना चाहता है, भगवान्को पीठपर चढ़ाकर भागता है, वह भगवान्के संसर्गसे मुक्त हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ग्वाल-बालों के साथ भगवान् घुड़चड्डीका खेल खेल रहे थे। दो दल हो गये थे। एक दलके दलपति तो स्वयं दामोदर थे और दूसरे दलके अधिपति संकर्षणावतार भगवान् बलदेवजी थे। बलदेवजीके दलवालोंने कोई प्रश्न पूछा। श्रीकृष्णके दलवालोंमेंसे किसीपर उसका उत्तर ही न आया। घट घटके जाननेवाले सर्वान्तर्यामी भगवान् वासुदेव भी न बता सके। श्रीकृष्णके दलवालों की हार हो गयी। बलदेजीके पक्षके लोग जीत गये। यह पहिले ही नियम हो चुका था कि जो पक्ष हार जायगा, उस पक्षके सब लोगोंको विजयी पक्षवालोंको पीठपर चढ़ाकर भांडीर नामक वट तक पहुँचाना होगा। वहाँ से भांडीर वट कुछ दूर था। अब बलदेवजीके पक्षके ग्वालबाल तो विजयके उल्लासमें ताली बजा बजाकर नृत्य करने लगे, श्रीकृष्णके दलवालोंका मुख मुरझा गया। किन्तु करते क्या प्रतिज्ञानुसार सबको लादकर भांडीर वट तक तो ले जाना ही था। दौड़कर श्रीदामाने भगवान श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ पकड़ लिया और बोले—"इसे तो मैं अपना घोड़ा बनाऊँगा।"

एक गोपने कहा—"हट, सारे! नँदलालको घोड़ा बनावेगा?"

श्रीदामा अकड़कर बोला—"नँदलाल राजकुमार होंगे, तो अपने घरके होंगे। खेलमें कौन किसका स्वामी, कौन किसका सेवक। खेलमें सब समान हैं। जिसका दाव लग जाय वही बड़ा है। दस गैयाँ अधिक होने से ही कोई बड़ा थोड़े ही हो जाता है।

भगवान्ने कहा—अच्छी बात है भैया! तुझे मैं अपनी

पीठपर चढ़ाकर मांडीर वट तक ले चलूँगा, किन्तु बलराम भैया को कौन पीठपर चढ़ावेगा ?"

इतने में ही गोप बना प्रलम्बासुर बोल उठा—"बलदेवजीको चढ़ाकर मैं चलूँगा।"

श्रीकृष्णचन्द्र तो यह चाहते ही थे—"उन्होंने साधु-साधु कहकर सहर्ष सम्मति दे दी। इतनेमें ही शीघ्रतासे वृषभने कहा—"भद्रसेन पर मैं चढ़ूँगा। इसी प्रकार बलदेवजीके दलके समस्त विजयी गोपोंने पराजित श्रीकृष्णके पक्षके समस्त बालकोंको घोड़ा बना लिया। श्रीकृष्ण भगवान्की दृष्टि तो प्रलम्बासुर पर ही लगी थी, वे बराबर कनखियों से प्रलम्बको ही देखते ही रहते थे। भगवान श्रीदामाको चढ़ाकर आगे चल दिये। यह दुष्ट प्रलम्बासुर सब देख रहा था। इसने जब देखा, कि श्रीकृष्ण आगे निकल गये हैं तब यह बलदेवजी को पीठपर चढ़ाकर दौड़ा।

बलदाऊजीके हृदयमें तो मङ्गकी तरंगें उठ रही थीं। हँसते हुए बोले—"भैया, औरोंके घोड़े तो फिसिड्डी हैं, कोई अड़ियल हैं। घोड़ा तो हमें मिला है। जो पवनसे बातें कर रहा है।"

यह सुनकर हँसते हुए श्यामसुन्दर बोले—"दादा! आप देखिये आपका घोड़ा कैसे रङ्ग बदलता है। तनिक सावधानीसे इस घोड़ेको हाँके।"

भगवान् श्रीदामाको चढ़ाये ही चढ़ाये ये बातें कह रहे थे, कि इतनी देरमें वह असुर बहुत दूर निकल गया। चढ़ाकर ले जानेका स्थान माण्डीर वट ही था। उसे ही सबने दाई मान रखी थी। वह प्रलम्बासुर बलदेवजी को वहाँ से भी आगे ले गया। यद्यपि धरणीधर को धारण करना साधारण काम नहीं था, फिर भी वह तो असुर ही था। जब उसने देखा मैं गोपको

आँखोंसे ओझल हो गया हूँ, तो उसने अपना स्वाभाविक यथार्थ दैत्य रूप धारण कर लिया।

उसका रङ्ग काला था, देखनेमें वह पंखयुक्त अंजन पर्वत के समान प्रतीत होता था। उसके काले अंगोंपर सुवर्णके आभूषण ऐसे प्रतीत होते थे, मानों सौदामिनी सुदामा पर्वतसे प्रकट न होकर अंजन पर्वतसे प्रकट हो रही हो। उस पर्वत शिखरके समान असुर के ऊपर बैठे हुए बलदेवजी ऐसे प्रतीत होते थे, मानों शरदके पूर्णचन्द्रको विद्युद्दाम मण्डित कृष्ण वर्णका मेघ अपनी पीठ पर चढ़ाये आकाशमें भागा जा रहा हो। अब वह पृथिवीपर पैरोंसे न चलकर आकाशमें उड़ने लगा। अब बलरामजीको चेत हुआ। वे सोचने लगे—"कृष्ण का कहना सत्य ही हुआ। यह घोड़ा तो रङ्ग बदलने लगा। भूमिको छोड़कर आकाश में उड़ने लगा। छोटेसे बड़ा हो गया। गोपसे असुर बन गया। इसके काले अंगकी कान्ति कनकके कटक, किरीट और कुण्डलोंसे दिशाओंको उद्भासित कर रही है। इसके नेत्र विगुनके सदृश जल रहे हैं, इसकी बड़ी बड़ी लम्बी पैनी दाढ़ें भ्रुकुटलट तक पहुँची हुई हैं, इसके लाल लाल खड़े हुए केश अग्निशिखाओं के सदृश प्रतीत हो रहे हैं। अवश्य ही यह कोई मायावी दैत्य है।" इस विचारके आते ही बलदेवजी कुछ सटपटा गये।

फिर सोचने लगे—"अरे, मैं तो संकर्षणावतार हूँ, मुझे इस तुच्छ असुर से क्या भय हो सकता है।" यह सोचकर वे असुरके ऊपर बैठे हो बैठे सम्हले और उसे धनापहारी चोरके सदृश दौड़ते देखकर बलरामजीने उसे रोका, किन्तु अब घोड़ा रुकनेवाला थोड़े ही था, वह बलदेवजीको देखकर गुर्राया।

बलदेवजीने कहा—"अरे, घोड़े मार्गभ्रष्ट हो गया है क्या? पीछे लौट।"

यह सुनते ही वह लाल लाल आँखें निकालकर बलदेवजीकी ओर क्रूरता भरी दृष्टिसे देखने लगा। बलदेवजीने कहा—"देख घोड़े! तू घोड़ेकी भाँति रहेगा, तब तो तेरा कल्याण है, यदि तैंने कुछ तीन पाँच करी, तो बच्चूजी! मारे मारे कोड़ोंके तेरी गति बना दूँगा।"

असुरको अब किसका भय था, वह तो समझता था, बलदेवजी मेरे पंजेमें फँस गये। उसने उछल कूद आरम्भ की। अब बलदेवजी सम्हले और उन्होंने हाथकी मुट्ठीको बाँधकर बड़े वेगके साथ उसके सिरपर एक मुक्का मारा। मुक्के लगते ही उस असुरका सिर पकी फूँटके समान बीचसे फट गया और मुखसे रुधिर वमन करता हुआ भूमिपर गिर पड़ा। बलदेवजीका मुक्का साधारण मुक्का तो था नहीं, उसे सब सहन करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। वह पहाड़ के सदृश डीलडौल वाला असुर इन्द्रके धनुपके समान भयङ्कर शब्द करता हुआ आकाशसे नीचे गिर गया और तुरन्त ही मर गया। बलदेवजी उतरकर उसे देखने लगे।

इतनेमें ही पीछे सभी ग्वालबाल अपने अपने सवारोंको चढ़ाकर भाण्डीरकवटके समीप पहुँचे। वहाँ बलदेवजीको न देखकर तथा असुर के मरनेका भयंकर शब्द सुनकर सब दौड़े दौड़े बलदेवजीके निकट आये। यहाँ आकर सबने देखा वह क्रूरकर्मा असुर भयंकर वेप बनाये मरा हुआ पड़ा है। सब लोग रहस्य को समझ गये। हँसते हुए श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—"दादा! तुम्हारा घोड़ा तो क्षणभरमें ही छोटेसे बड़ा और पतलेसे मोटा हो गया है।"

बलदेवजीने हँसकर कहा—"अरे, भैया! तू घोड़ोंका बड़ा पारखी है, तैंने इस घोड़ेकी चाल ढालको देखकर पहिले ही बता दिया था, कि यह रङ्गबदल घोड़ा है। सो, इसने यहाँ आते ही

रूप बदल दिया। मैंने भी फिर इसे परलोक ही पठा दिया।"

गोप आश्चर्यके साथ उसे देखकर कहने लगे—"अरे, यह तो असुर निकला। बलदाऊजी! आपने बड़ा ही सुन्दर कार्य किया, अच्छा हुआ यह दुष्ट आपका घोड़ा बना, यदि हममें से किसी को ले जाता, तबतो यह मार ही डालता। आप बड़े बली हैं। भगवान् करें, आप जुग-जुग जीवें और इसी प्रकार सदा हमारे संकटोंको दूर करते रहें और देवताओंके कंटक इन असुरोंको पछाड़ते रहें।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार सभी ग्वालबालोंने बलशाली बलदेवजी की बहुत प्रशंसा की, उन्हें अनेकों धन्यवाद दिये, सब प्रेममें विह्वल होकर उन्हें हृदय से चिपटाने लगे, आनंदमें विभोर होकर उनका आलिङ्गन करने लगे। उस पापी दुष्ट असुर के मारे जानेसे स्वर्गके देवता भी बड़े सन्तुष्ट हुए, वे भी बलदेवजीके ऊपर पुष्पों की वृष्टि करके अपनी प्रसन्नता प्रकट करने लगे।

प्रलम्बको मारनेके अनंतर वे सबके सब भाण्डीर वटके नीचे आकर फिर खेलने लगे। खेलते-खेलते वे सब खेलमें ऐसे तन्मय हो गये, कि गौओं की किसी को सुधि ही न रही। गौएँ चरते-चरते बहुत दूर चली गयीं। अब जो एक अद्भुत लीला हुई उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।

छप्पय

अंजन परबत सरिस उड़े नभमहँ जनु सित घन।
प्रथम डरे बलदेव फेरि सम्हरे सङ्करपन॥
मस्तक मुक्का मारि असुरके सिरकूँ फार्यो।
यों प्रलम्बकूँ तुरत रोहिनीनन्दन मार्यो॥
ग्वालबाल सब आइकें, साधुवाद बलकूँ दयो।
लखि बल द्वारा असुर बध, अति विस्मिय सबकूँ भयो॥

श्रीहरि द्वारा वनाग्निसे गौ और गोपोंकी रक्षा

(६२६)

तमापतन्तं परितो दवाग्निम्,
गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः।
ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना,
यथा हरिं मृत्युभयार्दिता जनाः ॥१
(श्रीभा० १० स्क० १९ अ० ८ श्लो०)

छप्पय

पुनि भांडीरक निकट आइ खेले सब बालक।
गोएँ निकसीं दूरि खेलमहँ तन्मय पालक॥
आई पुनि जब यादि ढूँढ़िवे गौअनि भागे।
दावानलकूँ देखि ग्वाल सब रोमन लागे॥
विपद सघन वन मूँजके, दावानलतैं सब जरैं।
डकरावें फँसि धेनु तहँ, ग्वाल लपट लखि अति डरैं॥

यह संसार मुञ्जाटवी है। इसमें जीव स्वादके लिये, आनन्दके लिये, प्राणोंको तृप्त करनेके लिये जाता है और फँस

१ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जब गौओंने तथा गोपोंने चारों ओरसे दावानलको अपनी ही ओर आते देखा, तो उसी प्रकार श्रीकृष्ण और बलरामकी शरणमें आकर पुकारने लगे, जिस प्रकार मृत्युके भयसे भयभीत हुए जीव श्रीहरिकी शरणमें आते हैं।

जाता है। इसमें की वस्तुओंको अपनी मानकर उनकी रक्षाके लिये—उन्हें बचानेके लिये—दौड़ता है, उद्योग करता है, किन्तु उन्हें बचाना दूर रहा, स्वयं भी उसमें फँस जाता है। इस संसार रूपी मुञ्जाटवी में सुख कहाँ—शान्ति कहाँ। चारों ओर अग्निकी—दुःख, शोक अशान्तिकी—लपटें उठ रही हैं। जीव स्वयं इन लपटोंसे बच नहीं सकता। दूसरे व्यक्ति उसकी सहायता कर नहीं सकते, क्योंकि वे भी तो इन लपटोंसे बचे हुए नहीं हैं। तपे हुए भाड़में जो भी रहेगा वही जलेगा। जो स्वयं जल रहा है, वह दूसरोंको कैसे बचा सकता है, जिसे स्वयं सर्पने काट लिया है, वह दूसरे की सर्पसे कैसे रक्षा कर सकता है। जो स्वयं जल में डूब रहा है, वह दूसरे डूबते हुएको कैसे उबार सकता है। जो सर्वात्म भावसे भगवान् की शरण जाता है, उन्हींको आर्त होकर पुकारता है, वह इस भवाटवीसे पार हो जाता है। उसके सभी दुःख दूर हो जाते हैं। शरणागतवत्सल प्रभु शरणमें आये हुए अपने से सेवकोंकी सभी संकटों से सदा रक्षा करते हैं, जलते हुए जीवों की रक्षा करते हैं, उन्हें संतापसे छुड़ाकर शान्ति प्रदान करते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! प्रलम्बको मारकर बलदेवजी श्रीकृष्ण और ग्वालबालोंके सहित पुनः भाण्डीरक वटके निकट आये। वटके नीचे कोमल बालू बिछी हुई थी सघन वृक्ष की सुन्दर शीतल छाया में बैठकर सभी ग्वालबाल पुनः क्रीड़ा करने लगे। बालकोंको खेलना सबसे अच्छा लगता है, श्रीकृष्ण तो मानों क्रीड़ाप्रिय ही ठहरे। वचे खेलमें इतने तन्मय हो गये, कि उन्हें गौओं का ध्यान ही नहीं रहा। वे चरती चरती जमुना किनारे से बहुत दूर निकल गयीं। बहुत से गड़रियोंके बालक भी श्रीकृष्णके साथ अपने पशुओंको चराने आ गये थे, उनकी बकरियाँ तथा भैंसे भी गौओंके साथ लग लीं थीं, वे भी चरती

चरती साथ ही चली गयीं। ग्रीष्म ऋतु थी, सघन वन थे, वहाँ कोई जलाशय भी नहीं था। पशुओं को तापके कारण प्यास लगी हुई थी, वे प्यास के कारण डकराने लगीं, दुखी होकर पानी की खोज में एक वन से दूसरे वनमें फिरने लगीं।

कुछ काल के पश्चात् श्रीकृष्णने कहा—"अरे, सारे ओ! तुम सब तो यहाँ आनन्द से खेल रहे हो, गौओं की भी कुछ सुधि है ?"

गौओं का नाम सुनते ही सबके कान खड़े हो गये, अब वे खेल-फेल तो सब भूल भाल गये। चारों ओर पेड़ों पर चढ़कर गौओं को निहारने लगे। वे ऊँचीसे ऊँची डाली पर चढ़ गये। किन्तु गौओं का कुछ भी पता न चला। इससे सभी ग्वालबाल बहुत चिंतित हुए। श्री बलराम तथा श्रीकृष्ण भी—सर्वज्ञ होते पर—इन्हींके समान चिंता प्रकट करने लगे सब मिलकर इधर उधर अपने पशुओं की खोज करने लगे। उन गोपों का सर्वस्व गौएँ ही तो थीं। गोधन के कारण ही तो उनकी जीवन यात्रा चलती थी, आज गौएँ कहाँ चली गयीं, इस बात से उनका मुख सूख गया था। वे एक वनसे दूसरे वन में घूमने लगे, किन्तु गौओं का कुछ पता ही न चला। इससे उनकी चिन्ता अत्यधिक चढ़ गयी। वे अचेतसे होकर इधर से उधर भटकने लगे। सहसा उन्हें बहुत-सी गौओं के खुरोंके चिन्ह दिखाई दिये इससे उनको सन्तोष हुआ। वे गौओं के खुरोंके चिन्हों के सहारे सहारे खोज लगाते हुए आगे बढ़े। गौओंके खुरों को देखकर तथा पशुओं के दाँतों से छिन्न भिन्न हुए तृणोंको देखकर उन्हें विश्वास हो गया कि गौएँ इधर ही गयी हैं और अभी गयी हैं, इसीलिए वे सब आशा लगाये वेग के साथ आगे बढ़े चले जा रहे थे। जाते जाते उन्हें आगे अत्यन्त सघन मूंजके वन दिखायी दिये। वहाँ इतनी घनी मूँज खड़ी थी, कि हाथों हाथ दिखाई नहीं देता था। उसमें

मूँज के वनमें उन्होंने गौओं का डकराना सुना। गौओं के शब्दको सुनकर उन्हें संतोष हुआ, आशा बँधी, वे उत्साहके साथ ध्वनिका अनुसरण करते हुए आगे बढ़े। आगे उन्होंने अपनी गौओं को प्यासी डकराती इधर से उधर भटकते देखा। गोप भी चलते चलते थक गये थे, उन्हें भूख भी लगने लगी थी और प्यासके कारण भी उनके कंठ सूख गये थे। भाण्डीरक वटसे कई कोस दूर निकल आये थे। श्रीकृष्णचन्द्र अपनी गौओं का नाम ले लेकर पुकारने लगे। अपना नाम सुनकर गौएँ कानों और पूँछों-को खड़ी करके रम्हाती हुई श्रीकृष्णके समीप आने लगीं। चारों ओर मूँजके ही वन थे। उनमें बहुत से वृक्ष सूखे थे—बहुतसे हरे। सहसा ग्वालबालों ने देखा, उस मूँजके वनके पूर्व की ओर से अग्नि की लपटें उठ रही हैं। सघन वनों में बाँसोंके संघर्षसे कभी कभी अपने आप अग्नि लग जाती है। पूर्व की ओर से अग्निको देखकर वे पश्चिम उत्तर दक्षिण सभी ओर देखने लगे। उन्होंने देखा चारों ओर अग्नि की लपटें उठ रही हैं। जैसे लकड़ी में कीड़े बीचमें हों और दोनों ओरसे लकड़ीमें आग लगी हो, तो वे किधर भागें। इसी प्रकार चारों ओरसे अग्निके कारण घिर जानेसे गोप अत्यन्त ही भयभीत हुए। वायुका सहारा पाकर अग्नि और भी अधिक प्रचण्ड बन रही थी। उसके सम्मुख स्थावर जंगम जो भी आ जाता, उसे ही वह स्वाहा करती हुई आगे बढ़ रही थी। अब क्या किया जाय, गौएँ भी घबड़ाने लगीं और गोप भी मारे डर के थर-थर काँपने लगे। किसी एक दिशामें भी मार्ग होता तो भाग जाते। अग्निने तो उन्हें चारों ओर से घेर लिया था। अब उन्होंने अपने बचनेका जब दूसरा कोई भी मार्ग न देखा तो उन्हें भगवान्की याद आई। वे सोचने लगे—"अरे, भय करने की क्या आवश्यकता है ? हमारे रक्षक तो हमारे साथ हैं।" इस विचार के आते ही उन्हें आनन्द-

रिक शांति हुई। वे दूरसे ही बड़े उच्चस्वरसे दीन होकर राम श्यामको सम्बोधन करके पुकारने लगे—"हे श्यामसुंदर! हे व्रजजीवन धन! हे अमित बल शाली बलराम जी। हम सब ग्वालबाल दीन दुखी होकर आपसे दया की याचना कर रहे हैं। हम सब दावानलके संताप से संतप्त हैं। हम सबके सब आपकी शरण हैं, आप शरणागतवत्सल हैं, हमारी आप रक्षा करें। जिन्होंने आपकी शरण लेली है, जिनके आप ही एक मात्र रक्षक और पालक हैं, उन आपके शरणागत अनन्य शरण अनुगतोंका ऐसा कष्ट होना उचित नहीं है। हमारी मति आप के ही चरणारविन्दोंमें है, हमारी एक मात्र गति आपही हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब इस प्रकार गोपों ने करुण स्वरमें करुणानिधान भगवान की प्रार्थना की, तो भगवान तुरन्त उनकी पुकार सुनकर मेघ गम्भीर वाणी में उन्हें अभयदान देते हुए बोले—"गोपो! तुम घबराओ नहीं, डरने का कोई काम नहीं, यह दावाग्नि तुम्हारा कुछ भी नहीं कर सकती। तुम सब चिन्ताओं को छोड़ दो। बाहरकी ओर से दृष्टि हटा लो। इस दृश्य जगतको मत देखो बाहरी चक्षुओं को बंद करके भीतर की ओर मेरा ध्यान करो। मेरा ध्यान करते ही तुम जहाँ भी खड़े होगे—वहींसे बिना चले—बिना श्रमके—अपने गन्तव्य स्थानपर पहुँच जाओगे।"

भगवान्के ऐसे आश्वासन पूर्ण सुमधुर गम्भीर वचन सुनकर ग्वालबालों को ढाँढस हुआ और वे वहींसे बोले—"अच्छी बात है हम सब बाहरी दृष्टिको बंद किये लेते हैं। हम बाहरकी ओर देखनेवाले चक्षुओं को आवृत करके अमृत स्वरूप तुम्हारा ध्यान करते हैं।" यह कहकर सबने अपने-अपने नेत्र बंद कर लिये सबके नेत्र बंदकर लेनेपर सर्वान्तर्यामी प्रभु उस अनलको पान कर गये। क्षणभरमें प्रचण्ड लपटोंवाली अग्नि सर्वात्मा श्यामसुन्दरके संकरन

मात्रसे शान्त हो गयी। यही नहीं गौएँ गोप जहाँ खड़े थे— वहाँ से सबके सब भाण्डीरवट के निकट आ गये।

भगवानने कहा—"अब खोल लो अपने अपने नेत्र।"

ज्यों ही सबने अपने अपने नेत्र खोले—"त्यों ही क्या देखते हैं, कि न वहाँ अग्नि है न धूँआ। न मूँजका वन है न भयंकर लपटें। वे सब तो यमुना किनारे भाण्डीरकवट के नीचे अपनी गौओं के साथ खड़े हैं। इस प्रकार गौओं के सहित अपने को दावानलसे सुरक्षित तथा सकुशल देखकर सभी सखा परम विस्मित हुए। भगवान्के ऐसे अद्भुत सामर्थ्य को देखकर उनके मन में क्षणभर को ऐश्वर्य का भाव उदय हुआ। वे श्रीकृष्ण को अपने से विलक्षण कोई देवता समझने लगे।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! अपने सखाओं को विस्मित देखकर सर्वान्तर्यामी श्यामसुन्दर हँस दिये, उनका हास्यतो मानो जनोन्मादकरी माया ही है, बच्चे सब बातों को भूल गये, फिर ज्यों के त्यों श्रीकृष्णको अपना सखा समझने लगे। सायंकाल को गौओं को लौटाकर वे भगवानके साथ गोष्ठमें आये और आकर सब बातें अपनी माताओं को उन्होंने सुनाई।

छप्पय

रक्षा अनत न समुझि शरण माधवकी आये।
सभय शब्द सुनि श्याम अभय वर वचन सुनाये॥
मीचो तुम सब आँखि सुनत मीचीं सब गोपनि।
दावानल करि पान कहें हरि—निरखो गौअनि॥
भाण्डीरक नीचे निरखि, सकुशल गौअनिके सहित।
भये सुखी पुनि चलि दये, लै गैयनि व्रजकूँ तुरत॥

—:०:—

गोपियोंका अनुपम अनुराग

(६३०)

गोपीनां परमानन्द आसीद् गोविन्द दर्शने।
क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत्॥[1]

(श्रीभा० १० स्क० १९ अ० १६ श्लो०)

छप्पय

निरखे आवत श्याम हृदय गोपिनिके हरषे।
गीले भये कपोल श्याम-घन रस जनु बरषे॥
पलछिन जिन बिनु समय कोटि बरसनि बीत्यो।
श्याम दीठितैं दीठि मिली सब जग जीत्यो॥
मुरलीको रव श्रवन सुनि, कुञ्चित कच पटपीत वर।
अँग-अँग लखि पुलकित भये,नटवरकी छवि अतिसुघर।

जीवनकी सार्थकता अनुरागमें ही है। जिस जीवनमें प्रेम नहीं, वह जीवन नहीं जञ्जाल है। जो समय किसीकी मधुर स्मृतिमें, किसीकी पुण्य प्रतीक्षामें, प्रियकी उत्कट आकांक्षामें न बिताया जाय, वह समय क्या है। किसीके मिलनेकी प्रतीक्षामें पल-पल छिन-छिन गिना जाय, यही समयकी सार्थकता है।

---

[1] श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! सायंकालके समय गौओंको चराकर श्रीगोविन्द जब लौटे, तो उनके दर्शन पाकर गोपियोंको परमानन्दकी प्राप्ति हुई। उन गोपियोंको भगवान्के वियोगमें एक-एक क्षण सौ-सौ युगके समान लम्बा दिखायी देता था।'

आँखें किसीको चितवनके लिये प्यासी बनी रहें, यही इन आँखों-का उत्तमसे उत्तम उपयोग है, श्रवण किसी के सुखद शब्द सुनने को सतत-उत्कंठित बने रहें, यही श्रवणोंका श्रवणत्व है। हृदय किसीके लिये तड़पता रहे, किसी के लिये व्याकुल बना रहे, किसीकी मीठी-मीठी स्मृति चुभती रहे, उसे भीतर ही भीतर कोई गीले वस्त्र की भाँति ऐंठता रहे और उसमें से नीर निचुड़ता रहे, वही हृदय हृदय है, ऐसे ही हृदयवाला सहृदय कहलाता है। स्मृतिशून्य जीवन क्या कोई जीवन है। उत्कंठा बिना कालयापन करना क्या काल-की सार्थकता है। ब्रजकी वे ब्रजाङ्गनाएँ विश्ववन्दनीया और भाग्यशालिनी हैं, जिनके मन में सदा मन-मोहनकी मधुर-मधुर मूर्ति नृत्य करती रहती थी, जिनका पल-पल क्षण-क्षण श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी, लीलामाधुरी और रेणु-माधुरी की ही स्मृति में व्यतीत होता था।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ब्रजजीवन सर्वस्व श्रीकृष्णचन्द्रके प्रति ब्रजाङ्गनाओंका कितना अनुराग था, उसके वर्णन करने की सामर्थ्य शेष शारदा तथा कमल-योनि आदि कवि चतुरानन ब्रह्माजी में भी नहीं है। फिर हम जैसे साधारण लोगों की तो बात ही क्या है। प्रातःकाल श्यामसुन्दर गौओं को लेकर वन को जाते, वंशी बजाते हुए ब्रजसे निकलते, मानों ब्रजाङ्गनाओंके प्राण शरीर से निकल रहे हों। उनके बिना वे अचेत हो जातीं। मृतक-वत् बन जातीं। उन्हें छिन-छिन पल-पल भारी हो जाता।"

शौनकजीने पूछा—"सूतजी! जब ब्रजाङ्गनाओं का श्याम-सुन्दरके प्रति इतना प्रेम था, तो वे श्रीकृष्णके बिना जीवित कैसे रहती थीं?"

सूतजी बोले—"भगवन्! श्रीकृष्ण के बिना उनका जीवन तो उसी प्रकार असम्भव था, जिस प्रकार जलके बिना मछली। किन्तु जब श्याम वनको चले जाते, तो उनके संतप्त मृतकवत

गोपियोंका अनुपम अनुराग

(६३०)

गोपीनां परमानन्द आसीद् गोविन्द दर्शने।
क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत् ॥[१]
(श्रीभा० १० स्क० १९ अ० १६ श्लो०)

छप्पय

निरखे आवत श्याम हृदय गोपिनिके हरषे।
गीले भये कपोल श्याम-घन रस जनु बरषे॥
पलछिन जिन बिनु समय कोटि बरसनि बीत्यो।
श्याम दीठितैं दीठि मिली सब जग जीत्यो॥
मुरलीको रव श्रवन सुनि, कुञ्चित कच पटपीत बर।
अँग-अँग लखि पुलकित भये,नटवरकी छवि अतिसुघर।

जीवनकी सार्थकता अनुरागमें ही है। जिस जीवनमें प्रेम नहीं, वह जीवन नहीं जञ्जाल है। जो समय किसीकी मधुर स्मृतिमें, किसीकी पुण्य प्रतीक्षामें, प्रियकी उत्कट आकांक्षामें न विताया जाय, वह समय क्या है। किसीके मिलनेकी प्रतीक्षामें पल-पल छिन-छिन गिना जाय, यही समयकी सार्थकता है।

---

१ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! सायंकालके समय गौओंको चराकर श्रीगोविन्द जब लौटे, तो उनके दर्शन पाकर गोपियोंको परमानन्दकी प्राप्ति हुई। उन गोपियोंको भगवान्के वियोगमें एक-एक क्षण सौ-सौ युगके समान लम्बा दिखायी देता था।"

आँखें किसीकी चितवनके लिये प्यासी बनी रहें, यही इन आँखों-का उत्तमसे उत्तम उपयोग है, श्रवण किसी के सुखद शब्द सुनने को सतत-उत्कंठित बने रहें, यही श्रवणोंका श्रवणत्व है। हृदय किसीके लिये तड़पता रहे, किसी के लिये व्याकुल बना रहे, किसीकी मीठी-मीठी स्मृति चुभती रहे, उसे भीतर ही भीतर कोई गीले वस्त्र की भाँति ऐंठता रहे और उसमें से नीर निचुड़ता रहे, यही हृदय हृदय है, ऐसे ही हृदयवाला सहृदय कहलाता है। स्मृतिशून्य जीवन क्या कोई जीवन है। उत्कंठा बिना कालयापन करना क्या काल की सार्थकता है। व्रजकी वे व्रजाङ्गनाएँ विश्ववन्दनीया और भाग्यशालिनी हैं, जिनके मन में सदा मन-मोहनकी मधुर-मधुर मूर्ति नृत्य करती रहती थीं, जिनका पल-पल क्षण-क्षण श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी, लीलामाधुरी और वेणु-माधुरी की ही स्मृति में व्यतीत होता था।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! व्रजजीवन सर्वस्व श्रीकृष्णचन्द्रके प्रति व्रजाङ्गनाओंका कितना अनुराग था, उसके वर्णन करने की सामर्थ्य शेष शारदा तथा कमल-योनि आदि कवि चतुरानन ब्रह्माजी में भी नहीं है। फिर हम जैसे साधारण लोगों की तो बात ही क्या है। प्रातःकाल श्यामसुन्दर गौओं को लेकर वन को जाते, वंशी बजाते हुए व्रजसे निकलते, मानों व्रजाङ्गनाओंके प्राण शरीर से निकल रहे हों। उनके बिना वे अचेत हो जातीं। मृतक-वत् बन जातीं। उन्हें छिन-छिन पल-पल भारी हो जाता।"

शौनकजीने पूछा—"सूतजी! जब व्रजाङ्गनाओं का श्याम-सुन्दरके प्रति इतना प्रेम था, तो वे श्रीकृष्णके बिना जीवित कैसे रहती थीं?"

सूतजी बोले—"भगवन्! श्रीकृष्ण के बिना उनका जीवन तो उसी प्रकार असम्भव था, जिस प्रकार जलके बिना मछली। किन्तु जब श्याम वनको चले जाते, तो उनके संतप्त मृतकवत

शरीर को उनका कथामृत जीवनदान देता। उनकी कथा इतनी श्रुति-मधुर और जीवनदान देने वाली थी, कि उसका पान करते-करते वे मरना भी चाहतीं, तो भी नहीं मर सकतीं थीं। इस श्रीकृष्णावतार में भगवान् ने जैसी मोहकता प्रकट की है, वैसे कहीं भी नहीं मिलती। उसी रूपमाधुरी, लीलामाधुरी और वेणुमाधुरीका पान ये व्रजाङ्गनायें किया करती थीं। इन सबके सब बँधे हुए थे। प्रेम का सुख जितना परोक्षमें होता है उतना सम्मुखमें नहीं होता जो रात्रि दिन आकर गंगा तटपर ही बस जाते हैं, उन्हें गङ्गा का उतना स्मरण नहीं रहता इतनी उत्कंठा उत्पन्न नहीं होती, जो गंगासे दूर मरुभूमिमें रहता है गङ्गाजीका अत्यन्त भक्त है, एक कण गङ्गाजल पाकर धन्य-धन्य हो जाता है, उसके मनमें दूरसे अत्यन्त प्रेम उमड़ता है। अपना प्रियतम सम्मुख होने से नेत्र भरके उसकी ओर देखा भी नहीं जाता। लोक-लाज का भय लगा रहता है, 'कोई हमारे भावको ताड़ न जाय, कोई हमें देख न ले, बार-बार देखने से कोई क्या कहेगा, ये भाव उठते हैं। यदि इन भावों को तिलाञ्जलि भी दे दी जाय, तो ये निगोड़े नयन प्यारेको देखकर गीले हो जाते हैं, बहने लगते हैं, अश्रुविन्दु आ-आकर देखनेवाली पुतलियों को आच्छादित कर लेते हैं। प्यारेके दर्शन में व्यवधान डाल देते हैं। परोक्ष में ये सब झंझट नहीं हैं। या तो एकान्त में बैठकर उसीका मनमें आलिंगन करते रहो, उसीसे बातें करते रहो, उसीका चिंतन करते रहो। अथवा अपने ही जैसे रसिक मिल जाय, तो उनके साथ बैठकर उसीके सम्बन्धकी बातें करते रहो, उसीकी लीलाओं को गाते रहो, उसी के रूपका वर्णन करते रहो। इन सब बातों में चित्त तन्मय होता है इसीलिये रसशास्त्रके आचार्यों ने प्रेमरूप पादपका फल विरहको बताया है।

श्रीकृष्ण सदा गौओं को चराने जाते। वसंतके वेश-विन्यास

नंगे पैरों कहाँ गौओं के पीछे पीछे भटक रहे होंगे। उनके कोमल चरण कमलों में कुश, काश तथा कंकण चुभते होंगे। यमुनाजीकी वालुका उसी प्रकार संतप्त हो रही होगी, जिस प्रकार हमारा हृदय संतप्त हो रहा है। हमारे हृदय पर श्यामसुन्दर का चरण पड़ जाय, तो वह शीतल हो जाय, किन्तु तप्त बालुका तो चरणोंको ही तपा देती होगी, उन भोली ब्रजाङ्गनाओं को यह पता ही नहीं था, कि विश्वको शीतलता प्रदान करनेवाला वह चरण जहाँ भी पड़नेवाला होगा वहाँ का संताप प्रथम ही जाता रहेगा। पृथिवी उन चरणों की—चरण चिह्नों की—कृपणके धनके सदृश रक्षा करतीं।

जब आषाढ़में उमड़ घुमड़कर आकाशमें काले-काले बादल छा जाते, तब गोपिकाओंकी चिन्ता और भी बढ़ जाती। श्रावण और भादों में वर्षा होने लगती। समस्त भूमि हरी भरी नवविवाहिता वधू के समान बन जाती। जगका जीवन ही जल है, इसलिये जल पड़ते ही सभी हरे भरे हो जाते। हरी हरी दूब पर इन्द्रबधूटियाँ—समलगुड़ियाँ—चलती हुई—रेंगती हुई—ऐसी प्रतीत होती थीं, मानो हरे रङ्ग के रेशमी गलीचेपर लाल लुढ़क रहे हों। बिजली की चंचलता को देखकर वे चमक उठतीं और सोचतीं—"श्रीकृष्ण भी ऐसे ही चंचल हैं, उनका प्रेम भी कहीं ऐसा ही चंचल न हो, वे हम अबलाओं का परित्याग न कर दें। हमारा जीवन भी चंचल है यह यौवन भी चंचल है, फिर श्रीकृष्णकी स्मृति हमें और भी अधिक चंचल कर रही है। इस प्रकार चपलाकी चंचलता और चमकको देखकर निरन्तर सोचती ही रहतीं।

मन्द मन्द गर्जन करनेवाले जलधरों के शान्त और गंभीर रवको सुनकर उनका शरीर रोमाञ्चित हो उठता, उन्हें भ्रम होने लगता, कि मेघ-गंभीरवाणी में श्यामसुन्दर ही तो अपनी गौओं-

को नहीं पुकार रहे हैं। रात्रिमें खद्योतोंका प्रकाश, मेढ़कोंका टर्-टर् शब्द, झींगुरोंकी झनकार, डंस और मच्छरोंका रहस्यमय शब्द—ये सबके सब उनके मनोंमें वैराग्यका सञ्चार करते, किन्तु श्रीकृष्णके अनुरागका इतना गाढ़ा लेप उनके अन्तःकरणों में हो गया था, कि यह वैराग्य स्थायी नहीं होता, अपितु अनुराग की और वृद्धि ही करता। जब वे द्रुतगतिसे समुद्रकी ओर दौड़ती हुई किसी सरिताको निहारतीं, तो आत्मविस्मृत-सी बन जातीं और कहतीं—"हाय! इसीका अनुराग धन्य है, अपने प्रियतमसे मिलनेके लिये यह कैसी दौड़ी जा रही है, हम श्यामसुन्दरसे खुलकर मिल भी नहीं सकतीं। उनसे हृदयकी दो बातें भी नहीं कह सकतीं, कैसी विवशता है, कैसी परतन्त्रता है।

आकाशमें उदित इन्द्रधनुषको देखकर उन्हें श्यामसुन्दरकी छवि याद आजाती। जिस प्रकार नील आकाशमें यह रङ्ग विरङ्गा इन्द्रधनुष शोभित हो रहा है, इसी प्रकार श्यामके उभरे विशाल वक्षस्थलपर रङ्ग विरङ्गी वनमाला शोभित होती है। जब वे बादलोंसे ढके फीके-फीके चन्द्रमाको निहारतीं, तो उन्हें अपनी विवशतापर रोना आ जाता, जैसे आज यह कान्तियुक्त चन्द्रमा मेघोंके आवरणसे आभासित नहीं होता, उसी प्रकार श्रीकृष्णके विरहरूपी आवरणसे हम सबका मुख म्लान हो रहा है। मयूरिनियोंसे घिरे मयूरोंको प्रेममें नृत्य करते हुए देखकर तथा मयूरिनियोंको उसके अश्रुपान करते देखकर गोपिकायें उन पक्षिणियों, के भाग्यकी सराहना करने लगतीं और सोचतीं, ऐसा कब समय आवेगा, कि हम सब भी नृत्य करते हुए नन्दनन्दनके कण्ठमें अपनी-अपनी भुजाओंको डालकर उनके साथ नृत्य करेंगी। कब अपने अश्रुओंसे भीगे नयनोंको उनके कपोलोंमें संघर्ष करेंगी।

सायंकालके समय जब चक्रवाकीको रुदन करते हुए वे देखतीं-तो स्वयं भी रोने लगतीं और उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करतीं

हुई कहतीं—"बहिन ! रोवे मत। देख, इन वियोगकी घड़ियोंको धैर्यके सात विता दे। कभी न कभी तो भगवान् भुवनभास्कर उदित होकर तेरे सन्ताप को हरेंगे ही। तेरे मिलनकी तो एक निश्चित सीमा है, सूर्यके उदय होते ही तुझे तेरे प्राणधन-जीवन सर्वस्व मिल ही जायँगे, किन्तु हम अभागिनियोंके मिलनकी तो कोई सीमा नहीं. कोई निश्चित समय नहीं। कब श्यामघन बरस जाय, कब वह शुष्क हृदयोंमें आर्द्रता कर दे, यह सब तो उसकी इच्छापर निर्भर है। अतः तू है तो हमारी ही भाँति वियोगिनी, किन्तु तेरे वियोगकी सीमा है, सम्मिलनका निश्चित काल है। हम तो निस्सीममें भटक रही हैं।

वनके सघन वृक्षोंको देखकर कहतीं—"वृक्षो तुम्हारा ही जीवन सफल है, तुम कहीं जाते नहीं, अपने ही स्थानपर खड़े रहते हो, श्याम स्वयं आकर तुम्हारे नीचे बैठते हैं, हम तो छटपटाती रहती हैं, बिलबलाती रहती हैं, इधरसे उधर भटकती रहती हैं, श्याम हमारे समीप आकर बैठ जायँ किन्तु हाय ! हमें ऐसा सुअवसर नहीं प्राप्त होता। फिर पाषाणोंको निहारकर कहतीं—पाषाणो ! तुम ही धन्य हो, जो तुम्हारे ऊपर बैठकर श्यामसुन्दर दही भात खाते हैं, अपना उच्छिष्ट अन्न तुम्हारे ऊपर डालते हैं, अपने हाथोंसे प्यारेको खिलानेमें कितना सुख है, उनके अधरामृतमें उच्छिष्ट प्रसादमें कितना स्वाद है, ये कुछ कहनेकी बातें नहीं हैं, हाय ! हमब्रजकी शिलायें ही होतीं—तो कृतार्थ होजातीं। श्यामसुन्दर हमारे ऊपर लेट तो जाते, गौएँ चराते-चराते थककर विश्राम तो करते, अब तो हम उनके किसी भी काममें नहीं आयीं

फिर गौओं को देखकर उनके हाथ जोड़तीं, उन्हें दण्डवत् करतीं और कहतीं—"गौओ ! जीवन तो तुम्हारा ही सफल है। श्यामसुन्दर का सुखद स्पर्श तुम नित्य प्रति पाती हो, वे तुम्हारी पीठ.का स्पर्शपात हैं, हमारे ऐसे भाग्य कहाँ, वे तुम्हारा नाम

लेकर पुकारते हैं, तुम दौड़ी दौड़ी उनके निकट चली जाती हो, हमें न वे पुकारते हैं न बुलाते हैं, हमारे तो नामों को भी वे न जानते होंगे। हमें उनका रोमाञ्चकारी दिव्य स्पर्श कैसे प्राप्त हो सकता है। हम उनके निकट भी निर्भय होकर नहीं जा सकतीं। ये सास नँनद, देवर, जेठ सब चारों ओर से बाढ़ बनाये खड़े हैं।

फिर वर्षा में हुई कीच को मस्तक पर लगातीं और कहतीं—"व्रज की कीच! तुम ही धन्य हो, जो श्यामसुन्दर के चरणों से लिपट जाती हो, सट जाती हो उनमें चिपक जाती हो। हम अपने तप्त वक्षःस्थल पर गाढ़ी गाढ़ी कुंकुमकी कीच लगातीं हैं, कि इन पर श्यामसुन्दर के अरुण चरण पड़ जायँ तो वे पीत वर्णके बन जायँ, किन्तु लगाते ही यह कीच सूख जाती है, उनके चरण कमल उन पर पड़ते भी नहीं, पड़ें भी तो वह उनके चरणों में चिपक नहीं सकती लग नहीं सकती। हाय! हम व्रज की रज भी न हुईं। व्रजकी रज होती तो वसंत और ग्रीष्म में उड़ उड़कर श्यामके पलकोंमें, अलकोंमें, कपोलोंमें, वक्षःस्थलमें बाहुओं में लग जातीं और वर्षामें कीचड़ बनकर उनके चरणोंमें चिपक जातीं।

इस प्रकार प्राणिमात्र को जीवन दान देनेवाली वर्षा ऋतुके दो महीनों को वे गोपिकायें विलाप करते हुए नेत्रोंसे नीर बहाते हुए बितातीं मानों स्वयं भी सबकी सब वर्षा ऋतु बन जातीं। शनैः शनैः अनंत चतुर्दशी बीत गयी, वर्षा कुछ थम गयी। आकाश स्वच्छ होने लगा, शरद ऋतुने प्रवेश किया। चातुर्मास्य व्रत करने वाले अब व्रत को समाप्त करके बन्धन को त्याग कर स्वच्छन्द होकर विचरण करने लगे। श्रावणमें अपने अपने पिताओंके घर में आई हुईं लड़कियाँ अपनी अपनी ससुराल को जाने लगीं। व्यापारी बैलों को लादे व्यापारके लिए निकल पड़े। राजागण युद्ध के लिये सुसज्जित होकर दिग्विजय के लिये सेना सहित जाने लगे। गोपिकायें कहाँ जातीं वे जिसे भी देखतीं

उसीको देखकर रोने लगतीं। नदियों के जलको स्वच्छ देखतीं तो कहतीं—"बहिनो! तुम्हारा जल तो निर्मल हो गया, किन्तु हमारे मनका मैल नहीं कटा। हमारा मन और भी अधिक मलिन हो गया है। मोहन जब तक अपने तन से तन और अपने मनमें मन न मिलायें तब तक हम मलिन मन वाली ही बनी रहेंगी। देखो, तुम्हारे भीतर के कमल खिल गये, किन्तु हमारा मन मुकुर अभी विकसित नहीं हुआ। वह अभी बन्द है। श्याम रूप सूर्यका दिव्य प्रकाश जब तक प्राप्त न हो, तब तक वह खिल ही कैसे सकता है।

शरद ऋतु में पृथिवीकी पंक धुल गयी। पृथिवी पंकसे रहित हो गयी, उसे देखकर गोपिकायें कहतीं—"धरनी! तुम ही धन्य हो, जो प्यारेके पादारविन्दोंके पड़नेसे तुम पंकरहिता बन गयीं। पद्म कीचड़ में ही विकसित होते हैं, इसीलिये हम अपने हृदय पर नित्य कीचड़ का अनुलेप करतीं कि कहीं इसमें भी अरुण चरण कमल उदित हो जायँ, किन्तु हम देखती हैं, हमारे हृदयकी कुंकुम कीचमें वे चरण उदित न होकर कीच रहित तुम्हारे वक्ष स्थलपर श्यामसुन्दरके पादपद्म अंकित हैं। तुम्हारा वक्षस्थल उन चरण चिह्नोंसे चिह्नित है। फिर हरी हरी घास को देखकर कहतीं—"शाद्वल! श्यामसुन्दर के चरणों के स्पर्श से तुम हरी हो गयीं। हम अभागिनी इतनी वर्षा होने पर भी सूखीकी सूखी ही बनी रहीं।

छोटे छोटे पोखराओंमें रहनेवाली मछलियोंको शरद कालीन सूर्यके प्रखर तापमें संतप्त देखकर गोपिकायें कहतीं—"मछलियो! हमारा तुम्हारा दुःख समान है, तुम भी ताप से संतप्त होकर तड़प रही हो और हम भी, किन्तु हममें और तुममें कुछ अंतर है, तुम हम से अधिक भाग्य शालिनी हो। एक तो वर्षा में तुमने अपने जीवनधनकी अगाधता और प्रचुरता का सुख भोग लिया

है, हम सब अभी उससे वंचित हैं, दूसरे तुम्हें रात्रि में तो शांति मिलती है, हम तो रात्रि दिन तड़पती रहती हैं। यह तड़पन कब मिटेगी, इसे श्यामसुन्दर ही जानें।

वृक्षों के ऊपर चढ़ी हुई फूली फूली लताओं को देखकर वे कहतीं—"लताओ! स्त्री जाति होनेका जितना सर्वश्रेष्ठ सौभाग्य तुम्हें प्राप्त हुआ है, उतना लक्ष्मीको भी प्राप्त न हुआ होगा। तुम अपने प्राणनाथ से आठों प्रहर लिपटी रहती हो। हम एक बारके उनके आलिङ्गन के लिये व्याकुल बनी रहती हैं। तुम अपनी बाहुपाशों में सदा प्रियतम को बांधे ही रहती हो। देखो, तुम्हारे रोम रोमसे प्रसन्नता फूटी पड़ रही है। तुम ऊपर से नीचे तक फूल रही हो, सिहा रही हो, इठला रही हो, मिल रही हो हिल रही हो और हम अभागिनियों को देखकर हँस रही हो। ये जो तुम्हारे सिरोंसे पुष्प गिर रहे हैं ये तुम्हारे सात्विक भाव के उदय होने के चिह्न हैं।

मुग्धा सखी लताओं से कहने लगीं—"लताओ! जल रूप जीवन पाकर तुम कच्चीसे पक्की हो गयीं, छोटीसे बड़ी बन गयीं, उस प्रकार हम बढ़ तो गयीं किन्तु श्यामसुन्दरका स्पर्श न पाकर अभी जैसी की तैसी ही बनी हैं।

शरद् कालीन चन्द्रको देखकर वे कहतीं—"हे निशानाथ! संसारमें तुम सर्वश्रेष्ठ सुन्दर माने जाते हो। कवियों ने शारदीय शशिकी सुन्दरताके वर्णनमें सीमोल्लंघन कर दिया है। तुम शरद् कालीन सूर्य की प्रखर किरणों से संतप्त प्राणियोंको रात्रिके समय शान्ति प्रदान करते हो, किन्तु हमें तुम और भी अधिक संताप पहुँचाते हो। हमें तुम विरहव्यथामें अधिकाधिक जलाते हो! हमारे संताप को तुम नभचन्द्र नहीं मिटा सकते, इसे तो व्रजचन्द्र ही मिटाने में समर्थ हैं, किन्तु वे हमें अपनाते नहीं ठुकराते हैं।

निकट आने नहीं देते दुरदुराते हैं, हम उन्हें चाहती हैं, वे हमें नहीं चाहते।

चन्द्रमाके साथ खिली हुई तारायों को देखकर कहतीं— "तारिकाओ! नभ में रहनेका फल तुमने ही पाया है, जो शशांक निशाके नाथ होनेपर भी तुम सबके नाथ बने हुए हैं, तुम सबको खिला रहे हैं, रिझा रहे है, प्रमुदित बना रहे हैं। हमारे नाथ तो हमें खिजाते हैं, रुलाते है, समीप भी नहीं आते। वंशी बजाते हुए टेढ़े टेढ़े निकल जाते हैं। मंद मंद मुसकराते हुए कटे पर नमक सा बुरकते हुए समीपसे ही चले जाते हैं। जैसे तुम सबके बीच में बैठकर विधुवर खिल खिलाकर हँस रहे हैं, वैसे श्यामसुन्दर हम सबके मध्यमें बैठकर कब हँसेगे? ज्योतिषी तुम्हारी ही गणना करके फल बताते हैं, भविष्य कथन करते हैं, तुम भी हमें हमारे सौभाग्यके दिन को बता दो। कब हमारा भाग्योदय होगा। कब श्यामसुन्दर की कृपादृष्टि की वृष्टि से आर्द्र होकर हम सर्वाङ्ग शीतलता युक्त बन सकेंगी। पुरुष पुरुष से भले ही कोई बात छिपाले, किन्तु स्त्री स्त्रीसे कोई बात नहीं छिपाती। तुम तो हमारी जाति की हो, अंतर इतना है कि तुम सौभाग्यशालिनी हो, तुम्हें पतिका संयोग प्राप्त है, हम उसके लिये लालायित हैं, इच्छुक हैं।"

वन्यपुष्पोंके सौरभ को साथ लिये हुए समीरको आते देखकर गोपिकायें कहने लगीं। समीर! शरद् काल में तुम्हारी बड़ी प्रशंसा की जाती है। यद्यपि तुम इस समय न अधिक ठंडे हो न अधिक उष्ण, समशीतोष्ण हो। इस समय तुम ज्येष्ठ आषाढ़ की भाँति प्रचण्ड वेगसे भी नहीं बह रहे हो। सुगन्धिको लिये हुए मन्द मन्द बह रहे हो। अपने सुखद स्पर्श से सब प्राणियों के सन्तापको हर रहे हो, फिर भी तुम हमारे साथ पक्षपात करते हो। हमें तो विरहताप से संतप्त ही कर रहे हो। तु

कहोगे, कि तुम तो अंड वंड सोचती रहती हो, व्यर्थ के विचारोंमें निमग्न बनी रहती हो; मेरी ओर चित्त दो, जब तक किसी सुखद वस्तु में प्राणी चित्त नहीं लगाता, तब तक वह उसके सुखको अनुभव नहीं कर सकता।" सो हे पवनदेव! तुम्हारी ये बातें सत्य हो सकती हैं, किन्तु हम अपने चित्तको तुममें लगावें कैसे? चित्त हमारे पास हो, तो उसे लगावें भी। हमारे चित्त को तो चित्तचोर श्यामसुन्दरने चुरा लिया है। जो अपने पास है ही नहीं, उसका प्रयोग कर ही कैसे सकते हैं।

फिर सूर्यकी किरणों से मुदी हुई सकुची हुई कुमुदिनी को देखकर कहने लगीं—"कुमुदिनी! न जाने भगवान् ने इस स्त्री जातिको इतना हेय क्यों बनाया है। इसके हृदयको तो बूढ़े बाबा ब्रह्माने इतना सरस और सेवापूर्ण बना दिया, किन्तु फिर व्यर्थका संकोच इसके हृदय में क्यों भर दिया। तुम सूर्य की ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकतीं। क्योंकि तुम्हारा यह धर्म है कि निशानाथ के हास को देखकर खिलो। निशारानी की उपस्थितिमें ही तुम अपने मुख को खोल सकती हो। इस समय तो तुम्हें हमारे ही समान मन मारकर सिकुड़ कर अपने मुख को छिपाये रखना है। इस विवशता की भी कोई सीमा है?

गौओं मृगियों और पक्षिणियों को देखकर वे विरह संतप्ता गोपिकायें कहने लगीं—"बहिनाओ! इस ऋतु में आकर तुम सब ऋतुमती बन गयी हो। तुम्हारा ऋतुकाल सार्थक है, जो तुम्हारे पति अनाहूत भी तुम्हारा अनुसरण कर रहे हैं। हम अभागिनी तो इस सुख से वञ्चित हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार श्रीकृष्ण अनुरागमें अनुरक्ता वे व्रजाङ्गनायें जलाशयों के जलको स्वच्छ करने-वाली जिस शरद् ऋतुमें इस प्रकार तड़प रही थीं, उसी शरद् ऋतुमें श्यामसुन्दर ने गोपाल और गौओं के साथ कुसुमित कानन

में प्रवेश किया। उस वन की शोभा अनुपम थी, शरद कालीन कमल खिल खिलकर हिल रहे थे, सुगन्धियुक्त पुष्पों और फलोंके भारसे नमित पादपोंपर सुनायी देनेवाले पक्षियोंके कलरव से ऐसा प्रतीत होता था मानों वे अपने हाथों को हिलाकर मधुर स्वर में पथिकों को विश्राम के निमित्त बुला रहे हों। भिन्न-भिन्न करके भौंरे मानों भिन्न-भिन्न स्वरोंमें गा रहे हों। पक्षियोंका कलरव गिरिगुहाओंमें, नद नदी तथा सरिता सरों के स्वच्छ सलिल में प्रतिध्वनित होकर वन्य प्रदेशमें एक प्रकार की विचित्र गूँजको भर रहा हो। ऐसे सुखद समय में, ऐसे शोभायुक्त वन में वनवारीने वंशी बजायी। उस वंशीके शब्दको सुनकर व्रजाङ्गनाओं की कैसी दशा हुई उसका वर्णन मैं आगे रुक-रुक कर करूँगा। मुनियो! आप मेरी इन बातों से ऊब तो नहीं गये?"

शौनकजीने कहा—"सूतजी! इसमें ऊबनेकी कौनसी बात है। यह तो बड़ा सरस साहित्यिक प्रसङ्ग है। आप जितने भी विस्तार के साथ इस प्रसङ्गको सुनावेंगे उतना ही हमें आनन्द आवेगा।"

सूतजीने कहा—"भगवन्! विस्तार तो भला मैं कर ही क्या सकता हूँ, फिर भी इस प्रसङ्गको मैं कुछ रुक-रुक कर धैर्यके साथ सुनाऊँगा। आप ऊबे नहीं और समाहित चित्तसे श्रवण करें।"

छप्पय

सुखद शरदको समय सरित् सर स्वच्छ भये सब।
गोगोपाल समेत श्याम प्रविशे वनमहँ तब॥
सघन सफल द्रुम सुमन सहित कोमल पल्लवयुत।
शुक पिक केकी आदि उड़े खग जिनपै इत उत॥
शारदीय विकसे कमल, प्रकृतिवधू सब विधि सजी।
हिय मनसिजकूँ उदय करि, तब मोहन मुरली बजी॥

वेणु-वादन

(६३१)

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारम् ।
विभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन्गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥❀

(श्रीभा० १० स्क० २१ अ० ५ श्लो०)

छप्पय

श्रवण शबद सुनि रहीं ठगी-सी सब ब्रजनारी ।
कछु गुन बरनन करें बधुनि मन बात विचारी ॥
करयो कछुक आरम्भ यादि मोहनकी आई ।
तब चित चञ्चल भयो देहकी सुरति भुलाई ॥
अपर सम्हरि बोली—अली, मुरली अधरामृत भरहिँ ।
पुनि झुकि फूँके नँदनँदन, छिद्रनितैं वितरित करहिँ ॥

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जिनके सिरपर मोरमुकुट है, जो कानोंमें कर्णिकारके पुष्प खुरसे हैं, जो कनकके सदृश कान्तिमान पीताम्बर पहिने हुए हैं, जो कंठमें बैजयन्तीमालाको धारण किये हुए हैं। जो ग्वालबालोंके मुखसे गाये हुए अपने सुयशको सुनते आते हैं उन श्रीकृष्णचन्द्रने बाँसुरीके छिद्रोंको अपने अधरामृतसे पूर्ण करते हुए निज चरणचिह्नोंसे सुशोभित वृन्दावनमें प्रवेश किया।"

रूपका आकर्षण तो होता ही है, स्वरका, शब्दका, ध्वनिका सगीतका भी एक प्रबल आकर्षण है, यदि उस ध्वनिका उद्गम स्वयं भी आकर्षक हो, तब तो कहना ही क्या ? विष देकर तो सभी मार सकते हैं। अमृत पिलाकर जो मृतक बनादे उसीकी विशेषता है। अस्त्र शस्त्रोंसे तो सभी घायल कर सकते हैं, जो सुखद शब्द सुनाकर मूर्छित करदे वही सच्चा शूरवीर है। एक बार भक्तों में अपने अपने उपास्य देवों के विषयमें वाद विवाद हुआ। बात बढ़ गयी मार पीट तककी नौबत आयी। अभियोग राजा के समीप पहुँचा। राजाने कहा—"भाई! हम ऐसे तुम्हारे अभियोगका निर्णय न करेंगे। तुम अपने अपने इष्टों की मूर्ति बनाकर लाओ।" आज्ञा होते ही सब अपने इष्टोंकी आयुध और वाहन सहित मूर्तियाँ बनाकर लाये। कोई बल पर चढ़े थे, हाथमें त्रिशूल, खड्ग, चाप आदि लिये थे। कोई सिंहपर, भैंसेपर, गधेपर तथा कुक्कुटपर चढ़ी थीं उनके हाथमें लपलपाती करवालें ढालें थीं मुंडोंकी मालायें पहिने थीं। कोई चूहेपर सवार थे, हाथ में फरसा लिये थे। किसी के चार हाथ थे उनमें चक्र गदा आदि लिये हुये थे, कोई धनुषबाणको ही धारण किये थे। एक टेढ़ी टांगवाले देवता थे, जो तीन स्थानों से टेढ़े होकर एक पोले बाँस की आठ छिद्रों वाली छोटी बाँसुरीको बजा रहे थे। राजाने सब इष्टों को देखा और पूछा—"ये सब भाँति भाँतिके अस्त्र शस्त्रोंको क्यों लिये हुए हैं ?"

भक्तोंने कहा—"दुष्टोंका दमन करने के लिये हमारे इष्ट अस्त्र शस्त्रोंको सदा, धारण किये रहते हैं। दुष्टोंका दमन किये बिना शिष्टोंका रक्षण कैसे हो सकता है ?"

राजाने जब मुरलीधारीकी मनोहारिणी मूर्तिको देखा, तो उसने पूछा—"इनका अस्त्र आयुध क्या है ? .

भक्तोंने कहा—"महाराज ! इनका अस्त्र समझो आयुध

समझो जो भी कुछ है, यह मुरली ही है ? इसी की ध्वनि से बड़े बड़े सहृदयोंको आकर्षित कर लेते हैं, विह्वल और विकल बना देते हैं।"

राजाने कहा—"तो, हमें तो ये ही इष्ट अच्छे लगते हैं, जो मधुर मधुर मुरली बजाते रहते हैं। जिनसे भय नहीं, संकोच नहीं। सख्य रसवालोंके साथ सखा बन जाते हैं, वात्सल्य रस-वालों के लिये बेटा और मधुर रसवालों के लिये प्रेष्ठ।"

सारांश कहने का यही हुआ कि श्रीकृष्ण बिना अस्त्र आयुध-के मुरली द्वारा ही सबके हृदयको जरजर बना देते हैं। इनके त्रिभुवन मोहन रूपमें जितना आकर्षण है, उतना ही आकर्षण उनके वेणुनाद में है। इसीलिये गोपिकायें वंशी से सौतिया डाह करती थीं और उसके सौभाग्यकी सदा प्रशंसा किया करती थीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! प्राणियों को सुख देनेवाली शरद ऋतुमें गोप वेष बनाकर गौओं को साथ लिये हुए श्याम सुन्दरने वृन्दावन में प्रवेश किया। सायंकाल में वे लौटे, गोष्ठ के निकट आकर उन्होंने वंशी बजायी, मानों व्रजांगनाओं को अपने आनेकी शुभ सूचना दी। श्यामसुन्दर अभी व्रजसे दूर हैं, आँखें उनकी रूपसुधाके निमित्त लालायित बनी हुई थीं किन्तु वेणु-नाद की माधुरी से उनका शरीर विकसित-सा हो गया। वह वेणुनाद तो उन व्रजवल्लभ का है जो कोटि कन्दर्पों के दर्प को दलन करनेवाले हैं, इस भावके मनमें आते ही उनका प्रेमभाव उद्दीप्त हो उठा। उनमेंसे एककी इच्छा हुई कि 'इस वेणुवादनके विषय को लेकर कुछ चर्चा की जाय, यह सोचकर वह कहने को उद्यत हुई उसने कहा—"सखियो! देखो तो सही श्यामसु... ... बस, वह श्याम, इतना ही वाक्य कह पायी थी 'सुन्दर' शब्द को पूर्ण न कह सकी। चलचित्रोंके सदृश चितचोर के चारु चरित्र स्मरण आते ही उसका चित्त चञ्चल हो उठा। स्मर-

वेगके कारण उसकी वाणी रुद्ध हो गयी, कंठ भर आया, वह कुछ कहना चाहती थी, किन्तु वाणी ने साथ नहीं दिया स्वर गद्गद् होने से वह रुक गयी आगे कुछ भी कहने में समर्थ न हुई।

हृदय के भाव मुख पर स्पष्ट झलकने लगते हैं और ताड़नेवाले भुक्तभोगी उन्हें ताड़ जाते हैं, गोपीकी ऐसी प्रेमोद्रेककी दशा देखकर दूसरी सखीने उसे सुख पहुँचानेके लिये श्रीकृष्णके ऊपरी वेपका वर्णन किया। भाव समाधिमें-प्रेमकी प्रबलतामें—प्रियतम के गुण श्रवण में एक प्रकारका मधुर मधुर सुख होता है। प्रेमकी हिलोरें जिसके हृदयमें जितनीही तीव्रताके साथ उठेंगी, उसे उतनी ही अधिक मूर्छा होगी। जो सखी अभी कहने को उद्यत हुई थी, वे इन सब सखियों में सर्वश्रेष्ठ थीं। इनका अच्युत के प्रति अनुराग अनुपम था। अन्य सब सखियाँ तो उनकी किंकरी थीं। अपनी स्वामिनीको प्रेममें विकल देखकर सब बारी बारी से उन्हें श्रीकृष्ण की रूपमाधुरीके सहित वेणुमाधुरी के रसका पान कराने लगीं। यह वेणुगीत रासलीलाकी पृष्ठभूमिका है। रासोत्सवके निमित्त जैसे प्रथम रङ्गभूमि की रचना की जाती है, उसी प्रकार वेणु बजाकर बनवारी को तो रासके लिये चेतावनी देनी है, कि तुम सब तैयार हो जाओ, एक दिन ऐसी ही वेणु बजेगी उस संकेतको पाते ही तुम अपने अपने घरों से चल पड़ना। इधर ये गोपिकायें वेणुगीत गाकर अपनेको तैयार कर रही हैं। अभिनय के पूर्व अभ्यास कर रही हैं, क्योंकि सहसा उस परमानन्द दिव्य सुख को सहन करनेकी सामर्थ्य किस सुन्दरीमें हो सकती है। प्रेम की मधुरिमा क्रमशः उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। कहाँ तक बढ़ती है, इसकी कोई सीमा नहीं, मर्यादा नहीं, पार नहीं, बढ़ती ही जाती है बढ़ती ही जाती है।

हाँ, तो उन प्रेम भावमें भावित-भाव समाधि में स्थित-प्रधाना

जीको सुनाती हुई एक अनुरागवती सखी कहने लगी—'सखियो! इस सुमधुर मोहक स्वर को सुनकर मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, कि अपनी पोली छिद्रोंवाली चिकनी मुरली में मदनमोहन मोहन ने अपने अधरों का अद्भुत अमृत ऊपर तक

भरकर, फिर उसमें फूँक मारकर, उस रस को उदारता पूर्वक वायुमण्डलमें बिखरते हुए, गौओं के पीछे पीछे व्रजमें प्रवेश किया होगा।

यह सुनकर सबके रोमाञ्च होगये। सभी श्यामकथा सुनने को अधीर हो उठीं। एकने पूछा—"श्यामसुन्दरने मुरली कैसे बजायी होगी सखी?"

वह बोली—"सखि ! श्यामकी एकसे एक अद्भुत छटायें हैं। वे तो नित नये रङ्ग बदलते हैं, किन्तु हमें तो उनका गोपवेष ही सर्वश्रेष्ठ लगता है। माथे पर मोरमुकुट हो, कानों में कर्णिकार के कमनीय कुसुम खुरसे हों, प्रभायुक्त पीताम्बर पहिने हों, सुहृद सखा संगमें उनके सुयशका गान करते हों। गौएँ उनके भार से आगे आगे चल रहीं हों वे वेणु बजाते मुसकराते, सबको रिझाते, प्रेमरस बरसाते ब्रजमें प्रवेश कर रहे हों, यही शोभा उनकी ध्यान करने योग्य है। मैं समझ रही हूँ, उसी नटवर वेष से विहारी वन से लौटकर ब्रज में प्रवेश करते होंगे।" इतना कहते कहते वह भी मूर्छित हो गयी।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! हृदय में अपने प्रियतम की तीव्र स्मृति हो, तो ध्यान में प्यारे के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। प्रतीत ऐसा होता है, ध्यानमें हम उनकी मनोमयी मूर्तिका आलिङ्गन कर रहे हैं। वह मानसिक मिलन कितना सुखद होता है, इसकी कल्पना वे कभी नहीं कर सकते, जिन्होंने कभी एकान्त में एकाग्र चित्त होकर अपने इष्ट का ध्यान न किया हो। वे गोपिकायें तो नित्य सिद्धा थीं, इन्हें कुछ सिखाना तो था ही नहीं वे तो सब कुछ सीखी ही हुई थीं। अतः वे आपसमें श्रीकृष्णकी ही रूपमाधुरी वेणुमाधुरी की चर्चा करती हुईं मन ही मन मोहन की मनोहर मूर्ति का आलिङ्गन करने लगीं। मुनियो ! गोपियोंने जो वेणु को उपलक्ष्य करके अपने मनोभावों को व्यक्त किया है, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा। यह विषय इतना गंभीर और सरस है, कि इसमें जहाँ प्राकृत भोग बुद्धि हुई तहाँ सब गुड़ गोबर हो जायगा। यह साधारण स्त्री पुरुषोंकी-सी बातें नहीं—प्राकृत भाव नहीं। यह तो दिव्याति दिव्य मधुराति मधुर अलौकिक अप्राकृत रस है, इसमें विषयवासना की गन्ध भी नहीं। विशुद्ध प्रेमकी चर्चा है। सरस कृष्ण कथा है।

छप्पय

अपर कहें—जगमाँहिं सफल जीवन ही उनके।
कृष्ण मुखामृत पान करें नित लोचन जिनके॥
आवत धेनु चराइ सखनि सँग वेनु बजावत।
सुखमा श्याम सिहाइ लुटावत सुख सरसावत।
मुरली अधरनिपै धरें, इत उत निरखत दृग चपल।
चोट करत कछु गाइकें, वेनु माधुरी अति प्रबल॥

रूपमाधुरी और वेणुमाधुरी

(६३२)

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः
सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टम्,
यैर्वा निपीतमनुरक्त कटाक्षमोक्षम् ॥*
(श्रीभा० १० स्क० २१ अ० ७ श्लो०)

छप्पय

एक कहे बलराम श्याम दोऊ ही नटवर ।
रङ्ग भूमि अति सुघर सरस वृन्दावन सुखकर ॥
नित नव अभिनय करें ग्वालबालनि सँग आवें ।
किसलय नूतन सुमन धातुतें वेष बनावें ॥
स्वर सब मुरलीमहँ भरहिं, नाचें गावें हँसि परें ।
नील पीत पट धारिकें, धेनुनि लै कौतुक करें ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कह रहे हैं—"राजन्! एक गोपी श्रीकृष्णकी वेणुमाधुरीका वर्णन करती हुई कह रही है—"सखियो! हम उन नेत्रवाले प्राणियोंके नेत्रोंकी सार्थकता तो इसके अतिरिक्त और कुछ समझती ही नहीं। जिन्होंने ऐसे राम और श्यामके प्रणय कटाक्षयुक्त मुखामृतका नेत्रों द्वारा सेवन और पान किया है, जिन दोनों व्रजराज कुमारोंका मुख बजती हुई वंशीसे सुशोभित है। जो अपने साथी बालकों के सहित गौओंके पीछे प्रवेश कर रहे हैं। उन्हें देखनेवाले ही धन्य हैं।"

लगती है। इस प्रकार यह रसपान प्रसङ्ग चिरकाल तक चलता रहता है। यद्यपि इस रसमें लीला, रूप और वेणु तीनों का ही संमिश्रण है, किन्तु वेणु माधुरीका इस रसमें आधिक्य है। इस समय सबको यही रस विशेष रुचिकर है।

एक सखी रस को सबके श्रोत्ररूप पानपात्रोंमें उड़ेलती हुई कहने लगी—"सखियो ! संसार में एक से वस्तु एक सुन्दर है। ये आँखें सुन्दर वस्तुको देखकर खिल जाती हैं, चमकने लगती हैं, किन्तु हमारी आँखोंने तो एक सर्वश्रेष्ठ दृश्य को देखा है, उस दृश्यको देखकर ये निहाल हो गई हैं, उस दृश्य को देखकर इन्होंने एक सिद्धान्त स्थिर कर लिया है, कि जिन आँखोंने इस दृश्यको देखा है, वे ही आँखें कहाने योग्य हैं, जो उस दृश्यसे वञ्चित हैं, वे तो नाममात्र की आखें हैं, जैसे मृतक के देह में भी तो फटी हुई आँखें होती हैं, मोरके पंखोंमें भी तो आँखों की आकृति बनी हैं, चित्रोंमें भी तो बड़ी बड़ी आँखें होती हैं, किन्तु ये सब आँखें कहलाने पर भी यथार्थ आखें नहीं।"

उन सखियोंमें से एकने पूछा—"आली ! वह कौन सा दृश्य तुम्हारी आँखों ने देखा है, जिसे तुम भुलाही नहीं सकती, जिसके देखने से ही नेत्रों की सफलता है, हम भी तो उसे सुनें। हम भी तो अपने नेत्रोंको सफल करें।"

वही सखी बोली—"सखियो ! वह दृश्य तो तुमने देखा है, उसी दृश्य को देखकर तो तुम बेघरबारकी बनी मारी मारी इधर उधर भटक रही हो, रो रही हो, छटपटा रही हो। सांयकाल के समय श्यामसुन्दर गौओं को चराकर घर आते हों। बलराम-जी तथा अन्य सखा उनके साथ हों, आगे आगे गौओं का झुण्ड चल रहा हो। उनके पीछे मंद मंद मुसकाते मुरली बजाते बलराम और श्याम चल रहे हों, उनके पीछे पीछे उनकी लोक विश्रुत कित्तिवयलीका वखान करते हुए ग्वालबाल चल रहे हों।

उस प्रणय कटाक्षयुक्त मुरली से सुशोभित कमल और इन्द्र को भी तिरस्कृत करनेवाले मुखामृतका जिन्होंने अपलक नयनों से पेट भरके पान किया है, नेत्र तो उन्हींके सार्थक हैं। इस दृश्यके देखनेवाले नेत्र ही नेत्र हैं। क्यों है न यही बात ? श्याम सुन्दर वनमें केसे बनठन के आते हैं।" इतना कहते कहते श्यामसुन्दर रूपासवके अधिक पान करनेसे वह सखी उन्मत्ता हो गयी उसका कंठ अवरुद्ध हो गया, वह आगे कुछ न कह सकी।

तब एक दूसरी सखी बोली—" राम और श्यामकी शोभाका तो कहना ही क्या है। हमें तो ऐसा लगता है, ये दोनों गोप नहीं दिव्य नट हैं, क्रीड़ा करने के ही लिये ये इस सरस सुखद वृन्दावन की भूमिपर अवतीर्ण हुए हैं। यह सम्पूर्ण ब्रजमंडल ही मानों रङ्गभूमि है—नाट्यस्थली है। इस पर नित नव अभिनय करनेवाले ये प्रधान नट हैं, ये गोप ग्वाल इनके सहायक अन्य दूसरे दूसरे अभिनय करनेवाले पात्र हैं। सायंकालके समय कैसे सज धजकर आते हैं। ब्रजमें पधारने का उनका वेष कैसा मनोज्ञ तथा सुखकर है। दोनों के माथेपर मोर पंखोंके मुकुट शोभायमान हैं, कण्ठ में सुन्दर सुगंधित पुष्पों की मालाएँ हैं। एक तो ऐसी माला है। जिसमें तुलसी, कुंद, मंदार, पारिजात कमल तथा अन्य देववृक्षों के पुष्पों से बीच बीच में आम्रके नूतन नूतन पल्लव लगाये गये हैं। जल कमल और स्थल कमलोंके द्वारा वे मालाएँ अत्यंत ही भली मालूम पड़ती हैं। उनके मधुके लोभसे भ्रमर उनपर गुंजार कर रहे हैं मानों मालाएँ गीत गा रही हों। बलदेवजी के वस्त्र नीले रेशमी हैं और श्यामसुन्दर पीताम्बर को धारण किये हुये हैं। दोनों ही गाते हुए बाँसुरी बजाते हुए गोष्ठ में मंद मंद गति से आते हैं, जैसे सजेबजे नट रङ्गमञ्च पर आकर गाते हैं, अभिनय करते हैं। इनका गोपों का अभिनय दर्शनीय है।

इसपर शौनकजीने कहा—"सूतजी ! सखी तो श्यामकी शोभा का वर्णन कर रही थी, उसने बलदेवजी की शोभा उसमे और क्यों मिला दी ?"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज ! इस प्रेमकी ऐसी ही टेढ़ी चाल है। इसमें बात बातपर अपने भावको छिपाया जाता है, यह सत्य है, गोपीका उद्देश्य श्रीकृष्णकी ही रूपमाधुरी तथा वेणुमाधुरी के वर्णन करने में था, किन्तु भावगोपन के लिये उसने दोनोंका ही नाम ले दिया। प्रेम की भाषा दूसरी है। इसमें कहा कुछ जाता है, उसका अभिप्राय दूसरा ही होता है। वे गोपिकाएँ श्रीकृष्णकी वेणुकी प्रशंसा कर रही थीं। वह फिर कहने लगी—"सखियो ! हम तो संसारमें दो को ही परम भाग्य शालिनी समझती हैं, एक तो ब्रजकी रेणुको, दूसरे इस सौतिवेणु को दोनों ही ये श्रीकृष्ण के अंगों में लिपट जाती हैं। श्यामसुन्दर जब वनको जाते है, लौटकर आते हैं, तो ब्रजकी रेणु उड़-उड़कर उनके श्रीअंगमें उनके काले काले कुंचित केशों में लग जाती है, उनमें सट जाती हैं, किन्तु वेणु तो उनके अधरामृत का हम सब के सामने—सबके देखते-देखते निर्लज्ज होकर पान करती रहती हैं। इसके भाग्यकी क्या सराहनाकी जाय। हाय वेणुके भाग्य की क्या प्रशंसाकी जाय। एक बार जिस अधरामृत का पान करके मन उन्मत्त-सा हो जाता है, उसका वह सतत पान करते करते अघाती नहीं, मतवाली नहीं होती। कैसी यह ढीठ है।"

सूतजी कहते है—"मुनियो ! श्रीकृष्ण के अधरामृतकी स्मृति आते ही वह सखी मूर्छित होकर गिर पड़ी और अचेत हो गयी। तब दूसरी सखी कहने के लिये उद्यत हुई।"

छप्पय

वेनु रेनु अति धन्य श्याम—अँगमहँ जो चिपटें।
वेनु अधरपै रहे रेनु सब अङ्गनि लिपटें॥
वेनु बाँसकी सुता रेनु धरनीकी दुहिता।
पुत्रिनि भाग सराहि मातु दोउनिकी मुदिता॥
यद्यपि व्रजरजके निमित, लालायित सुरगन रहहिं।
तदपि वेनुकूँ ही परम, भाग्यवती हम सब कहहिं॥

तपस्विनी बाँसुरी

(६३३)

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणु-
दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ॥
भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो
हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० २१ अ० ६ श्लो०

छप्पय

जा मुरलीने करयो कौन तप श्याम रिझाये।
मुरलीधर जिहि हेतु जगत घनश्याम कहाये॥
अधरनि शय्यामाँहि वेनुकूँ विहँसि सुआवें।
हौले हौले कमल करनितें चरन दबावें॥
करैं वायु मुखकमलतैं, एक पैर ठाढ़े रहैं।
प्राननि प्यारी मुरलिका, मैयातैं नित हरि कहैं॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! एक दूसरी गोपी वेणुके सौभाग्यको स्मरण करके गोपियोंसे कह रही है—"अरी, गोपियो! भला बताओ तो सही इस बाँसुरीने ऐसा कौन-सा पुण्य कर्म किया है, जिसके फलस्वरूप यह गोपिकाओंके पीने योग्य दामोदरको अधरसुधाका प्रथम स्वयं पान करके तब उच्छिष्ट औरोंके लिये छोड़ देती है। जिस प्रकार सत्पुत्रसे वंशवाले आनन्दित होते हैं, उसी प्रकार इसे उत्तम करनेवाले इसके वंशवाले बाँस तथा धातृ स्थानीय नदियाँ खिलकर और प्रेमाश्रु बहाकर प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं।"

किसी संतके चरणों में चरणपादुका देखकर कोई भक्त बहुत
रोये बहुत रोये। किसी ने उनके रोने का कारण पूछा, तो उन्होंने
बताया, मैं इन चरणपादुकाओंके भाग्यको निरखकर रो रहा हूँ।
हाय! हम लकड़ी भी होते,तो संतके किसी काममें तो आते। इस
शरीर से कुछ भी संतसेवा न हो सकी। जीवन खाने पीने और
सोनेमें बीता, मरकर यह शरीर सड़ जायगा, गल जायगा अथवा
कीड़ा पड़ जायँगे। यह लकड़ी ही धन्य है जो सूखकर भी संत
चरणोंसे चिपटी रहती है! सन्तों के किसी काममें आ रही है।"
इस शरीर की सार्थकता सेवामें ही है। जो वस्तु भगवान के
तथा भक्तोंके किसी भी उपयोगमें आ जाय उसी का, जन्म सफल
है। भगवान् के साथ जिन वस्तुओंका सम्बन्ध है, वे सब दिव्य
हैं, चिन्मय हैं। श्रीकृष्ण का पीतपट, उनका लकुट, मोरपङ्ख
तथा मुरली ये सब जड़ नहीं चिन्मय है, पूर्व जन्म में जिन्होंने
अनन्त तप किये होंगे. उन्हें ही भगवान के श्री अंग का नित्य
संसर्ग प्राप्त होता है। भगवान् के सानिध्य में उनके नित्य पार्षद
ही रह सकते है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्रीकृष्णानुरागमें आर्द्र हुईं
गोपिकाएँ परस्पर में वेणुनाद श्रवण करके वेणुमाधुरी के ही
सम्बन्ध में चर्चा कर रही है।" एक सखीने कहा—"सखियो!
देखो हम श्री कृष्णके अधरामृत पान के लिये कितनी लालायित
बनी रहती हैं। एक बार भी हमारे ओष्ठोंमें वह अमर कर
देनेवाला रस लग जाय, तो हम कृतार्थ हो जायँ। हम उस
दिव्यातिदिव्य रस के लिये निरन्तर उत्कंठित ही रहती हैं और
यह बाँसकी मुरलिका निर्भय होकर उसका पान करती है। प्रायः
अधरामृतका पान एकान्तमें जनशून्य स्थानमें किया जाता है,
किन्तु यह निर्लज्जा तो देशकाल किसी का ध्यान नहीं रखती।
सब समय, सबके सम्मुख शील संकोच छोड़कर निर्भय होकर

श्रीहरि के अधरामृत का पान करती है। इसके माता पिता को धन्य है, इसका कुल धन्य है, जो इसने श्यामसुन्दर को इस प्रकार वश में कर लिया है। श्यामसुन्दर तो इसके हाथों मानो बिक-से गये हैं। पलभर भी इसे अपने शरीर से पृथक् नहीं करते। रात्रिमें भी साथ ही लेकर सोते हैं, वन में जाते हैं तो बगल में दबाये रहते हैं। जब यह चाहती है अधरों की शैयापर सो जाती है। श्याम इसका इतना संकोच करते हैं, कि जब तक यह उनके अधरों को शैया बनाकर लम्बी होकर सोती है तब तक ये एक पैरसे खड़े रहते हैं। कोमल कोमल उँगलियोंसे शनैः शनैः इसके पैरों को पलोटते रहते हैं। अपने मुखकी वायु से इसको ब्यार करते रहते हैं। ऐसा सौभाग्य तो किसी कुलवती शीलवती नारी को भी प्राप्त नहीं हो सकता,'इसीको अपनानेसे-इसके अधीन होने से—नन्दनन्दन के "मुरलीधर, वंशीधर, मुरलीमनोहर, आदि नाम पड़ गये हैं।"

एक सखीने पूछा—"आली! यह मुरली किस वंश में उत्पन्न हुई है?"

वही सखी बोली—"बहिन! वंश तो इस कुलटाका कोई बहुत बड़ा है नहीं। बाँसोंका लगाना अशुभ समझाजाता है। कोई भी बुद्धिमान् पुरुष अपने यहाँ जान बूझकर बाँस न लगावेगा। उसी बाँसके वंश में तो यह वंशी पैदा हुई है। पृथिवी से उत्पन्न होने के कारण पृथिवी ही इसकी माता है, बादलों के जलबिन्दु से बढ़ने के कारण घन ही इसके पिता हैं। नदियाँ ही नदियों तथा सरोवरोंके जलोंका पान करके बढ़ने के कारण इसकी धातृ स्थानीय हैं। पहिले इसकीमाताको ही करतूत सुन लो। नित्य ही चराचर जीवों को उत्पन्न करती हैं, फिर यह कुमारी की कुमारी ही बनी रहती है। एक बार इसे असुर पातालमें भगा ले गये थे। तो जैसे तैसे सूअरका वेप बनाकर

भगवान् इसे फिर उनके घरोंमें से निकाल लाये। इसभूमिके एक नहीं अनेकों पति हैं। सभी इसे मेरी मेरी कह कर मर जाते हैं, किन्तु यह किसीकी होती नहीं। बहुभर्तृका कभी किसी एककी हो सकती है? यह कभी एकसे प्रेम न करेगी, नित्य नूतन पति चाहेगी, एकको छोड़ते ही दूसरे की बन जायेगी, फिर उसे भी छोड़ देगी। यह तो इस मुरलिका की माता की दशा है। इसके पिता मेघोंकी भी बात सुन लो ये बड़े निष्ठुर होते हैं। शरणागतका ध्यान नहीं करते। चातक कितनी आशा लगाये 'पीउ पीउ' पुकारता रहता है। उसकी अनन्यगति ये घन ही हैं, किन्तु ये उसपर पत्थर बरसाते हैं, प्यासके कारण वह तड़प तड़पकर मर जाता है, किन्तु ये निष्ठुर उसके मुखमें स्वाँतिकी बूँद डालते नहीं। इसके वंशको देखो। इसके वंशवाले परस्पर में ही लड़ लड़कर जल मरते हैं। स्वयं ही जलते हों सो बात नहीं। सम्पूर्ण बन को जला देते हैं। जीव जन्तुओंको जला देते हैं। घरके बन्धनों को ये बाँस ही बाँधते हैं। मृतकको ये ही स्मशान पहुँचानेवाले हैं। यह इसके वंशवालों की करतूतें हैं। नदियों को देखो ये सदा टेढ़ी ही बहती हैं। किसी पर दया नहीं दिखातीं, खेतों को डुबा देती हैं, जो इनके भीतर जाता है उसे डुबा देती हैं। यह तो इस मुरली के वंशका परिचय है। इसलिये यह कोई उच्च कुलोत्पन्ना कुलवती कामनी हो, सो बात तो है नहीं, किन्तु इसे श्यामसुन्दर ने अपना लिया है, इसलिये इसके सब दोष ढक गये हैं। बड़े लोग जिसे अपना लेते हैं, उसके गोत्र को कोई पूछता नहीं।"

उसगोपीने कहा—"तो बीर! ये कृष्ण ही कौनसे कुलीन हैं। कोई इन्हें नन्दनन्दन कहता है कोई वसुदेवनन्दन। कोई देवकी-नन्दन कहता है कोई यशोदानन्दन। कोई गोपाल, आभीर कहता है कोई यदुनन्द, वार्ष्णेय। अहीरकी जाति कोई बड़ी जाति थोड़

ही है। द्विजातियों के लिये दूध, दही, घृत आदि रसों को बेचना निषेध है यही हमारी आजीविका है, अतः जोड़ी तो एक सी ही बनी है। "जैसी अहो तैसी महो। उनके चूल्ही न इनके तत्रो" परन्तु फिर भी इसके द्वारा दुर्लभ पदार्थ अधरामृतका पान करना किसी साधारण पुण्यका फल नहीं है। देखो, यदि सच पूछा जाय, तो श्यामके अधरामृतपर सम्पूर्ण अधिकार हम गोपियोंका ही है। हम उसे यथेष्ट पेट भरके पान करलें और फिर कुछ अवशिष्ट रह जाय, तो किसी दूसरी को दे सकती हैं, यह हमारी कृपा पर निर्भर है। दयालु लोग अपना उच्छिष्ट अपने आश्रितोंको दे ही देते हैं। यहाँ यह बात विपरीत हो रही है। यह हमारी सौत मुरली सबसे पहिले स्वयं पेटभरके अधरामृतको पी लेती है, फिर कुछ बचाकुचा उच्छिष्ट रह जाता है उसे हमारे लिये छोड़कर अधरोंसे हट जाती है जो धन की यथार्थ स्वामिनि है उसे जूठा कूठा मिले और जो दासी है वह पहिले यथेष्ट उसका उपभोग कर ले। श्यामसुन्दर के यहाँ यह उलटी ही गंगा बह रही है। देखने में सुन्दर हो हरी भरी हो सो भी बात नहीं सूखी साखी है। यह कोई चरित्रवान निश्छिद्र हो सो भी नहीं एक नहीं आठ आठ इसमें छिद्र हैं, इतने सब दोष होने पर भी जो इसे इतनी बड़ी पदवी प्राप्त हो गयी है, इतनी अमूल्य निधिकी उपभोग करने वाली बन गयी है, इसमें अवश्य ही कोई हेतु होगा। बिना पूर्व जन्मकी तपस्या के इतना सौभाग्य प्राप्त हो ही नहीं सकता।"

इसपर वही सखी बोली—"हाँ, बहिन ! तुम्हारा कहना सत्य ही है। तपस्याका ही तो यह फल है, कि दुसरों के धनकी स्वतंत्र स्वामिनी बन गयी है। तपस्या तो इस वंश ने ऐसी की है जैसी कोई कर नहीं सकता। बाँसोंकी जड़ कठोर होती है, उस कठोर जड़को फोड़कर यह पोली हो गयी। अर्थात् इसने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद-मत्सर दंभ अहंकार तथा अन्य भी समस्त दोषों

को अपने भीतर से निकाल दिया. यह पोली होकर एकान्त वनमें वास करती हुई चिरकाल तक घर में ही रह कर साधना करती रही। पहिले इसकी साधना कच्ची थी, वन प्रदेशमें एकान्तमें साधना करते करते यह पकगयी। अब इसकी परीक्षा आरंभ हुई किसी कठिन करोंने तीक्ष्ण शस्त्रसे इसे काटा। अपने वंश से पृथक् किया। तिसपर भी यह न रोयी न चिल्लायी। कटकर भूमि में गिर गयी। उन्हीं निर्दय हाथोंने इसके शरीर पर जो पत्रोंके वस्त्र थे उन्हें उतारकर फेंक दिया। इसे सर्वथा नंगी कर दिया। उस नग्नावस्थामें भी इससे कोई आपत्ति नहीं की। काटनेवालेने आँखपर रखकर इसे देखा। कितनी भी तपस्या करें कुछ न कुछ टेढ़ापन तो रह ही जाता है, अतः इसमें जो भी कुछ टेढ़ापन था, उसे अग्निमें तपाकर—अग्निपरीक्षा करके—निकाल दिया। ऊपर की गाँठोंको छील दिया। बीचसे काट कर धूप में सुखाया। इसने मुखसे 'सी' भी नहीं निकाली। नंग धड़ंगी कटी हुई धूपमें चिरकाल तक पड़ी रही। सूख गयी। इतने पर भी इसके काटनेवाले-को दया नहीं आयी। इसके अंग प्रत्यंगको बरमासे छेदा। एक दो नहीं आठ छेद इसके शरीर मे किये। इसने अपने सूखे अंगको छिदवा दिया। अब यह परीक्षा में उत्तीर्ण हुई समझी गयी। प्यारे ने परीक्षा के निमित्त इसे अधरपर रखकर इसका मान बढ़ाते हुए देखा—"इतने कष्ट सहकर यह उदास तो नहीं हुई, कोई दुःखकी बात तो मुख से न निकालेगी। इसीलिये प्राणवल्लभने इसके कटे हुए अंग में फूँक मारी। प्यारेकी फूँक लगते ही यह हँस पड़ी गाने लगी मधुर स्वर निकलने लगी।" प्यारे इसकी इस तपस्या से रीझ गये, अपना तन मन सर्वस्व इसको अर्पण कर दिया। इसके किंकर बन गये। बिना कष्ट सहे इतना अपनापन नहीं हो सकता। कष्ट सहिष्णुता पत्थर के हृदय को भी पिघला देती है फिर श्यामसुन्दर तो सहृदय हैं। इस मुरली को वह

सौभाग्य प्रदान किया, जो आजतक किसीको भी प्राप्त नहीं हुआ। लक्ष्मी जी भी उस सौभाग्य के लिये तरसती रहती हैं। इसीलिये इसके कुल के सभी लोग परम प्रमुदित हैं। अपने वंशमें किसीको सौभाग्यशाली देखकर आर्यपुरुष गर्व करते हैं, प्रसन्न होते हैं, कि हमारे कुल में ऐसा पुरुष उत्पन्न हुआ। इसने हमारे वंश को विख्यात कर दिया।

जिस वंशमें यह बाँसुरी उत्पन्न हुई है उन बाँसों की जड़ रूप मुखों के द्वारा उन्होंने नदियों के जल रूप दुग्धका पान किया है। धाई जिसे अपना दुग्ध पिलाकर पाल पोसकर बड़ा करती है, यदि वह राजरानी पटरानी बन जाय, तो धाईके रोम रोम खिल जाते हैं। इसी प्रकार ये नदियाँ अपनी पालिता पुत्रीको गोपालकी अधरामृत अधिकारिणी प्राणप्रिया समझकर अपने खिले हुए कमलों के कारण मानों रोमाञ्चयुक्त दिखायी दे रही हैं जिस बाँस के वंशमें इसने जन्म लिया है, वे बाँसके वृक्ष में मदकी धारा बहा रहे हैं, मानों बाँसुरीको सौभाग्यशालिनी देखकर प्रेमाश्रु विमोचन कर रहे हों। हरी भरी दूब रूप रोमों द्वारा पृथिवी अपनी पुत्रीके प्रभावपर प्रसन्न होकर मानों रोमाञ्चित हो रही हो। मेघ गरज गरजकर छोटी छोटी फुलझरियाँ बरसाकर बेटी के सौभाग्यपर सिहा रहे हों। एक विष्णु प्रियाके पीछे सभी को सुख प्राप्त होता है, सभी प्रमुदित होते हैं।"

यह सुनकर शौनकजी बोले—"सूतजी ! आप जो यह गोपियोंके अनुपम अनुराग का वर्णन कर रहे हैं, यह कानोंको तो बड़ा सुखद प्रतीत होता है, किन्तु इसका अर्थ क्या है, यह हमारी समझमें नहीं आता।"

यह सुनकर सूतजी खिल खिलाकर हँस पड़े और हँसते हँसते बोले—"भगवन ! प्रेमकी बातों का कोई अर्थ थोड़े ही हुआ करता है, वे बातें निरर्थक होती हैं, प्रेमकी बातें प्रेमकी वृद्धि के

ही लिये की जाती हैं। ये इतने नर नारी रात्रि रात्रि भर बातें करते रहते हैं, एक दो दिन नहीं वर्ष दो वर्ष नहीं जीवनभर बातें करते हैं। इनसे पूछो इतनी देर तुमने बातें कीं इनका क्या अर्थ है।

श्रीकृष्ण चरित्र का प्राण रासलीला। रासलीला प्रेम की पराकाष्ठाकी लीला है,आगे मुझे उसीका वर्णन करना है, श्रीकृष्ण की बाललीलाएँ तो अब समाप्त प्रायः हो चुकीं, अब तो उनकी रसमयी प्रेमलीलाओं का सूत्रपात है वेणुगीत रासलीलाओं की भूमिका है। मधुररस के उपासक इन लीलाओं को ही सर्वोत्कृष्ट मानते हैं। असुरों के उद्धार की लीलाएँ, बाललीलाएँ तथा और अन्य स्फुटलीलाएँ हैं, तो उनके लिये एक प्रसङ्गानुसार उपलीलाएँ हैं, इन लीलाओंसे मधुर लीलाओंका पोषण होता है। महाराज! प्राणिमात्रकी इच्छा प्रेम प्राप्तिकी है, जीव प्रेमके बिना भटक रहा है, प्रेमके बिना ही प्राणी विकल हो रहा है। यह जीवकिसीसेप्रेम करना चाहता है, किन्तु जिनका प्रेम स्थायी नहीं, आज हममें कोई गुण देखा, प्रेम करने लगे। कल वह गुण न रहा द्वेष करने लगे, यह प्रेम नहीं गुणोंके प्रति आकर्षण है। प्रेम ऐसा हो कि वह कभी मिटे नहीं घटे नहीं दिन दूना बढ़ता जाय। प्रति क्षण वर्धमान ही प्रेमका स्वरूप है। वह संसारी पुरुष स्त्रियों में असंभव है। मधुररस के उपासकों का कहना है। वह प्रेम एक मात्र नंदनंदनमें ही हो सकता है और उसे गोपिकाएँ ही कर सकती हैं। गोपी किसी शरीर का नाम नहीं, उनमें स्त्री, पुरुष नपुंसकका भेद नहीं। गोपी एक भाव है, गोपी स्त्रीलिङ्ग शब्द है, अतः स्त्रीवाची ही प्रयोग होता है। नंदनन्दन में जो प्रेम होता है, वह किसी कारणसे नहीं होता, वह तो स्वाभाविक होता है और दिन दिन बढ़ता ही जाता है। प्रेम कोई विचित्र वस्तु हो सो बात नहीं। हम नित्य प्रति भाई, बहिन, माता, पिता, पत्नी,

मित्र तथा बन्धु बान्धवोंमें जो प्रेम करते हैं वही प्रेम है, अन्तर इतना है नाशवान् वस्तुके साथ किया हुआ प्रेम मोह कहलाता है और वही प्रेम अविनाशी श्रीकृष्णमें होनेसे वह 'प्रेम' के नाम से पुकारा जाता है। प्राकृत स्त्री पुरुषोंमें किया हुआ प्रेम काम होता है, उसी प्रेमको गोपी श्रीकृष्णमें करें तो उसकी प्रेम संज्ञा हो जाती है। गोपियोंका काम ही प्रेम है। अतः मधुररसवाले, गृहस्थीको प्रेमकी चटसाल समझते हैं। जैसे चटसालमें पट्टीपर बुद्दिकाकी खड़ियासे अक्षर लिखने का अभ्यास करते हैं। जब पट्टीपर लिखनेका अभ्यास हो जाता है, बारबार लिखकर मिटाते मिटाते हाथ सध जाता है, तो उन्हीं अक्षरोंको कागदपर लिखते हैं, स्थायी भाव हो जाते है। गृहस्थी गृहस्थमें रहकर प्रेम करते हैं, उसे ही श्रीकृष्णमें मोड़ देते हैं। इस रास और गोपी प्रेममें शब्द और भाव तो वे ही आते हैं, जो प्राकृत स्त्री पुरुषोंके काम भावमें व्यवहृत होते हैं, किन्तु यह श्रीकृष्णके सम्बन्धका भाव अप्राकृत है। जीवोंकी विषयोंमें स्वाभाविक रुचि है, अतः भगवान् व्यासने इस प्रेम प्रसंगको इस प्रकार वर्णन किया है, कि सबका मन इस ओर खिच जाय। जैसे बच्चेको कड़वी औषधि देनी होती है तो उसके ऊपर चीनी लपेटकर देते है। चीनी खिलाना अभिप्राय नहीं है। अभिप्राय तो कड़वी औषधि खिलानेमें ही है, किन्तु कड़वी वस्तुमें स्वाभाविक अरुचि होती है। मीठी वस्तुमें स्वाभाविक रुचि होती है। इसीलिये ये कथाएँ प्राकृत स्त्री पुरुषोंके प्रेमके सदृश ऊपरसे दिखायी पड़ती हैं, किन्तु इनके भीतर गूढ़ रहस्य भरा है, जिससे जीव इस मायिक जगत्से ऊपर उठकर चिन्मय जगत्में प्रवेश करता है। जिनके हृदयमें घट, पट, अहङ्कार, प्रकृति, पंचभूत, पंचीकरण ये ही सूखी बातें भर रही हैं उन शुष्क हृदयवालों को ये सब बातें कुछ अटपटी-सी लगती हैं। क्योंकि ये सब बातें नः सरसतामें

सनी हुई हैं। अच्छा तो आप मुझे स्पष्ट बता दीजिये। आपकी आज्ञा हो तो गोपियोंके इस निरर्थक प्रलापको और आगे बढ़ाऊँ नहीं तो फिर कोई कथा प्रसङ्ग कहूँ ?"

इसपर शौनकजी शीघ्रताके साथ बोल उठे—"नहीं सूतजी! यह आपने कैसी बात कह दी। यद्यपि हम गृहस्थी नहीं हुए हैं, फिर भी हमारा हृदय नीरस नहीं है। हमारे लिये यह नयी कथा भी नहीं है। भगवान् नारदजीके मुखसे हम रागानुगा भक्तिकी विधिवत् शिक्षा प्राप्तकर चुके हैं। श्रीकृष्णकी रहस्यमयी लीलाओं को हम अनेकों बार सुन चुके हैं।"

यह सुनकर कानोंपर हाथ रखते हुए सूतजी बोले—"भगवन्! भगवन्! मेरा यह अभिप्राय नहीं है, कि आप शुष्क हृदयके विमुक्तमानी ज्ञानी हैं। यदि मैं आपको ऐसा समझता तो इस रहस्यमय प्रसङ्गको छेड़ता ही क्यों। यह कोई बात नहीं है, कि रागानुगा भक्तिका अधिकारी गृहस्थ ही हो। मेरा कहनेका अभिप्राय इतना ही था, कि गृहस्थमें मनुष्य सब जान लेता है कि भाईसे कैसे प्रेम किया जाता है, पितासे कैसे प्रेम किया जाता है, पत्नीसे कैसे प्रेम किया जाता है। पत्नी पतिसे कैसे प्रेम करती है। इस मार्गमें तो पत्नी बनना पड़ता है न। कामी तो इस मार्ग की ओर फटक नहीं सकते। जबतक हृदयमें कामभाव है, तब तक श्रीकृष्णका प्रेम हो ही नहीं सकता। जो काम भावसे ऊँचे उठ गये हैं, वे ही इस मार्गके सच्चे अधिकारी हैं। आप ही तो इन लीलाओंके श्रवणके वास्तविक अधिकारी हैं, मेरे गुरुदेव भगवान शुक बाल-ब्रह्मचारी थे, वे ही इस रसशास्त्रके आचार्य हैं। वे ही परमहंस चक्रचूड़ामणि इस दिव्यातिदिव्यरसके पान करने और करानेके अधिकारी हैं। मेरे बाबा गुरुके भी गुरु भगवान् नारद सृष्टिके आदिसे विरक्त हैं, किन्तु इस रसका प्रचार प्रसार संसारमें उनके ही द्वारा हुआ। उनके भी गुरु सनक,

सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन ये चारों कुमार बाल-ब्रह्मचारी हैं, सदा पाँच वर्षके ही बने रहते हैं। भगवान्‌की मधुर-लीलाओंमें जितनी आसक्ति इन कुमारोंकी है उतनी और किनकी होगी। आप तो महाराज आचार्य हैं। मेरे कहनेका अभिप्राय इतना ही है, कि आप यदि इन सरस प्रसङ्गोंको लोक संग्रहके विरुद्ध समझें तो मैं इन्हें छोड़ दूँ ?"

शौनकजीने कहा—"नहीं सूतजी ! छोड़नेकी क्या आवश्यकता है। नास्तिक कुतर्की तो इन्हें पढ़ेंगे ही नहीं। विषयी पुरुष श्रीकृष्णको प्राकृत पुरुष समझकर इन लीलाओंको प्राकृत लीला समझकर पढ़ेंगे, तो उनका मनोरञ्जन होगा, सांसारिक प्रेम बढ़ेगा, उनका हृदय सरस होगा और श्रीकृष्णको साक्षात् स्वयं भगवान् मानकर उनकी लीला समझकर पढ़ेंगे, उनका तो कल्याण ही कल्याण है, वे इस मायिक जगत्से छूटकर अप्राकृत दिव्य-लोकके अधिकारी होंगे. अतः ये लीलाएँ मुक्त, मुमुक्षु, ज्ञानी और विषयी सभीके लिये हितकर और मनोरञ्जक होंगी। आप जितने भी विस्तारसे चाहें उतने ही विस्तारसे वर्णन करें। हमें तो इनके श्रवणमें ब्रह्मानन्द सुखका अनुभव हो रहा है।

सूतजीने कहा—"अच्छी बात है महाराज ! वेणुके संबंधमें अन्य गोपियोंने जो उत्प्रेक्षाएँ की हैं अब मैं उन्हींका वर्णन करूँगा। आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

लखि बंशी सौभाग्य वंशकुल अति सुख पावें।
सरिता धाईं सरिस रोम जनु कमल खिलावें ॥
पादप प्रमुदित होहिँ फूलि जावें वन उपवन।
निज दुहिताके करें गान गुन गरजि गरजि घन ॥
मदधारा तरु आँसके, आनन्दाश्रु बहाहिँ जनु।
वृद्धनि कुलमहँ भक्त लखि, बहे नयन जल पुलकितनु ॥

महामोहक मुरलीध्वनि

(६३४)

धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता
या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम् ।
आकर्ण्य वेणुरणितं सह कृष्णसाराः
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥१

(श्रीभा० १० स्क० २१ अ० ११ श्लो०)

छप्पय

यह वृन्दावन धन्य धराको धन जनु अनुपम ।
चरननि नूपुर धारि चलें हरि जामें छ्म-छम ॥
वेनु बजावत श्याम मोर समुझें जनु घनरव ।
गरजि रहे हिय जानि मत्त है नृत्य करें सब ॥
मोहन मुरली मधुर सुनि, नाचें केकी तालमहँ ।
हम सब तरफत दिवसनिशि, फँसी निठुरके जालमहँ ॥

---

१ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! उन सखियोंमें एक बोली—"अरी, सखी ! ये मृगियाँ मूढ़ मतिवाली होनेपर भी धन्य हैं, जो विचित्र वेषधारी नन्दनन्दनके समीप वेणुकी ध्वनि सुनते ही अपने पति कृष्ण-सार मृगोंके सहित आकर अपने प्रणय कटाक्षों द्वारा उनकी पूजा करती हैं ।"

प्रेममें प्राणी अंड-बंड बकनेको, अंड-बंड सोचनेको विवश हो जाता है। वह क्या करता है, क्या सोच रहा है, उसे स्वयं पता नहीं रहता। उसकी दृष्टिमें जड़ चेतन अचर सचरका भेद भाव नहीं रहता। जैसे भङ्गकी तरङ्गमें आदमी सोचता ही जाता है, सोचता ही जाता है, हँसता है तो हँसता ही जाता है, रोता है तो रोता ही जाता है। जो भी धुनि बँध जाय, जो भी अपने प्रियकी बात याद आजाय, उसीपर प्रहरों सोचता रहेगा। उत्प्रेक्षा करता रहेगा, मनमोदक खाता रहेगा। प्रेम मार्गमें जितना सुख सोचनेमें है, चिंतनमें है, स्मृतिमें है उतना सम्मिलनमें नहीं है। शारीरिक सम्मिलन सुख क्षणिक होता है अस्थायी होता है। मानसिक मिलन नित्य निरंतर होता रहता है उसे कोई नाश नहीं कर सकता, उसीको ध्यान धारणा समाधि किसी भी नामसे पुकारो। सब ओरसे चित्तवृत्ति हटकर प्रियतममें ही निरन्तर अविच्छिन्न तेल धारावत लगी रहे यही प्रेमकी परागति है यही पराकाष्ठा है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! श्रीकृष्णकी मुरलीकी धुनि सुनिके मतवाली हुई गोपिकाएँ परस्परमें कथनोपकथन कर रही हैं। उनमेंसे एक बोली—"सखि ! हम तो इस वृन्दावनकी अति सरस पावन भूमिको संसारमें धन्यतमसे भी धन्यतम समझती हैं। अहा ! इस भूमिके सौभाग्यके सम्बन्धमें क्या कहा जाय, जो भी कुछ कहा जाय वही थोड़ा है। जिस समय देवकीनन्दन अपने अनावृत अरुण चरणोंको इसके वक्षःस्थलपर स्थापित करके इसे दबाते हैं, तो समस्त वन उपवन फूल जाते हैं। मानों वृन्दावन प्रदेशकी भूमिका समस्त अङ्ग रोमाञ्चित हो गया हो। सखियो ! जब ये उसी पुण्यमयी पावन भूमिपर त्रिभङ्ग ललित गतिसे खड़े होकर मुरली बजाते हैं, कपोलोंको विचित्र बनाकर इसमें फूँक मारते हैं और वह बैरिनि गाने लगती है, तब तो कुछ

पूछो ही नहीं, वनमें विचरनेवाले मयूरोंको भ्रम हो जाता है, मानों मन्द-मन्द स्वरमें मेघ गरज रहा हो। मेघकी गरजन सुन कर हृदयमें प्रेमकी हिलोरें उठने लगती हैं, मन वशमें नहीं रहता विना नाचे रहा नहीं जाता अतः वे अपने चित्र विचित्र पङ्खोंको उठाकर नृत्य करने लगते हैं। उनके नृत्यको देखकर और विचित्र वेणुरवको सुनकर सभी चराचर प्राणी स्तब्ध हो जाते हैं, उनकी गति रुक जाती है, जहाँके तहाँ खड़के खड़े ही रह जाते हैं। इस वैरिनि बाँसुरीकी धुनिमें ऐसा कुछ जादू है, कि जो भी इसे सुनता है वही आत्मविस्मृत बन जाता है। यह कुलटा तो ब्रह्मा बाबासे भी सब बातोंमे बढ़ गयी।"

इसपर एक सखी बोली—"वीर! तू इस मुरलीको ब्रह्मा बाबाकी उपमा किस प्रकार दे रही है। ब्रह्माजीके तो चार मुख है, वे चार मुखोंसे चार वेदोंका उपदेश देते हैं?"

यह सुनकर वही सखी कहने लगी—"अरी सखी! ब्रह्माजी के तो चार ही मुख है, इस राँड़के तो चारके स्थान पर ये आठ छिद्र ही आठ मुख है। इन आठों मुखोंसे जो यह मुख मटका मटका कर गरजती है इससे सम्पूर्ण विश्व विमोहित हो जाता है।"

उस सखीने फिर पूछा—"नाभिकमल पर बैठे ब्रह्माजीको तो सृष्टिके आदिमें भगवान्ने उपदेश दिया था, इस मुरलीको इतना मोहक उपदेश किसने दिया?"

इसपर कहनेवाली गोपी बोली—"अली! ब्रह्मा बाबाको तो नाभिकमल पर एक ही बार भगवान्ने उपदेश दिया, तब वे इतने भारी ज्ञानी हुए। इस जलमुहीको तो श्यामसुन्दर सदा मुख कमल पर बिठाकर निरन्तर उपदेश करते रहते हैं, फिर इसके ज्ञानकी क्या थाह लग सकती है।"

पूछनेवाली सखीने पूछा—"अच्छा, सखि! यह बताओ ब्रह्माजीने तो कमलपर बैठकर इस चराचर सृष्टिकी रचनाकी यह मुरली किस कमलपर बैठकर सृष्टि करती है?"

कहने वाली बोली—"अरी बावरी! तू इतना भी नहीं जानती। ब्रह्मा बाबा तो एक ही कमल पर बैठे थे। यह तो श्री कृष्णके दो करकमलोंमें सदा बैठी रहती है और मुख कमलकी शय्या बनाती है।"

पूछनेवालीने पूछा—"अच्छा, ब्रह्माजीका वाहन तो हंस है, उसपर वे चढ़कर उड़ते हैं। इस बाँसुरीका वाहन कौनसा हंस है?"

कहनेवाली गोपी बोली—"वीर, ब्रह्माजी तो एक ही हंस पर चढ़ते थे। यह स्वैरिणी तो हम समस्त गोपिकाओंके मानस हंसोंको अपना वाहन बनाये हुए है। उनपर चढ़कर जहाँ चाहती हैं घुमाती रहती है।"

पूछने वालीने पूछा—"हमने सुना था, कि ब्रह्माजी ने तो अपनी पुत्री सरस्वतीके पीछे कुलव्रतका त्याग कर दिया था।"

खीजकर सखीने कहा—"तो यह कौनसी ऐसी व्रत वाली है, इसने भी तो अधरसुधाके लोभसे अपने कुलका व्रत त्याग दिया है। यहाँ तक कि शिखा सूत्र,वस्त्र सब त्याग दिये हैं। दिगम्बर बनी अधरसुधाका सबके सम्मुख स्वादसे पान करती रहती है। इन सब कारणोंसे मैं तो इस बाँसुरीको ब्रह्मा बाबाकी भी मौसी समझती हूँ।

पूछनेवालीने पूछा—"सखि! इसका नाम वंशी क्यों है?"

गोपीने कहा—"बाँसोंसे उत्पन्न होनेके कारणही इसे वंशी कहते हैं। वास्तवमें वंशी कहते हैं मछली फँसानेके यन्त्रको।

एक बाँसमें डोर बाँधकर उसमें एक काँटा लगा देते हैं। उस काँटेपर कोई खानेकी वस्तु आटा या मांसका टुकड़ा लगा

कर उसे जलाशयमें फेंक देते हैं। मछली खानेके लोभसे उस वस्तुको काँटे सहित निगल जाती है, उसके गलेमें काँटा फँस जाता है। मछली मारनेवाला उसे खींच लेता है वशमें कर लेता है। इसी प्रकार यह वृन्दावनविहारी वनवारीकी वंशी अपनी तानकी डोरसे मधुर स्वरूप भोज्य पदार्थके लोभसे जीवोंको फँसाती है, जहाँ कानमें यह शब्द सुनाई दिया कि प्राणी फँस जाता है। इसलिये यह फँसानेवाली वंशी है।

पूछनेवालीने पूछा—"सखि! यह वंशी सबको ही फँसाती है या स्त्री जातिको ही?"

गोपीने कहा—"वैसे तो इसका जादू सबपर चलता है, किन्तु स्त्रियोंका हृदय अधिक कोमल होता है। इसीलिये शास्त्रकारोंने इनको "अवला" संज्ञा बतायी है। ये उस मादक ध्वनिको सुनकर शीघ्र अचेत हो जाती हैं, इस माधुरी जालमें फँस जाती हैं। एक बार जहाँ फँसीं, कि फिर निकलना असंभव है। फँसाकर छोड़ना तो इस वंशीधारी वनवारीने सीखा ही नहीं। यह फँसाना ही जानता है छोड़ना नहीं। रुलाना ही जानता है हँसाना नहीं। तड़पानेमें ही इसे आनन्द आता है। सखि! यदिब्रह्माको हमें स्त्री ही बनाना था, तो पुरुष जातिकी स्त्री क्यों बनाया। यदि पुरुष जातिकी ही स्त्री बनाना था, तो हमारे हृदयमें लोकलाज, कुललाज वेदलाज तथा और भी अनेकों व्यर्थकी लाजें क्यों भरदीं। हमसे तो मृगियाँ ही अच्छी हैं, कि बाँसुरीकी माधुरीका निश्चेष्ट होकर चुपचाप खड़ी हुइ पान कर रही हैं। बड़े-बड़े सींगोंवाले इनके पति ये कृष्णसार मृग भी इनके साथ ही खड़े हैं। इन्हें न उनका कुल शील सङ्कोच है, न इन्हें इनपर अविश्वास अथवा ईर्ष्या ही। पति पत्नी दोनों साथही साथ वेणु माधुरीका मत्त होकर पानकर रहे हैं। ये भी तो स्त्रियाँ ही हैं। हमें तो कोई असमयमें वनकी ओर जाते देखले, तो पचास प्रश्न पूछेगा। क्यों गई? वहाँ क्या

था ? इस समय जानेका क्या काम था ?" इन अभागोंसे कोई पूछे—"क्या श्यामकी वंशीधुनि सुनना कोई काम नहीं है ? अपने तड़पते हुए हृदयमें सरस वेणु ध्वनिको धारण करना, कोई अनुचित कार्य है ? जिस रूपमाधुरीने हमें अपने वशमें कर लिया है, जिस वंशीके काँटेने हमें फँसा लिया है, उसकी ओर यदि अवश होकर हम दौड़ती हैं, तो क्या अपराध करती हैं। जब ये मूढ़मति वाली पशु जातिमें उत्पन्न जंगली हिरनियाँ अपने अपने प्रणय कटाक्षों द्वारा अपने पतियोंके सम्मुख ही पशुपाल प्रभुकी प्रेमपूर्वक पूजा कर सकती हैं, उन नन्दनन्दनको अपना प्रणयोपहार समर्पित कर सकती हैं, तो हम मनुष्य जातिमें उत्पन्न होकर भी उनकी अर्चा न कर सकें, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित न कर सकें यह कैसी विडम्बना है, कैसी विवशता है, इस लोक-लाज और कुलमर्यादाकी भी कोई सीमा है। अच्छा, मानलो मुरलीका शब्द सुनकर उसकी तानमें बँधकर हम जाती हैं, तो हमारा अपराध नहीं है, मुरलीका अपराध है, उसे तोड़ दो, उसे ब्रजसे निकाल दो। अथवा चोरको न मारकर चोरकी माताओंको ही मार दो। अकेली बाँसुरीको न तोड़कर ब्रजमेंसे बाँसोंके वंशोंको ही मिटा दो न रहेंगे बाँस न बाजेगी बाँसुरी। लोग करने योग्य यथार्थ उपायको तो करते नहीं हमें लांछित करते हैं। भला, इतनी मोहक मुरलीकी ध्वनिको सुनकर किसका हृदय न पिघल जायगा, कौन पानी पानी न हो जायगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यह कहते-कहते उस सखीको श्यामसुन्दरके त्रिभुवन रूपकी स्मृति आ गयी उसी समय वह मूर्छित होकर गिर पड़ी। अब दूसरी सखी कुछ कहनेको प्रस्तुत हुई।

छप्पय

है त्रिभङ्ग दे फूँक बजावें वेनु विहारी।
वंशी वंशी बनी फँसाई सब ब्रजनारी॥
मृगी पतिनि सँग सुनत तुरत जड़वत बनि जावें।
प्रनय कटाक्ष चलाय श्याम प्रति भक्ति दिखावें॥
चढ़ि विमान सुनि वेनु धुनि, सुरनि सहित सुर सुन्दरीं।
भई विवश नीवी खिसी, शिथिलकेश माला गिरीं॥

बेसुधि बनानेवाली बाँसुरी

(६३५)

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत-
पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः ।
शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थु-
र्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥१

(श्रीभा० १० स्क० २१ अ० १३ श्लो०)

छप्पय

चरत-चरत तृन धेनु सुनी मादक मुरली धुनि ।
श्रवनपुटनितैं पान करें हरषित है पुनि पुनि ॥
नयननि नीर बहाइ हृदयमहँ छवि लै जावैं ।
आलिङ्गन करि होहिँ सुखी सुधि तन बिसरावैं ॥
बछरा मुखमहँ कौर धरि, ज्योंके त्यों ठाढ़े रहें ।
झाग गिरें मोती सरिस, धुनि प्रवाहमहँ सब बहें ॥

---

१ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! एक सखी कह रही है—देखो ये गौ और बछड़े ही धन्य हैं । ये गौएँ अपने उन्नत श्रवणपुटोंसे श्रीकृष्णमुखनिसृत वेणुरूपी अमृतका पान करती हुई तथा अपने नेह-नीर पूरित नयनों द्वारा उनकी मधुर मूर्तिको हृदयमें लेजाकर उसका आलिङ्गन करती हुई निश्चेष्ट खड़ी हैं । और ये इनके बछड़े भी दूध झरते हुए स्तनोंका घूँट मुखसे टपकाते हुए स्तम्भित खड़े हैं ।

यह कहावत है प्रेमको पशु-पक्षी भी पहिचानते हैं। पशु-पक्षी ही नहीं पादप पाषाण तक प्रेमके वशीभूत हो जाते हैं। कहते हैं—"भरतजीके अलौकिक प्रेमको देखकर कामदचित्रकूट पर्वतके पाषाण पिघल गये। मदनमोहन मुरलीधरकी मुरलीकी ध्वनि सुनकर गिरि गोवर्धनकी शिलायें कोमल हो गयीं पिघल गयीं—अद्यावधि उनपर ग्वालवाल, श्रीकृष्ण और गौओंके चरणचिह्न विद्यमान हैं। गोवर्धनपर्वतकी परिक्रमा करनेवाले महाभाग यात्रियोंको उन सौभाग्यशालिनी शिलाओंके दर्शन होते हैं। श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि साधारण ध्वनि नहीं थी, वह तो विश्वको विमोहित करनेवाली मधुरातिमधुर ध्वनि थी।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! वे बाँसुरीकी ध्वनिसे पगली बनी व्रजाङ्गनायें परस्परमें एक दूसरेको सुनाती हुई भगवान्‌की रूपमाधुरी लीलामाधुरी और वेणुमाधुरीका वर्णन कर रही हैं। उनमेंसे एक कहने लगी—"सखि! भगवान्‌ने स्त्री जातिमें इतना डाह क्यों पैदाकर दिया है। इनके मनमें छिनभरमें ही सौतिया डाह आजाता है, ये अपनी प्रतिस्पर्धिनीको नीचा दिखानेको तुल जाती हैं। अथवा स्त्रियोंमें ही क्या प्राणिमात्रका ही यह स्वभाव है, कि जब एकको चाहनेवाले बहुत हो जाते हैं, तो उनके मनमें यह भाव उत्पन्न हो जाता है, कि अमुकसे हमारे प्रेष्ठ अधिक प्रेम करते हैं। कुछ लोग अपनी चञ्चलता, चपलता, वाक्पटुता, सेवा सुश्रूषा तथा अन्य अनुकूल आचरणों द्वारा स्वामीके मुँह लग जाते हैं। मुँहलगे लोगोंको शील सङ्कोच नहीं रहता, वे जब चाहे कह देते हैं, जिसका चाहें अपमान कर देते हैं। स्वामी उनसे दबते हैं—उनका शील सङ्कोच करते हैं—मुँहलगे लोग उन्हें सर्वथा अपने अधीन कर लेते हैं। स्वामी मनसे किसीको प्यार करना भी चाहे तो ये मुँहलगे ऐसा नहीं करने देते। यह मुरली मोहनके मुँहलगी है। इस जल-

मुहीने श्यामको अपने वशमें कर लिया है। बुद्धिमानोंने नीतिशास्त्रोंमें सब बातें सोच समझकर लिखी हैं। नीतिशास्त्रका वचन है, अपने छोटेसे छोटे प्रतिस्पर्धीको दुर्बलसे-दुर्बल शत्रुको कभी छोटा न समझे। हम पहिले सोचा करती थीं—"यह बाँसकी तनिक सी अनेकों छिद्रोंवाली लकड़ी हमारा कर ही क्या लेगी। कहाँ हम और कहाँ यह नन्ही-सी लकड़ी। किन्तु इसने तो हम सबके कान काट लिये। श्यामका अधरामृत पी-पीकर यह तो पुष्ट बन गयी, छोटीसे खोटी हो गयी, पतलीसे मोटी बन गयी। इसमें तो जादू भर गया। श्यामकी रूपमाधुरीही पहिले हमें सदा विकल बनाये रहती थी अब रूपमाधुरीके साथ यह वेणु माधुरी भी मिलगयी। दोनों सौतोंने मिलकर दिग्विजय करनेका सङ्कल्प कर लिया है। ये संसारको अपने अधीन करनेपर तुली हुई हैं। हम सब तो मर्त्यलोककी स्त्री हैं। हममें तो ऐसा कोई सौंदर्य ही नहीं। किन्तु इन श्यामसुन्दरका स्वभाव सुखकर है इनका अनूप रूप इतना मोहक तथा आकर्षक है, कि जो भी नारी इन्हे देखती है, वह रीझ जाती है, आनन्दित तथा प्रफुल्लित हो जाती है अपना सर्वस्व निछावर कर देती है। फिर तिसपर यह निपूती बाँसुरी और भी कटेपर नमक बुरक देती है। देखो, यह सामने विमानोंपर सुरसुन्दरियाँ अपने पतियोंके साथ बैठी हैं। हमारे पति हमारे सामने होते, तो हम तो एक शब्द भी मुखसे न निकाल सकती थीं, न घूँघटमें से आँखें उठाकर देख ही सकती थीं। किन्तु इन देवाङ्गनाओंके सौभाग्यकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोड़ी है। ये श्यामसुन्दरकी रूप सुधाका नयनों द्वारा अपलकभावसे पान कर रही हैं, कान रूपी पानपात्रोंमें वेणुध्वनिरूपी आसवको उड़ेल-उड़ेलकर उन्हें कण्ठसे नीचे उतार रही हैं। इन दोनों दिव्यरसोंके पान करनेसे इनका हृदय द्रवित हो रहा है, शरीर रोमाञ्चित हो रहा है।

कामने इनके अङ्ग प्रत्यङ्गमें प्रवेश करके इन्हें लताकी भाँति झक-झोर दिया है। इसके परिणाम स्वरूप इनके केशबन्ध अपने आप खुल गये हैं, मुखमण्डलपर स्वेदबिन्दु मोतियोंके सदृश चमक रहे हैं, केशोंमें गुँथे हुए पुष्प स्वतः ही गिर रहे हैं, इनके कटि वस्त्र खिसक गये हैं। सिरको साड़ी कंधोंपर आ गयी है, यह सब हो रहा है अपने पतियोंके सम्मुख ही, किन्तु इन्हें कुछ पता ही नहीं ये तो मदनमोहनकी मधुराति-मधुर-माधुरीपर मोहित हो गयी हैं।" इतना कहते-कहते उस सखीका भी हृदय धड़कने लगा, शरीरमें कँप-कँपी उठने लगी। उसने अपने आप ही अपने सरीरको कसकर भींचा और वह मूर्छित-सी होकर गिर पड़ी, उसे अपने शरीरकी सुधि नहीं रही।"

उसकी यह दशा देखकर एक अन्य सखी बोली—"हाय! मेरी सखीकी कैसी दशा हो गयी। होनी ही चाहिये। यह तो सहृदयानारी है, बुद्धिमती है मनुष्ययोनिमें उत्पन्न हुई है। इन-इन पशु जातिकी गौओंको देखो। ये मदनमोहनके मुखनिसृत वेणुगीत रूप अमृतका अपने ऊँचे उठे हुए श्रवणपुटों द्वारा पान करके आत्मविभोर-सी बनी खड़ी हैं। इन्हें अपने शरीरकी सुधि बुधि नहीं। नयनोंसे निरंतर नेहका नीर निकालती हुई नीरव तथा निस्तब्ध बनी खड़ी हैं। इनके शरीरके समस्त रोम स्याहीके काँटोंके सदृश खड़े हैं, इससे प्रतीत होता है ये श्यामसुन्दरकी मधुरातिमधुर मूर्तिको नयनों द्वारा अन्तःकरणमें ले जाकर उसका कसकर आलिङ्गन कर रही हों, क्योंकि बिना अन्तः स्पर्शालिङ्गनके इस प्रकार रोम खड़े हो ही नहीं सकते। ये बछड़े अपने मुखके कौरको मुखमें ही रखे, चुपचाप सन्न हुए खड़े हैं, इनके मुखसे दुग्धके बिन्दु उसी प्रकार टपक रहे हैं, मानों वृक्षसे श्वेत पुष्प झर रहे हों। ये गौएँ और बछड़ेही धन्य हैं जो श्रीकृष्णका मनसे आलिंगनकर रहे हैं।" भगवान्‌के आलिंगनका

स्मरण आते ही उस गोपिकाके शरीरमें भी फुरहरी-सी आने लगी। शरीर काँपने लगा, हृदयकी धड़कन बढ़ गई और वह भी मूर्छित होकर गिर गयी।

तब एक अन्य सखी बोली—"इन बूढ़े विधाताने समस्त विवशतायें इन वनिताओंके लिये ही बनाई हैं क्या ? पुरुष जाति को विधाताने कैसा कठोर बनाया है। हम सब जानती हैं कठोर हृदयवालोंकी ओर देखना भी पाप है। ये कृष्ण भी कुछ कम कठोर नहीं हैं, न जाने इनका हृदय किन वस्तुओंसे बना है, न यह कोमल ही होता है न पसीजता ही है। अब देखो, वह तो तन्मय होकर वीणा बजा रहा है, अपनी धुनिमें मस्त है उसे संसारका कुछ भान ही नहीं किसीके ऊपर क्या बीत रही है। हम सुभीताके साथ इस मोहक मुरली रवको सुन भी नहीं सकती। समाजके अनेक प्रतिबन्ध हमारे ऊपर लगे हैं। हमसे तो ये वृन्दावनके वृक्षोंपर रहनेवाले पक्षी ही धन्य हैं। देखो, ये कैसे चुपचाप बोलना बंद करके श्रीकृष्णके वेणुनादको एकाग्र चित्तसे श्रवण कर रहे हैं। उनकी ओर निर्निमेष दृष्टिसे देख रहे हैं। शांतता, दांतता, एकाग्रता, तन्मयता तथा निर्निमेषताको निहारकर हमें तो ऐसा प्रतीत होता है ये कोई पूर्वजन्मके मुनीश्वर हैं। बड़े सौभाग्यशाली हैं, वृन्दावनके पादपोंपर इन्होंने जन्मग्रहण किया है। नित्य-प्रति यमुनाजल पान करनेको मिलता है और जहाँसे श्यामसुन्दरके सुभीतेसे दर्शन हो सकें,उन मनोहर पल्लवोंसे युक्त शाखाओंपर बैठकर श्रीकृष्णकी रूपमाधुरीका यथेष्ट आहार प्राप्त होता है, इनके सौभाग्यकी क्या सराहनाकी जाय। हम तो विकलताके कारण भली भाँति न तो श्याममुन्दरकी मुरली ध्वनि को ही सुन सकती हैं और न उनके अनुपम सौंदर्यमाधुर्यका ही सावधानीके साथ अपलक भावसे पान ही कर सकती हैं।" इतना कहते कहते उसे भी भावसमाधि हो गयी।

इसे देखकर अन्य सखी बोली—"इन वृन्दावनके पक्षियोंको श्यामसुन्दरकी रूप माधुरीके कारण जो समाधि हो जाती है, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं। कैसे भी सही पक्षी होनेपर भी ये प्राणधारी जीव तो हैं। सचेतन प्राणियोंको प्रेम होना स्वाभाविक है, इन अचेतन नदियोंको भी देखो, मुझे तो ऐसा लगता है, श्रीकृष्णकी रूपमाधुरी और वेणुमाधुरीके कारण ये भी काम विकारसे पीड़ित-सी प्रतीत होती हैं।"

दूसरीने कहा—"सखि ! तैंने कैसे समझा ?

वह बोली—"अरे, पगली ! स्त्री होकर भी तू इतनी बातको नहीं पहिचान सकती। ये अपनी तरङ्ग रूपी भुजाओंसे कमल कुसुमकी भेंट समर्पण करती हुई ही सी दिखाई देती हैं। मानसिक आलिंगनके कारण अवसन्न हुए प्राणनाथके पादपद्मोंका स्पर्श ये अपनी तरंगोंसे कर रही हैं। मानों वे उनके युगलचरणोंका प्रक्षालन कर रही हों, उन्हें धो रही हो। खिले हुए कमल रूप नेत्रोंसे उन्हें निहार रही हों, भ्रमर रूप नाभिको सलज्ज भावसे उपायान्तरसे दिखा रही हों।" इस प्रकार कहतेकहते उस सखीकी दशा भी विचित्र हो गयी और वह आगे कुछ भी न कह सकी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! आप ऊबें नहीं। बस, एक प्रसंग और कहकर मैं इस मधुरातिमधुर वेणुमाधुरी रसको बहता हुआ छोड़कर, दूसरे इससे भी अधिक स्वादिष्ट रसकी चानगी आपको चखाऊँगा।

छप्पय

सखि इन विहँगनि लखो बने मौनी बाबा मनु।
अपलक निरखत रहत करत साधक नाटक जनु ॥
बैठि तरुनिकी डार सुनें बंशी धुनि नितप्रति।
हम लालायित रहें रूप रसकी प्यासी अति ॥
बड़भागी सरिता सकल, भुजतरङ्गतैं सुमन धरि।
आलिङ्गन हियमें करें, रूप माधुरी नयन भरि॥

अचरको सचर बनानेवाली वेणु

(६३६)

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो-

यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः ।

मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्

पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः ॥१

(श्रीभा० १० स्क० २१ अ० १८ श्लो०)

छप्पय

घोर घाममहँ श्याम निरखि उमड़े घुमड़े घन ।
फुलझरियाँ बरसाइ करें छतरी छाया तन ॥
कुच कुंकुमकी कीच सने पग बन विहरें हरि ।
दूबनिपै लगि जाइँ बनचरिनि हृदय जाइँ भरि ॥
हिय, मुख कुच कुंकुम मलें, प्रेम व्यथा मेटें अलीं ।
स्वर्ग सराहें सुरबधू, हमतैं तो भीलिनि भलीं ॥

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! एक अन्य सखी कह रही है—"सखियो ! हाय ! हम कुछ नहीं । यह गोवर्धन पर्वत ही हरिदासोंमें सर्वश्रेष्ठ है । क्योंकि श्रीरामकृष्णके चरणारविन्दोंके स्पर्श से प्रमुदित होकर श्रीकृष्णकी गौओंकी तथा गोपोंकी पानीसे, सुन्दर हरी घास से, कन्दरा तथा कन्द मूलोंसे सम्मान करके सेवाकर रहा है ।

· जीवका श्यामसुन्दरके साथ स्वयं संबंध हो जाय या परस्परया हो जाय, तभी उसका जीवन सफल हो सकता है। साधकका जीवन तभी सफल है, जब उसे अपने सच्चे पतिका पूर्ण प्रेम प्राप्त हो, अथवा उससे प्रेम करनेवालेका ही संग हो जाय। बड़े बड़े महापुरुषोंकी चरणपादुकाओंको हम सिरपर क्यों चढ़ाते हैं, उन्हें आँखोंमें क्यों लगाते हैं, इसीलिये कि इनके साथ कभी उस महापुरुषके चरणोंका स्पर्श हुआ है। इन बड़भागिनियोंके ऊपर महापुरुषके पैर पड़े हैं। जिन वस्तुओंसे साक्षात् नन्दनन्दनका संसर्ग हो उन वस्तुओंके सम्बन्धमें क्या कहना। एक कोई भक्त थे, श्रीकृष्ण प्रेममें व्याकुल होकर बार बार रुदन करने लगे। रोते रोते वे बार बार कहते—"मैं वृन्दावन जाऊँगा, वृन्दावन जाऊँगा।" किसीने कहा—"वृन्दावनमें अब क्या रखा है नन्दनन्दनने अपनी प्रकटलीला तो संवरण करली, वहाँ अब श्रीकृष्णके साक्षात् दर्शन होने तो कठिन हैं। उन्होंने रोते रोते कहा—"भगवान्‌की लीला तो नित्य है, वह निरंतर होती ही रहती है। मानलो मुझे श्यामसुन्दरके प्रत्यक्ष दर्शन न हुए, तो मुझे उस गोवर्धन पर्वतके तो दर्शन हो ही जायँगे, जिसपर अपने चरणोंसे चलकर नन्दनन्दन गौओंको चराते थे, उस कालिन्दीके दर्शन तो हो ही जायँगे, जिसमें श्यामसुन्दर नहाते थे, अपनी गौओंकोजल पिलाते थे, उस वृन्दावनकी परम पावन भूमिके तो दर्शन तो हो जायँगे जिनपर अच्युत अपने अरुण चरणकमलोंसे सदा चलते थे। मेरे लिये इतना ही क्या कम है। इतना सौभाग्य भी तो सभी को प्राप्त नहीं होता।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इन महाभाग्यवती गोपियोंके अनुरागका वर्णन मैं कहाँ तक करूँ, ये तो भगवान्‌की मुरली धुनिको सुनकर ऐसी तन्मय हो गयीं थीं, कि कुछ कहनेको उठतीं और फिर प्यारेकी रूप माधुरीकी याद आती तो आत्मविभोर

बन जातीं। सबका लक्ष्य उस भावमयी प्रधानाको सुख देने का था। इसीलिये सबकी सब उसे ही सुनाकर कहतीं और कहते-कहते सब अनुराग रससागरमें निमग्न हो जातीं, तो रुक जातीं। फिर दूसरी कुछ कहनेको प्रस्तुत होतीं। पहिलीके आत्मविभोर हो जानेपर दूसरी बोली—"सखियो! देखो, नभमें काले-काले मेघ इस प्रकार क्यों उमड़ घुमड़ रहे हैं?

एक बोली—"नहीं सखि! हमें तो पता नहीं तुम्हीं उसका कारण बताओ।

इसपर वही बोली—"इन मेघोंने देखा ग्वालबाल और बलरामजीके सहित वनमाली नंगे पैरो वनमें गौओंके पीछे-पीछे भ्रमण कर रहे हैं। शरद ऋतु है, शरद ऋतुकी क्वार कार्तिककी घाम इतनी घोर होती है, कि उसके कारण हरिण काले पड़ जाते हैं। मेघोंने सोचा—"श्यामसुन्दर नंगे पैरों घूम रहे हैं। साथ ही निरन्तर वंशी भी बजाते जाते हैं। वंशी बजानेसे उनके मस्तकपर स्वेद विन्दु झलकने लगे हैं। एक तो घनघोर घाम और दूसरे इतना श्रम। श्रीकृष्ण हमारे सजातीय हैं, एक वर्णके हैं। हम भी घनश्याम हैं और नन्दनन्दन भी घनश्याम हैं। हमारे रहते हमारे सजातीयको कष्ट हुआ, तो हमारे जीवनको धिक्कार है।" इसीलिये ये उमड़ घुमड़कर अपने शरीरकी छाया करते हुए श्यामसुन्दरके पीछे-पीछे मानों अपने तनका छत्र लगाये चल रहे हों। ऊपरसे अत्यंत छोटी छोटी फुलझरियाँ बरसा कर मानों उनके ऊपर सुमनोंकी वृष्टि कर रहे हों। अहा! इन्हींका जीवन धन्य है, इनका ही जलधर नाम सार्थक है, जो अपने जलका और तनका श्रीकृष्ण कैंकर्य करके सदुपयोग कर रहे हैं, हम हतभागिनी तो ऐसी हुईं, कि श्यामके किसी काममें न आयीं। यह मुरली ही धन्य है जो मदनमोहनका मनोरञ्जन तो करती

है। इतना कहते कहते सखीका कण्ठ रुद्ध हो गया। शरीर रोमाञ्चित हो गया और नेत्रकी पुतलियाँ चढ़ गयीं।"

तब एक अन्य बोली—"सखियो! हम तो इन वनविहारिणी जंगली भीलिनियोंके सौभाग्यकी सराहना करती हैं, हम ही क्या सरहना करती हैं, इनके सौभाग्यपर तो स्वर्गकी सुरसुन्दरियाँ भी विस्मित हो जाती हैं?"

एक सखीने पूछा—"आली! इन भीलिनियोंने ऐसी कौनसी निधि पाली है?"

वही सखी बोली—"सखि! इनके भाग्यको तुम कुछ पूछो मत। हमारी जो ये प्रधाना श्रीजी भावविभोर हुई पड़ी हैं। इनके हृदयपर जब हम गाढ़े-गाढ़े कुंकुमकी कीच लगा देती हैं और उनपर श्यामसुन्दरके चरणारविन्द पड़ते हैं। श्यामसुन्दरके चरणारविन्द वैसे ही नूतन किसलयके सदृश अरुण वरणके हैं, फिर वे कुंकुमके रागसे और भी रञ्जित हो जाते हैं, उस कुंकुम कीचमें सन जाते हैं, कुंकुम कीच उनमें सट जाती है, चिपक जाती है। उन्हीं चरणारविन्दोंसे वे वृन्दावनकी कोमल-कोमल हरी-हरी घासपर घूमते हैं। घूमते-घूमते वह कुंकुम स्वतः ही घासमें लग जाता है। उसकी दिव्य गन्धको सूँघते ही वे पुलिन्द जातिकी जङ्गली कामिनियाँ काम ज्वरसे विकल-सी बन जाती हैं। उस कुंकुमको बड़े उल्लासके साथ ओसके जलमें भिगो भिगोकर मुखपर मलती हैं वक्षःस्थलपर बार-बार लगाती हैं। इस प्रकार वे अपनी काम व्यथाको शान्त किया करती हैं। उस कुंकुममें युगल जोड़ीकी अनन्त स्मृतियाँ हैं। एक तो वह श्रीजीके काम संतप्त हृदयपर लेपा गया था, फिर वह श्यामसुन्दरके चरणारविन्दोंमें लगा। उसे लगाते ही ब्रह्मानन्द सुखका अनुभव करने लगती हैं।" कुच कुंकुम और श्यामसुन्दरके अरुण कोमल चरणोंकी स्मृति होते ही सखी बाह्य ज्ञान शून्य हो गयीं।"

तब एक अन्य सखी बोली—"सखियो! श्रीश्यामसुन्दरसे जिनका किसी भी प्रकार तनिक भी सम्बन्ध हो जाय, वही धन्य है। किन्तु हम तो इस गिरिराज गोवर्धन पर्वतको सबसे अधिक धन्यतम मानती हैं, इसके सौभाग्यको तो कोई दूसरा प्राप्त कर ही नहीं सकता। और सब नारद सनकादि तो हरिदास ही हैं, किन्तु यह पर्वत तो हरिदासवर्य है।

एकने पूछा—"सखि! इस पर्वतमें ऐसी क्या विशेषता है। यह कोई पर्वतोंमें पर्वत है। तनिक-सा छोटा-सा टीला है। इसकी इतनी बड़ी महिमा क्यों बताती हो?"

यह सुनकर वही सखी बोली—"बहिन! यद्यपि इस पर्वतको सब लोग जड़ कहते हैं। किन्तु मेरे मतमें यथार्थ चैतन्यताका लाभ इसने ही प्राप्त किया है। इसकी प्रत्येक शिलापर बलरामके सहित वनोंमें गौओंके संग विचरण करनेवाले श्यामसुन्दरके पाद पद्म पड़े हैं। श्रीकृष्ण चरणारविन्दोंसे यह कृतकृत्य हो गया है। फिर घरपर जब कोई योग्य अतिथि पधारता है तो गृहीका शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। इसी प्रकार इस पर्वतका शरीर श्रीकृष्णके पादस्पर्शसे उनके दर्शनोंसे रोमाञ्चित हो जाता है। यह भगवान्‌का सखाओंका गौओंका हृदयसे स्वागत सत्कार करता है, गौओंको खानेके लिये सुन्दर सुन्दर हरी हरी दूब देता है। गोपालोंके लिये मधुर स्वादिष्ट कंदमूल फल देता है। सबको पीनेके लिये सुन्दर स्वच्छ अपने झरनोंका अमृत तुल्य जल देता है बैठनेके लिये अपनी कन्दराओंको देता है। अतिथिको विश्राम करनेको स्थान भोजन और जल यही स्वागतमें आवश्यक है, सो यह अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है। कुछ भी बचाकर नहीं रखता। इससे बढ़कर सौभाग्यशाली और कौन होगा?"

यह सुनकर शौनकजीने पूछा—"सूतजी ये महाभाग गोवर्धन पर्वत कौन हैं, इन्हें इतना सौभाग्यप्राप्त क्यों हुआ? हम देखते हैं,

सभी इनको श्रीकृष्ण बुद्धिसे पूजा करते हैं। इनकी शिलाओंकी शालग्राम बुद्धिसे पूजा करते हैं। शालग्रामशिला और गोवर्धन की शिलामें कोई भेद ही नहीं मानते। लखों नरनारी दंडवत करते हुए इसकी परिक्रमा करते हैं। इसे श्रीकृष्णका तादात्म्य रूप कैसे प्राप्त हुआ? कृपा करके इस बातको हमें बताइये।"

इसपर सूतजी बोले—"भगवन्! नित्य गोलोक विहारी श्रीकृष्णके संसर्गमें जो भी है सब चिन्मय है। जड़ताका तो वहाँ नाम भी नहीं। जैसे यहाँपर वृन्दावन है वैसेही गोलोकमें भी दिव्य वृन्दावन है। यहाँकी भाँति वहाँ भी कालिंदी है, गिरिराज गोवर्धन पर्वत है। जब अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक श्रीकृष्णचन्द्र गोलोक से अपने समस्त परिवारके सहित पृथिवीपर अवतरित हुए, तब यह गोवर्धन पर्वत भी आया। यह भगवानका नित्य सहचर है, इसके बिना भगवान् रह ही नहीं सकते। जैसे भगवान्के अवतार में हेतु बताते हैं कि स्वायंभुवमनु और शतरूपाने तपस्या करके वर प्राप्त किया कि भगवान् हमारे पुत्र हों। द्रोण और धराने वर माँगा कि सर्वेश्वर हमारे सुत हों। वैसे ही इस पर्वतके व्रजमें पधारनेके कारण बताते हैं। ये सब कारण गौण हैं, लीलाविस्तार के लिये तथा संगति मिलानेके लिये हैं। वास्तविक बात तो यह है कि यह सब लीलाधारीकी लीला है, गोलोकविहारीका खेल है। जब वे अपनी श्रुत लघुरलीलाओंको भक्तोंके कल्याणार्थ पृथिवीपर प्रकट करना चाहते हैं, तब वे ये सब उपकरण खड़े कर देते हैं। करने करानेवाले ये ही वृन्दावनविहारी हैं।

हाँ, तो गोवर्धन पर्वतके व्रजमें अवतीर्ण होनेकी कथा यह है, कि विन्ध्य पर्वतने चिरकाल तक घोर तपस्याकी कि मुझे एक परम भगवद्भक्त पुत्र प्राप्त हो, जो भक्तिमें भगवान्के ही सदृश हो, भगवान उसे प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते हों। अब विन्ध्य तो ठहरा पर्वत। पर्वतका पुत्र पर्वत ही हो सकता है। श्रीकृष्णको

गोवर्धनसे बढ़कर कोई पर्वत प्रिय नहीं है। अतः भक्तिवश होकर भगवानको वर देना पड़ा गोवर्धन ही तुम्हारा पुत्र होगा। भगवान् को भी व्रजमें प्रकट लीला करनी थी, श्रीकृष्ण लीलाके प्रधान उपकरणोंमें गिरिराज गोवर्धन भी हैं। गोवर्धन न हो तो गोचारण लीला साङ्गोपाङ्ग नहीं घट सकती। अतः गोवर्धनका भूमिमें अवतरित होना अत्यावश्यक था, ये विन्ध्यपर्वतके पुत्र रूपमें प्रकट हुए।

भगवान्को लीला करनी थी व्रजमें, गोवर्धन पर्वत प्रकट हुए विन्ध्य प्रदेशमें। अब काम कैसे चले। काम चलानेवाले तो भगवान् हैं, उन्हें जब जैसा करना होता है, तब तैसा ही स्वाँग रच देते हैं, वैसे ही लोगोंकी बुद्धि बना देते हैं। काशीपुरीमें एक बड़े ही शान्त दान्त, तेजस्वी तपस्वी ब्राह्मण थे उनकी तपस्या बड़ी ही उग्र थी, वे बाल ब्रह्मचारी थे, भगवान् नन्दनन्दनके अनन्य उपासक थे, उनके मनमें एक दिन बैठे ही बैठे एक सङ्कल्प उठा कि हम एक पावन पर्वत यहाँ काशीपुरीमें लावें। जिसपर बैठकर सुखसे तपस्या करते रहें। इसके लिये उन्होंने भगवान्की घोर आराधनाकी। उन्हे आकाशवाणी हुई कि तुम विन्ध्यपर्वतके समीप जाओ। तपस्वी ब्राह्मण विन्ध्यपर्वतके समीप गये उनसे प्रार्थना की। विन्ध्यपर्वत बड़े धर्मसङ्कटमें पड़े। गोवर्धनको वे प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते थे, साथ ही अतिथियोंका आतिथ्य करनेका भी उनका व्रत था। इतना योग्य अतिथि मेरे द्वारसे निराश होकर लौट जाय, तो मेरे जीवनको धिक्कार है, किन्तु मैं अपने प्राणोंसे प्यारे पुत्रको कैसे दे सकता हूँ। इसी धर्मसङ्कटमें पड़कर विन्ध्य मारे प्रेमके रोने लगे। झरनोंके रूपमें उनके नेत्रों का नेह नीर नीचे बहने लगा।

तब गोवर्धनने अपने पिताको समझाया—"पिताजी! आप इतने दुखी न हों, इस प्रकारकी विकलता आप जैसे महान्

व्यक्तिको शोभा नहीं देती। पिताजी! इस शरीरकी एकमात्र सार्थकता सेवामें ही है। इस नश्वर पञ्चभूतोंके बने शरीरसे यदि साधुसंत और अतिथियोंकी सेवा नहीं हुई, तो यह व्यर्थ है। देखिये, अतिथिके लिये कपोतने अपना सिर दे दिया। राजा विरोचनने ब्राह्मण रूपमें आये हुए देवताओंको अतिथि समझकर—उनके यथार्थ रूपको जानकर भी—अपने प्राण दे दिये। अतिथि सेवामें धन, जन, पत्नी पुत्र, यहाँ तक कि अपने प्राणोंकी भी आहुति देनी पड़े तो बुद्धिमान् पुरुषको इसमें भूल न करनी चाहिये। आप मुझे देकर अपने धर्मकी, अपने सत्यव्रतकी रक्षा कीजिये।"

यह सुनकर विन्ध्यको धैर्य हुआ, उसने गोवर्धनको देना स्वीकार कर लिया। उसने बड़ी नम्रताके साथ ब्राह्मणसे कहा—"अच्छी बात है भगवन्! आप मेरे प्राणोंसे भी प्यारे परम पावन प्रभु प्रेमी पुत्रको प्रसन्नतापूर्वक ले जायँ।"

इसपर गोवर्धन पर्वतने कहा—"ब्रह्मन्! मैं चलता तो हूँ आपके साथ, किन्तु आपको भी एक प्रतिज्ञा करनी होगी।"

ब्राह्मणने कहा—"वह क्या?"

गोवर्धन बोला—"वह यह कि मुझे आप काशी तक बीचमें कहीं भी न रखें। बीचमें आप मुझे जहाँ रख देंगे, फिर वहाँसे मैं उठूँगा नहीं।" ब्राह्मणको तो अपनी तपस्याका अभिमान था। उसने कहा—"अच्छी बात है, मैं तुम्हें बीचमें कहीं भी न रखूँगा।"

बात निश्चित हो गयी। विन्ध्यने रोते-रोते अपने प्राणोंसे प्यारे पुत्रको ब्राह्मणके लिये दे दिया। गोवर्धन भी फूलके सदृश हलके हो गये। ब्राह्मण उन्हें लेकर चल दिये। जब वे व्रजमें पहुँचे तो उन्हें पर्वत बहुत ही भारी प्रतीत होने लगा। हाथ दुख गये अब उन्हें एक पैर भी आगे बढ़ना कठिन प्रतीत होता था, अन्त

में थककर उन्होंने वहीं पर्वतको रख दिया। गोवर्धन पर्वत हँस पड़ा और बोला—"ब्रह्मन्! अब मैं आगे न चलूँगा। मेरी आपको प्रतिज्ञा हो चुकी है।"

तपस्वी ब्राह्मण भगवद् भक्त थे, उन्होंने ध्यान लगाकर देखा, "यह तो श्रीकृष्ण भगवान्की लीलाका उपकरण है, यह तो दिव्य चिन्मय गोलोकका गोवर्धन पर्वत है, यह तो भगवान्का अभिन्न तनु है।" इसलिये उन्होंने गोवर्धनसे फिर आग्रह नहीं की। वहीं उसपर रहकर तपस्या करते हुए उन्होंने परम पदकी प्राप्ति की। तबसे ये गोवर्धन व्रजमें रहकर ही भगवान्के अवतार की प्रतीक्षा करते रहे। व्रजमें उत्पन्न होकर भगवान्ने इसपर क्रीड़ायें कीं, इसे अपने नखपर धारण किया, जिससे गिरधारी गोवर्धनधारी आदि नाम पड़े। इस प्रसंगको मैं यथास्थान कहूँगा। भगवान्ने प्रसन्न होकर इन्हें अपना स्वरूप ही प्रदान किया, इसीलिये गोवर्धन पर्वतके दर्शन करना भगवान्के दर्शन करनेके समान है। निष्ठावान् वैष्णव इनको शिलाओंपर पैर नहीं रखते और उनका भगवद् बुद्धिसे पूजन अर्चन करते हैं। इसलिये अत्यन्त छोटे होनेपर भी ये गिरिराज कहलाते हैं, जहाँ पर्वतोंको गणना होती है, वहाँ इनका भी नाम आता है। ये संसारमें परम भाग्यशाली हैं। गोपिकायें इसीलिये इनकी इतनी महिमा गा रही हैं।"

इसपर शौनकजीने कहा—"सूतजी! हमने गिरिराज गोवर्धनकी लीला तो सुनी, अब यह बताइये कि इस वेणुमाधुरी रससरिताके प्रवाहको आप कब तक बहायेंगे? आगे कोई कथा कहेंगे या इसी प्रकार उत्प्रेक्षायें ही करते रहेंगे।"

सूतजी शीघ्रतासे बोले—"महाराज, इस माधुरी रसका तो न आदि है न अन्त। यह तो अनन्त रसार्णव है। इसका वर्णन

कौन कर सकता है। बस, अब मैं इस प्रसङ्गको समाप्त करके अत्यन्त सरस चीरहरणलीलाके प्रसङ्गको कहूँगा।

हाँ, तो वे सभी सखियाँ आपसमें क्रमशः वेणुमाधुरीका वर्णन करते-करते मूर्छित होती जाती थीं। उनकी मूर्छाकी औषधि भी यही माधुरी थी, अतः उपचारकी दृष्टिसे अन्य सजग गोपिकायें कुछ अवश्य कहतीं। न कहतीं तो सब मूर्छित ही पड़ी रहतीं। मूर्छामें भी वे सब सुनती रहतीं और इसीसे उनका संतप्त हृदय शीतलताका अनुभव करता। जब एक सखी गोवर्धनकी महिमा गाकर मूर्छित हो गयी, तब अन्य बोली—"सखि! इस बाँसुरीकी महिमा हम अधिक कुछ कह भी नहीं सकतीं, इसने तो ब्रह्माजीके विधानको भी विपरीत बना दिया। जब श्यामसुन्दर अपने बड़े भाई बलदेवजी तथा समस्त साथियोंके सहित गौओंको आगे आगे करके एक वनसे दूसरे वनमें जाते हैं, तो उस समय मधुरपदावली युक्त उदार वंशी ध्वनिको सुनकर अचर सचरसभी जीवोंकी विचित्र दशा हो जाती है। अचर तो सचरसे दिखायी देने लगते हैं और सचर अचर बन जाते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी जितने भी सचर प्राणी हैं, वे तो वेणुनादको सुनते ही स्तब्ध स्तम्भित हो जाते हैं और जो वृक्ष आदि अचर हैं उनके शरीर रोमाञ्चित हो जाते हैं।" इतना कहते कहते वह भी मूर्छित हो गयी।

कुछ कालमें सभीकी मूर्छा भंग हुई, सम्मुख गौओंको बाँधते हुए दूध दुहनेके लिये उद्यत श्यामसुन्दरको सभीने निहारा। उनकी झाँकी-झाँकी करके सब निहाल हो गयीं। कुछ दूध दुहाने लगीं कुछ बछड़ोंको बाँधने लगीं, कुछ इधर-उधरकी व्यर्थ बातें श्यामसुन्दरसे पूछने लगीं। श्यामसुन्दर सखाओंके साथ बातें करते जाते थे, ठठाका मारकर हँसते जाते थे और बीच बीचमें कनखियोंसे उन अनुरागवती गोपिकाओंकी ओर भी देखते

थे उनकी वह प्रेमभरी चितवन ही उन व्रजांगनाओंके जीवनकी आधार थी। उसी चितवनके सहारे तो वे जी रही थीं।

श्रीकृष्ण दूध दुहनेवालोंसे कह रहे थे—"बछड़ोंको पेट भरके पी लेने देना। तब दूध निकालना। बछड़ोंको बाँधकर गौओंके थनोंको शीतल जलसे अवश्य धो लेना। दोहनी घुटुअनके बीचमें ऐसी रहे कि धार उसीमें पड़े। देखना भूमिपर दूध न गिरने पावे। जो कूदनेवाली गैयाँ हैं उनके पैरोंमें बछड़ोंकी रस्सी बाँध दो।"

हँसकर गोप कहते—"अरे, कनुआ भैया! तू तो अभीसे पंडित हो गया। सबको सीख देने लगा है। हमारे सामने तो तू नङ्गा डोलता था।

तब श्रीकृष्ण कहते—"जाओ सारेओ! यह कोई बात हुई। लाओ मैं अब नङ्गा हो जाऊँ।"

सब हँसते हँसते कहते—"दयाकर भैया तू। तुझे कुछ शील-संकोच तो है ही नहीं। तू महा नङ्गा है और मुँहफट है। जो तेरे मनमें आता है, फट कह देता है। बातको पहचानना तो तू जानता ही नहीं। जो मनमें आजाती है, फटकर डालता है। तैंने तो लोई ओढ़ ली है। "जिसने ओढ़ ली लोई। उसका क्या करेगा कोई।" कहावत है—"नङ्ग बड़ा परमेश्वरसे"

श्रीकृष्ण बोले—"भैया! मैं तो जिसे भी अपनाता हूँ उसे ही नङ्गा बना देता हूँ। जो अपना सर्वस्व त्यागकर जब तक धनहीन नङ्गा नहीं हो जाता, तब तक मैं उसे कैसे अपना सकता हूँ? जबतक बीचमें अंतर है—व्यवधान है—तबतक एकता कहाँ?"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार हँसते खेलते श्याम-सुन्दर गौओंको दुहकर घर चले गये। गोपिकायें निरन्तर श्याम सुन्दरका ही मनसे चिन्तन करती हुई गृहकार्योंमें लग गयीं।

छप्पय

गिरि गोवरधन धन्य श्रेष्ठ सब हरि भगतनितैं ।
जा पै श्रीहरि फिरैं नित्य नंगे चरननितैं ॥
हरषें हियमहँ निरखि ग्वाल गौअनि सँग नटवर ।
दै तृन, जल, फल, मूल करैं सत्कार निरन्तर ॥
हरि मुरलीकी तान सुनि, होहिं अचर चर-चर अचर ।
पान करहिं वेसुधि बनहिं, वेनुमाधुरी परस्पर ॥

व्रजकन्याओंका कात्यायनी व्रत

[६३७]

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः ।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥१
श्रीभा० १० स्क० २२ अ० १ श्लो०)

छप्पय

कहें सूत—मुनि ! सुनहु कुयारिनिकी लीला अब ।
कृष्णप्रेममहँ पगीं करें मिलि व्रत जप तप सब ॥
व्रत कातिकको करहिँ प्रेमतेँ यमुना न्हावेँ ।
न्हाय बालुकामयी भगवती मूर्ति बनावेँ ॥
माला चन्दन धूप वर, अक्षतदल ताम्बूल फल ।
पूजा सब विधिवत करहिँ, अरपि अन्न सुस्वादु जल ॥

रसशास्त्रोंमें कृष्णप्रियाओंके अनेक भेद वर्णन किये गये हैं। व्रजकी जितनी कृष्ण प्रेमवती गोपिकायें हैं उन सबके पृथक् पृथक् विलक्षण विलक्षण भाव हैं। साधारणतया अनुरागवती गोपियोंके सिद्धा और नित्यसिद्धा ये दो भेद हैं। सहचरी तो सदा श्यामसुन्दरके साथ रहती हैं। उन्हें कृष्णप्राप्तिके लिये प्रयास

---

१ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! हेमन्त ऋतुके प्रथम मासमें श्रीनन्दजीके व्रजमें रहनेवाले गोपोंकी कुमारी कन्याओंने हविष्यान्न भोजन करते हुए कात्यायनी देवीके पूजनका नियम किया ।

नहीं करना पड़ता। जिनके मनमें बहुतसे मनोरथ हैं, जो भाँति भाँतिकी उपासनाओंमें लगी हुई हैं, फिर उन्हें श्रीकृष्णप्रसादकी प्राप्ति हो चुकी है, वे सिद्धा हैं। इनमें भी ऊढ़ा अनूढ़ा मुग्धा प्रमुग्धा आदि अनेक भेद हैं। मुग्धा वह है जिसने अभी तक पतिसंगम प्राप्त नहीं किया है कन्या है और प्रमुग्धाको पतिप्रेम प्राप्त हो चुका है। गोपियोंमें कोई वेदकी ऋचायें हैं। उन्होंने इच्छा की थी, हम श्रीकृष्णकी पत्नी बनें वे गोपिकायें हुईं। कोई देवाङ्गनायें हैं भगवान्की आज्ञासे व्रजमें अवतीर्ण हुईं, कोई मुनिरूपा हैं। ये जो कन्या हैं वास्तवमें तो ये स्वरूपसिद्धा हैं। श्रीकृष्णके लीला बिलासको बढ़ानेके लिये इन्होंने साधिकाओंसे अनुकरण किये। श्रीकृष्ण हमारे पति हों, इसके लिये उन्होंने घोर साधनायें कीं। ये पूर्वानुरागवती कन्यायें जो भी जप, तप, व्रत अनुष्ठान करतीं, एकमात्र व्रजवल्लभ नन्दनन्दनकी प्रसन्नताके ही निमित्त करतीं। किसी भी देवताकी पूजा करतीं, उससे यही वर माँगतीं—"हमें श्रीकृष्णप्रेम प्राप्त हो।" इनके साध्य तो श्यामसुन्दर थे। अन्य देवोंकी पूजा साध्यकी प्राप्तिके हेतु साधन मात्र थी। श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थ जो कर्म किया जाता है प्रारब्ध उससे नहीं बनता। वह तो समस्त सञ्चित शुभ अशुभ कर्मोंको नाश करके प्रभु प्राप्ति करा देता है। प्रभु प्रसन्न हो जाते हैं और उसे वरण कर लेते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मैंने पीछे शरद ऋतुके प्रसङ्गमें महा अनुरागवती गोपिकाओंके प्रेमका—उनके द्वारा वर्णित वेणु माधुरीका—प्रसङ्ग अत्यंत संक्षेपमें आपको सुनाया। अब मैं उन पूर्वानुरागवती कुमारी कन्याओंके प्रेमका एक प्रसङ्ग सुनाता हूँ, जिनका हृदय निरन्तर नन्दनन्दनमें ही आसक्त रहता था। श्रीकृष्ण हमें पतिरूपसे कैसे प्राप्त हों, यही जिनकी एकमात्र उत्कट अभिलाषा थी, इसीके लिये जिनका समस्त व्रत अनुष्ठान

था। मुनियो! इस बातको मैं पीछे भी अनेक बार कह आया हूँ, अब भी कहता हूँ और आगे भी निरन्तर कहता ही रहूँगा, कि श्रीकृष्ण लीलाओंको प्राकृत पुरुषोंकी-सी लीला समझकर पढ़नेमें कोई पारमार्थिक विशेष लाभ न होगा। लौकिक प्रेमकी एक धर्मविहीन घटना हो जायगी। जो विषयियोंका कुछ कालके लिये मनोरंजन भले ही करदे, किन्तु जो जीवका चरम लक्ष्य है—श्रीकृष्ण प्रेमकी प्राप्ति—यह तो नहीं होगा। जब श्रीकृष्णको सर्वान्तर्यामी घटघटवासी परात्पर प्रभु मानकर, गोपियोंको उनका ही एक अभिन्न स्वरूप मानकर श्रद्धा सहित इन अत्यन्त सरस मधुरभावकी पोषक लीलाओंको पढ़ेंगे तभी कल्याण होगा। अतः कन्याओंकी साधना और फिर प्रभुके प्रसादकी कथाको कामदृष्टिसे नहीं उपासना दृष्टिसे श्रवण मनन और पठन करना चाहिये।

हाँ, तो व्रजमें कुछ कन्याये थीं। उन्होंने श्रीकृष्णकी रूप-माधुरीकी प्रशंसा सुनी थी। श्रीहरिके गुणश्रवण मात्रसे ही उनके मनमें मदनमोहनकी मनमोहिनी मूरत गड़-सी गयी, सबका एक साथ एक ही संकल्प हुआ, श्यामसुन्दर हमारे पति हों, वे हमें अपनी अनुचरी किंकरीके रूपमें वरण करलें स्वीकार करलें। यदि किसी एक प्राकृत पुरुषमें अनेक कन्याओंका अनुराग होता और वे सभी उन्हें चाहतीं, तो उनमें सापत्न्य भाव—सौतिया डाह—की भी संभावना थी, किन्तु सर्वेश्वरके सम्बन्धमें तो यह कल्पना भी नहीं की जा सकती। यही नहीं सबका समान उद्देश्य होनेसे उन सबमें परस्परमें अत्यधिक अनुराग था। वे सब मिलकर अपनी इष्टसिद्धिके निमित्त प्रयत्नशील थीं। सामूहिक साधनमें सर्वदा संलग्न रहतीं, वे नित्य नये व्रत अनुष्ठान करतीं। उन सबका फल यही चाहतीं कि श्रीकृष्ण हमें अपना लें।

स्त्रियोंके लिये कार्तिक मासके स्नानका बड़ा माहात्म्य है। वैसे तो स्त्री पुरुष सभीके लिये कार्तिकस्नान परम पुण्यदायक है, किन्तु स्त्रियाँ इस व्रतको अत्यधिक करती हैं। जिन देशोंमें पूर्णिमाके पश्चात् महीना आरम्भ होता है, उन देशोंमें आश्विन की शरत् पूर्णिमासे यह स्नान आरंभ होकर कार्तिकी पूर्णिमाको समाप्त होता है। जिन देशोंमें अमावास्याके अनंतर महीना आरंभ होता है, उन देशोंमें दीपावलीसे आरम्भ होकर मार्गशीर्षकी अमावास्याको यह स्नान समाप्त होता है। इस व्रतमें यह आवश्यक है, कि सूर्योदयसे चार घड़ी पूर्व अरुणोदयमें अवश्य स्नान हो जाना चाहिये। अपने समीप कोई नदी हो, जलाशय हो तो उसमें स्नान करे, दोनोंके अभावमें कूपमें स्नान करे। हविष्य अन्नका एकबार भोजन करे, नमक न खाय, नियमसे ब्रह्मचर्य पूर्वक रहे। व्रतके समस्त नियमोंका पालन करे। वृन्दादेवी तथा पार्वतीजीका विधिवत पूजन करे, गीत गावे और ग्रामकी अथवा देवमंदिरकी परिक्रमा दे। और भी इसी प्रकारके नियम हैं।

नन्दव्रजकी कुमारी कन्याओंने सोचा—"कात्यानी देवी सुनते हैं सभी अभीष्टोंको पूर्ण करनेवाली हैं। कुमारी कन्याओं की एकमात्र आन्तरिक इच्छा यही होती है, कि हमें सर्व सद्गुण सम्पन्न पति प्राप्त हो। श्यामसुन्दरसे बढ़कर सर्वगुण सम्पन्न पति और कहाँ प्राप्त होगा। अतः उनकी प्राप्तिके लिये हम विधिवत् कार्तिक स्नान करें और कात्यानी देवीका पूजन करें। इस प्रकार विचारकर और परस्परमें सम्मतिकर उन सब ने एक महीनेके व्रतका निश्चय किया। दीपावलीके दीपक जलाकर उन्होंने इस व्रतको आरंभ कर दिया। वे प्रातःकाल अरुणोदयमें उठतीं सब उच्च स्वरमें सभीको घर-घर जा जाकर जगातीं और उनका नाम ले लेकर पुकारतीं—"हे सुशीले! उठो उठो।

हे शशिकले ! हे चन्द्रमुखि ! हे माधवी ! हे कदम्बवाले ! हे कुन्ती, हे यमुने, हे पद्ममुखी ! हे सावित्री ! हे पारिजाते ! हे जान्हवी ! हे सुधामुखी, हे शुभे ! हे पद्मे ! हे गौरि ! हे स्वयं प्रभे ! हे कालिके, हे कमले ! हे दुर्गे ! उठो उठो, चलो यमुना स्नान को चलें । देखो अरुणोदयमें स्नान न हुआ तो हमारा व्रत भंग हो जायगा । हे दुर्गे ! हे सारस्वति ! हे भारति ! हे गंगे ! हे अम्बिके ! हे सति, हे सुन्दरि ! हे कृष्णप्रिये ! हे मधुमति ! हे चम्पे ! हे चन्दननन्दिनी ! तुम सब भी अपनी सहेलियों को बुलालो । जो अभी सो रही हों उन्हें तुरन्त जगा दो ।" इस प्रकार अरुणोदयमें सम्पूर्ण व्रजभरमें हल्ला मच जाता । मातायें दधि मथने लगतीं और अपनी कुमारी कन्याओंको जगाकर कहतीं—"बेटी ! देख, तेरी सहेलियाँ खड़ी हैं, तुरन्त वस्त्र लेकर जाओ यमुनास्नान कर आओ । रेशमी साड़ी पहिन जाओ ।

सभी कन्यायें श्रीकृष्णका ध्यान करती हुईं, उनके सुखद संगमकी लालसासे रोमाञ्चित शरीरसे, उन्हींके नाम और गुणों का गान करती हुई यमुनामें जाकर—सब मिलकर—हँसतीखेलती किलोलें करती स्नान करतीं । वस्त्र पहिनतीं, फिर किनारेपर आकर सब कात्यायनी देवीकी वालुकामयी मूर्ति बनातीं । सभी अपनी मूर्तिको आगे रखकर विधिपूर्वक आवाहन करतीं, फिर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय और स्नानके लिये सुगंधित जल देतीं । वस्त्र, सूत्र, चन्दन, अक्षत, पुष्प, पुष्पमाला, धूप, दीप, विविध भाँतिके नैवेद्य, ऋतुफल, पुङ्गीफल, ताम्बूल, जल दक्षिणा तथा सभी छोटे बड़े उपहारोंसे उनकी पूजा करतीं । अन्तमें अत्यन्त भक्ति भावसे दोनों हाथोंकी अञ्जलि बाँधकर विनती करतीं—"हे कात्यायनि ! हे महामाये ! हे महायोगिनी ! हे अधीश्वरी ! नन्दगोपकुमार श्यामसुन्दर हमारे पति बन जायँ वे हमें अपनी अनुचरी मानकर अपनालें ऐसा वर हमें आप

दीजिये। हम आपके पादपद्मोंमें पुनः पुनः प्रणाम करती हैं। इसी भावके मन्त्रसे प्रार्थना करतीं और इसी भावके मन्त्रका वे जप भी करतीं।

अन्तमें देवीकी प्रतिमाका विसर्जन करतीं। उस वनकी अधिष्ठातृ देवी वृन्दाका पूजन करतीं उनकी परिक्रमा करतीं, दीपोंकी पंक्तियाँ उनके आगे रखतीं और सूर्योदयके पूर्व ही कृष्णकीर्तन करती हुई घर लौट आतीं। घरमें आकर यद्यपि वे तनसे घर गृहस्थीके काज करती रहतीं, किन्तु उनका मन सदा मनमोहनकी रूप माधुरीमें ही निमग्न रहता। घरपर आकर वे बिना नमक हविष्यान्नका एकान्तमें बैठकर भगवान्का भोग लगाकर प्रसाद पातीं। इस प्रकार वे नित्य ही बड़े भावसे नन्दनन्दन हमारे पति हों, इस संकल्पसे स्नान करतीं और भद्रकाली देवीकी पूजा करतीं। इस प्रकार करते-करते उन्हें एक महीना बीत गया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! श्रीकृष्णके निमित्त जो कोई कुछ करता है, उनसे जो प्रेम करता है, वह उनसे कुछ छिपा तो रहता ही नहीं है, घट-घटमें रहनेवाले घनश्याम सबके मनकी बात जानते हैं और उत्कंठा तीव्र होनेपर उसे पूर्ण भी करते हैं। ये कुमारियाँ बड़े कष्टसे जाड़ेमें काँपती हुई नित्य स्नानके लिये जातीं। श्रीकृष्ण उनके आन्तरिक प्रेमको समझते थे, अतः उनकी इच्छा पूर्ति करनेका उन्होंने निश्चय किया। जैसा सरस खेल उन्होंने खेला उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।

छप्पय

करि पूजा सब नियम करें दुर्गे ! जगदम्बे।
नन्दनँदन पति होहिँ देहु वर वरदे अम्बे ॥
यों हविष्य करि असन नियम व्रतके सब साधें।
श्रद्धा भक्ति समेत भगवतीकूँ आराधें ॥
सुखद सरस लीला करी, प्रेम निरखि निष्कपट हरि।
अपनाईं चिरसङ्गिनी, सब दोषनिकूँ दूरि करि ॥

चीर हरण लीला

एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः ।
भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नन्दसुतः पतिः ॥१

(श्रीभा० १० स्क० २२ अ० ५ श्लो०)

छप्पय

पट यमुना तट धरें न्हायँ नित नङ्गी जलमहँ ।
करन कृतारथ कृष्ण गये छलतें तिहि थलमहँ ॥
जल विहार मिलि करें उलीचें सलिल परस्पर ।
लै सबके पट चढे कदंवपै नागर नटवर ॥
सङ्ग सखनिके हँसत हरि, धरि अधरनि पै बाँसुरी ।
डरति लजति थर-थर कँपति, सब सुकुमारी सुन्दरी ॥

जीव उन्नति करना तो चाहता है, किन्तु जीवपनेको छोड़ना नहीं चाहता । मनुष्य कुलीन और प्रतिष्ठित तो बनना चाहता है, किन्तु इस शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरसे यह सब नहीं चाहता । जो शरीर प्राप्त है, वही श्रेष्ठ कहावे, उसीकी प्रशंसा

---

१ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! इस प्रकार जिनका चित्त श्रीकृष्णमें ही लगा है, ऐसी कुमारियोंने एक महीने तक व्रत किया और नन्दकुमार श्यामसुन्दर हमारे पति हों, इस भावनासे भगवती भद्रकाली का भली-भाँति पूजन भी किया ।

करें। इसी प्रकार साधक आत्मसमर्पण तो करना चाहता है, किन्तु अपने 'अहं' को बचाये रखना चाहता है। दाता धनको दान कर देगा, किन्तु दातापनेके अभिमानको—सर्वस्वदान करने पर भी—बचाये रखेगा। उसे दान करना वह जानता भी नहीं उसके अधिकारकी बात भी नहीं। दातापनेके अभिमानको तो गृहीता ही छुड़ा सकता है। वही सर्वस्व लेकर अनावृत-नग्न-कर सकता है। जबतक बीचमें वस्त्रों पटोंका रक्षा है, तब तक आत्म-समर्पण कहाँ ? प्रेम व्यवधान नहीं चाहता, प्रेमी और प्रियतमाके बीचमें कुसुमकी एक मालाके अन्तरायको भी प्रेम सहन नहीं कर सकता। जिसे हमें अपना सर्वस्व सौंपना है। तन, मन तथा धन सब कुछ उनके चरणोंमें समर्पित करना है, उससे एकान्तमें भी परदा करना यह समर्पणका स्वरूप नहीं। किन्तु इस परदेको हटाना साधककी सामर्थ्यके बाहरकी बात है, वह स्वेच्छासे निरावृत नहीं हो सकता। श्याम ही उसके वस्त्रोंको उठा ले जायँ उसे वसनविहीन बना दें, तभी सर्वात्मसमर्पण हो सकता है। श्रीकृष्णको पति बनाकर भी आवरण न हटा, तो वे यथार्थ पति नहीं कहलाये जा सकते और न वे मिथ्या लज्जावती सखी सह-चरी भी नहीं हैं। श्रीकृष्ण जिसे अपनाते हैं। पहिले उसे विवस्त्र बना देते हैं। पुनः उन्हीं पटोंको प्रसादी बनाकर लौटा देते हैं, फिर वे अपने पट न होकर पीतपटधारीके प्रसादी पट बन जाते हैं। उनके प्रसादको पाकर तो जीव कृतार्थ ही हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! उन कन्याओंने शरदऋतुमें अन्य गोपिकाओंके साथ बैठकर बनवारीकी वेणुमाधुरीका पान किया था, रूपमाधुरीका पान तो वे करती ही रहती थीं। जबसे वे जनमी हैं तभीसे निरन्तर लीलामाधुरीका पान करनेसे उनके कान तृप्त ही नहीं होते थे। वेणुमाधुरीने तो उनके रोम-रोममें मादकता भर दी। वे श्रीकृष्णके प्राप्तिके लिए व्रत अनुष्ठान करने

रुगीं। हेमन्त ऋतुमें वे अरुणोदयमें स्नान करने जातीं। सभी भोली बालिकायें थीं। इस पापी प्रेमने उनके अन्तःकरणमें एक प्रकारकी खलबली मचा दी थी, नहीं तो वे संसारी बातोंको कुछ जानती ही नहीं थीं। मातायें कह देतीं—"बेटी! रेशमी साड़ी पहिन जाना ऊनी चादर ओढ़ जाना। ऊनी और रेशमी वस्त्रोंमें छूआछूत नहीं। सूती वस्त्र तो एक बार पहिन लेनेपर जहाँ शरीर से पृथक् हुआ कि फिर उसे धोकर ही पहिनते हैं, किन्तु रेशमी और ऊनी वस्त्रोंको जितनी बार चाहें उतारें जितनी बार चाहें बिना धोये पहिन लें कोई दोष नहीं। उन्हें पहिनकर भोजन भी कर सकते हैं, उन्हींसे शौच भी जा सकते हैं। जाड़ेके दिन थे, कन्यायें रेशमी धोतियोंको पहिनकर जातीं, ऊपरसे ऊनी चद्दरें ओढ़ जातीं। नंगे पैरों कृष्णकीर्तन करती हुई यमुना किनारे पहुँचतीं। सब एक ही अवस्थाकी थीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी वर्णोंकी व्रजकुमारिकायें थीं किन्तु अधिकांशमें सब गोपिकायें ही थीं। और तो ऐसे ही एक दो नाम मात्रको थीं। वे सबकी सब यमुना किनारे घाट पर अपने वस्त्रोंको रखकर नंगी होकर जलमें घुस जातीं स्नान करतीं। परस्परमें एक दूसरीकी भुजाओं को पकड़कर, गीत गातीं, क्रीड़ा करतीं, जल विहार करतीं और कुछ देर तक इसी प्रकार एक दूसरीपर पानी उलीचती हुई आनंद में तन्मय हो जातीं। फिर जाड़ा लगनेपर जलसे बाहर निकलकर वस्त्रोंको पहिनतीं और देवीकी पूजा करके सूर्योदयसे पहिले-पहिले अपने-अपने घर आ जातीं।

स्त्रियोंके स्नान करनेका घाट पृथक् था, अतः वहाँ कोई पुरुष तो जाता नहीं था, इतने सवेरे बड़ी गोपिकायें भी नहीं जाती थीं अतः वे निःसंकोच होकर खिलवाड़ करती रहतीं। कुमारावस्था के लड़कोंमें तो परस्परमें कुछ शील सङ्कोच दुराव किन्तु लड़कियोंमें कुछ नहीं रहता। वे अपने

भी आपसमें व्यक्तकर देती हैं। इस प्रकार विधि विधानपूर्वक व्रत करते हुए उन्हें पूरा एक महीना हो गया। उनके व्रतमें यह घड़ा छिद्र रह गया, कि ये अरुणोदयमें जाकर वरुण देवताका अपमान करतीं। नियम ऐसा है, स्नान करने जाय तो पहिले वरुण देवताकी स्तुति करे, उनसे स्नानकी आज्ञा ले। सचैल जलमें प्रवेश करे, बुड़की मारकर निकल आवे, पुनः जलका पूजन करे यथाधिकार सन्ध्या तर्पण करके निकल आवे। ये नंगी ही जलमें घुस जातीं। यह वरुणदेवकी अवहेलना थी, अनुष्ठानमें बड़ा छिद्र था।

यह सुनकर शौनकजीने चिन्तित होकर पूछा—"सूतजी! विधिहीन कर्म तो निष्फल हो जाता है। विधिहीन यज्ञके कर्ताका शीघ्र ही नाश हो जाता है। विधिहीन व्रत, अनुष्ठान सब व्यर्थ बन जाता है, तो उनका यह सब निष्फल हुआ क्या ?

इसपर सूतजी बोले—"भगवन् ! जो स्त्री, धन, पुत्र तथा अन्यान्य सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्तिके निमित्त सकाम कर्म किये जाते हैं, ऐसे कर्म तो विधिके अधीन होते हैं, किन्तु जो कर्म कृष्ण प्रीत्यर्थ केवल श्रीकृष्णको पानेकी इच्छासे ही किये जाते हैं ऐसे निष्काम कर्म कैसे भी किये जायँ वे कभी निष्फल नहींहोते। श्रीकृष्णके प्रेमकी याचना करना उन्हें पति रूपमें वरण करनेका निश्चय करना, ये कोई सांसारिक कर्म नहीं हैं। इन सबमें यदि कोई विधिकी त्रुटि रह भी जाती है, तो श्यामसुन्दर उसे स्वयं पूरी कर देते है। छोटी बच्ची पिताको माला पहिनाती है और वह सिर तक नहीं पहुँच पाती, तो पिता स्वयं ही सिरको नीचा करके माला पहिन लेता है। श्रीकृष्णके निमित्त कुछ करना चाहिये वह सदोष हो, निर्दोष हो, टेढ़ा हो, सीधा हो कैसा भी क्यों न हो, अन्तमें श्रीकृष्ण उसे स्वीकार कर ही लेते हैं।

उन कन्याओंने स्वच्छ हृदयसे—सच्ची लगनसे—एक मास

साड़ियाँ लटका दीं ये रंग बिरंगी साड़ियाँ उस वृक्षपर बड़ी ही भली प्रतीत होती थीं।

सब ग्वालबाल नीचे खड़े खड़े हँसने लगे। भगवान्के वैसे तो सहस्रों सखा थे, किन्तु उनमें बारह प्रधान थे। उनके नाम श्रीदामा, सुदामा, वसुदामा, सुबल, सुपार्श्व, सुभाङ्ग, सुन्दर, चन्द्रभानु, वीरभानु, सूर्यभानु, वसुभानु तथा रत्नभानु थे। इनसे भगवान्का कोई छिपाव नहीं था। ये सब छायाकी भाँति श्यामसुन्दरके साथ रहते थे।

नीचे खड़े खड़े ही श्रीदामा बोला—"अहा! इस वृन्दावनकी शोभा कैसी अनुपम है, यहाँ एकसे एक विचित्र घटना घटित होती हैं।"

इसपर वसुदामा बोला—"तुमने यहाँ कौन-सी विचित्र घटना देखी ?"

श्रीदामा बोला—"अरे, भाई! तुम प्रत्यक्ष नहीं देख रहे हो। कदम्ब पर पुष्प और फल तो सर्वत्र लगते हैं, किन्तु यहाँ कदम्ब पर वस्त्र फले हैं। डार डार पर पात पात पर रेशमी साड़ियाँ फर रहीं हैं। अब कोरियोंके यहाँ जानेकी आवश्यकता न पड़ेगी। किन्तु यह सारा कदम्ब तो लुगाइयोंका पक्षपात करता है। इस पर जितने वस्त्र फर रहे हैं, सब लुगाइयोंके ही हैं, यदि ऐसा ही कोई लोगोंके लिये फरने लगे, तो आनन्द आ जाय। मैं तो नित्य धोती बदला करूँ।"

इस पर चन्द्रभानु बोला—"अरे सारे! तू तो पोंगा ही रहा। अरे, कदम्ब पर कहीं वस्त्र फरते हैं, यह तो किसी धोबीने धोकर कदम्ब पर सुखा दिये हैं। देख इसके ऊपर एक काले रंगका धोबी बैठा है।"

यह सुनकर सभी तालियाँ बजा बजाकर चिल्लाने लगे—"धोबी है, धोबी है।"

श्रीकृष्ण भी ठठाका मारकर हँस रहे थे और वंशी बजा रहे थे। ग्वालबालोंकी हँसी और मुरलीकी मधुरध्वनि सुनकर गोपिकाओंका ध्यान उधर आकर्षित हुआ। उन्होंने कदम्बपर अपने वस्त्रोंको देखा। किनारेकी ओर दृष्टि दौड़ायी। जहाँ वस्त्र रखकर वे गयी थीं, वहाँ एक भी वस्त्र नहीं है। कदम्बपर मन्द मन्द मुसकराते हुए माधव मधुर स्वरमें मुरली बजा रहे हैं, ग्वालबालोंको हँसा रहे हैं। अब तो वे सब रहस्यको समझ गयीं। 'श्यामसुन्दरने हमारे साथ विनोद किया है, हमें छकाया है क्या श्यामसुन्दर हमारे मनोगत भावोंको जानते हैं? क्या हम से उतना प्यार करते हैं। बिना प्यारके कोईइतनी मधुर खिलवाड़ कर ही नहीं सकता। इस भावके आते ही सबके रोम रोम खिल उठे। किन्तु इन्होंने हँसी बड़ी भौंड़ी की। भला बताइये हमें बिना वस्त्रकी बना दिया।'

भीतर तो उनके आनन्द उमड़ रहा था, किन्तु ऊपरसे प्रेमका कोप प्रकट करती हुई वे बोलीं—"श्यामसुन्दर! यह बात अच्छी नहीं है। ऐसा हास परिहास शोभनीय नहीं है। हमारे वस्त्रोंको जहाँसे उठाया है वहीं रख दो।"

श्रीकृष्ण हँसते हुए बोले—"मैं तुम्हारा कुछ नौकर तो हूँ ही नहीं जो तुम्हारी बेगार करूँ। तुम्हें अपने वस्त्र लेने हैं, तो यहाँ आकर ले जाओ।"

गोपियाँ बोलीं—"नौकर नहीं तो चोर तो हो, हमारे पीठ पीछे हमारे वस्त्रोंको चुरा ले गये। यह कुछ अच्छी बात है?"

श्रीकृष्ण बोले—"समय बड़ा बुरा आगया। किसीके साथ उपकार करो, तो वह उलटा उपकारीको ही अपराधी ठहराता है। यदि हमें चोरी करनी होती, तो चोरी करके भाग जाते, यहाँ बैठकर वंशी क्यों बजाते। हमने तो सोचा—तुम्हारे वस्त्र यहाँ बालूमें रखे हैं, इतने सुन्दर वस्त्र हैं मैले हो जायेंगे लाओ इन्हें

अच्छी प्रकार टाँग दें। सो, हमें धन्यवाद देना तो पृथक् रहा उलटी हमें चोर बता रही हो।"

गोपिकायें बोलीं—"हमारे तो धूलिमें ही अच्छे हैं, जहाँ से तुमने उठाये हैं वहीं रख दो।"

श्रीकृष्ण बोले—"जिस वस्तुको मैं एक बार उठा लेता हूँ, फिर उसे वहाँ उस रूपसे नहीं रखता। माँगने वालेको प्रसाद

रूपमें उसे देता हूँ। तुम्हें प्रसाद लेना हो, तो मेरे पास आकर अपने अपने वस्त्रोंको को ले जाओ।"

गोपिकाओंने कहा—"श्यामसुन्दर, देखो! बहुत छेड़खानी अच्छी नहीं होती। गुलगुली उतनी ही करनी चाहिये जितनी से आँखोंमें आँसू न आवें। बहुत हँसी हो गयी अब हमारे वस्त्र हमें दे दो।"

भगवान् गम्भीर होकर बोले—"कैसी हँसी। मैं तो हँसी करना जानता ही नहीं। मैं हँसी नहीं कर रहा हूँ, तुमसे सत्य सत्य कह रह रहा हूँ। तुम देर मत करो, जाड़ेके दिन हैं, अधिक जलमें रहना उचित नहीं। तुम सबकी सब काँप रही हो। सबके दाँत बज रहे हैं, आ जाओ और अपने अपने वस्त्र ले जाओ।"

कुपित होकर गोपिकाओंने कहा—"बड़े साँचाधारी बने हो; झूठे कहीं के। अब तुम हमें बहुत खिजाओ मत, चुपचाप हमारे वस्त्रोंको दे दो।"

श्रीकृष्ण बोले—"ब्रजवालाओ! तुम मेरी बातपर विश्वास नहीं करती हो, तो मेरे इन सखाओंसे पूछ लो। कोई कह दे कि मैंने आज तक कभी भूलमें भी झूठ बोला हो। न मैंने पहिले कभी झूठ बोला, न अब ही बोल रहा हूँ। तुम एक एक करके मेरे पास आओ अपने अपने वस्त्रोंको ले जाओ। एक एक आने में असुविधा प्रतीत होती हो, तो सब एक साथ ही आकर वस्त्र ले जाओ। यहाँ बैठे बैठे मैं सबको वस्त्र दूँगा, किन्तु जलसे निकलकर मेरे निकट आना होगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गोपियोंने देखा, कि श्रीकृष्ण तो अपने वचनोंपर दृढ़ हैं, वे हँसी नहीं कर रहे हैं। उनके वचनोंमें दृढ़ता है, ये मानेंगे नहीं। हमें ये नग्न देखना चाहते हैं, किन्तु हम स्त्री होकर पुरुषके सम्मुख अनावृत कैसे जा सकती हैं। हाय! इनके आगे बिना वस्त्रके जाना होगा। इस वि

आते ही उनके रोम रोम खिल उठे। अंगोंमें सिहरन और ऐंठन होने लगी। इतने सरस विनोदके स्मरणसे ही वे प्रेममें निमग्न हो गयीं। वे लज्जावश एक दूसरीको ओर रहस्यमयी दृष्टिसे देखकर मुसकराने लगीं, किन्तु जलसे नग्न होकर निकलनेका उनका साहस न हुआ। भगवान् क्रोध नहीं कर रहे, गम्भीर होकर नहीं कह रहे थे। हँसते हँसते सरसतामें पगे हुए प्रेमपूर्वक मन्द मन्द मुसकराते हुए कृपा कटाक्ष करते हुए कह रहे थे। इससे उन सबका चित्त उनकी ओर और भी अधिक खिंच गया। दोनों ओरसे जब प्रेमाकर्षण होता है, तो उसमें एक अद्भुत विवशता सी अनुभव होने लगती है। जाड़के दिन थे कंठ पर्यन्त जलमें वे खड़ी थीं। छातीको जलसे बाहर निकाल नहीं सकती थीं। केवल उनके केशपास और कमलके समान खिले हुए मुख ही दिखाई दे रहे थे। मानों कमलके ऊपर काली सिवार लहरा रही हो। वे काँपती हुई श्रीकृष्णसे पुनः कुछ कहनेको उद्यत हुईं।

छप्पय

सब बोलीं ब्रजबाल—लाल ! मति पाप कमाओ।
हैं हम नङ्गी नारि न ऐसी हँसी उड़ाओ॥
कँपति नीरमहँ खड़ीं दया हम सबपै कीजे।
उतरि कदँब तें कुँवर बसन हम सबके दीजे॥
कहँ कृष्ण—जलतें निकरि, अपने-अपने लेउ पट।
सुमुखि ! सुनहु साखी सकल, सखा करहुँ नहिँ छलकपट॥

व्रजबालाओंके व्रतकी सफलता

(६३६)

इढं प्रलब्धा स्त्रपया च हापिताः
प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः ।
वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुम्,
ता नाभ्यसूयन्प्रियसंगनिर्वृताः ॥१

(श्रीभा० १० स्क० १५ अ० १९ श्लो०)

छप्पय

मुनी श्यामकी सरस रहसमय अनुपम बानी ।
एक-एककी ओर निरखि मनमहँ मुसकानी ॥
पुनि बोलीं—घनश्याम ! निपट हम दासी तुमरी ।
अरपन सरबसु करें लाज लेओ मत हमरी ॥
कहहिँ श्याम—सुन्दरि ! सुनहु, यदि दासी तौ क्यों डरो ।
जैसो जो कछु कहहुँ हौं, तुम तैसो निर्भय करो ॥

---

१ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! भगवान्ने उन कन्याओंको ठगा, उनकी लोकलाजको तिलांजलि दिलायी, उनसे हँसी की, उन्हें कठपुतलियोंकी भाँति नचाया तथा उनके वस्त्रोंको भी चुराया । इतना सब करनेपर भी वे उनसे रुष्ट नहीं हुईं, यही नहीं उनकी इस क्रीडासे उनके साथ ऐसी मीठी-मीठी बातें करनेसे—वे परम प्रसन्न हुईं ।

भगवान्‌की प्राप्तिमें लज्जा, संकोच और भय ये ही अन्तराय हैं। जीव जबतक लोकलाज, सांसारिक संकोच के अधीन बना रहता है, तब तक उसे यह चिन्ता व्यथित करती रहती है, कि कोई क्या कहेगा। तबतक उसे भगवान्‌की प्राप्ति नहीं होती। जो कुछ शेष रखकर भगवान्‌की शरणमें जाता है, उसे भगवान् पूर्ण रीत्या नहीं अपनाते। जिसके मनमें कुछ दुराव है वहाँ भगवान् कैसे रहेंगे, जो निर्व्यलीक भावसे सर्वात्मना श्यामसुन्दरकी शरण जाता है, उन्हें सम्पूर्ण अपनापन सौंप देता है, उसकी इच्छा वे अवश्य पूर्ण करते हैं। उन्हें वे अभीष्ट वर देते हैं। अपनाते हैं और अपनी मधुराति मधुर लीलामें उन्हें सम्मिलित कर लेते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्रीकृष्णलीला प्रसङ्गमें मैं एक ही बातको बार बार कहूँगा। इसे आप पुनरुक्ति दोष न मानें। श्रीकृष्णकी लीलायें गोपिकाओंके संगसे अत्यंत ही सरस हैं, इनमें प्राकृत कामकी गंध न आने पावें, इसीलिये मुझे पुनः पुनः चेतावनी देनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है। ऊपरसे देखनेमें तो ये प्रसंग साधारण स्त्री-पुरुषोंके प्रेम प्रसंगसे ही प्रतीत होते हैं। किंतु ये तो भगवान्‌की प्रकृतिसे परेकी दिव्य चिन्मयी लीलायें हैं। ये तो आत्मा और वृत्तियोंकी क्रीड़ायें हैं। आत्मारूप श्रीकृष्ण अपने आपमें ही जब क्रीड़ा करते हैं, तो वे आत्मक्रीड़ कहाते हैं जब वे अपने अभिन्न स्वरूपमें रमण करते हैं तो वे आत्मरति कहाते हैं। साधक जब अपनेमें उनके संस्पर्शको प्राप्त करता है, तो वह कृतार्थ हो जाता है। अतः यह अनन्य साधना स्वीकृतिकी एक अति सरस लीला है।

श्रीकृष्ण उनका सर्वस्व अपहरण करके कदम्बपर बैठे हँस रहे हैं। गोपिकायें जलमें बैठी-बैठी आनन्दमें विभोर हो रही हैं, उनके रोम रोमसे आनन्द फूट रहा है, किन्तु लज्जावश वे जलसे बाहर आना नहीं चाहतीं। श्रीकृष्ण उनकी इस लज्जाको भी मिटा

देनेपर तुले हुए हैं। वे बीचमें व्यवधान नहीं चाहते। गोप कन्यायें दुखी नहीं थीं प्रसन्न थीं खीजी नहीं थीं, प्रेममें भीजी हुई थीं। वे विनय करती हुई बोलीं—"प्राणवल्लभ! देखो, ऐसा अन्याय मत करो। भला, तुम हमें नंगी ही कर दोगे, तो तुम्हें क्या मिल जायगा। यह बात तुम्हें शोभा देती है? तुम इतने बड़े ब्रजराजनंदजीके लाड़िले लड़ते लाला हो। यह भी नहीं तुम्हेंलोग बुरा कहते हों, सर्वत्र तुम्हारे गुणोंकी ख्याति है। तुम्हें दया नहीं आती? देखो, हम जाड़में थरथर काँप रही हैं?"

भगवान् बोले—"तुम अपने आप काँप रही हो; मैं वस्त्र देने को मना करता, तो तुम कहती भी। मैं तो तुम्हें देनेको तैयार हूँ, तुम मेरे पास आना ही नहीं चाहतीं। प्यासा कूएँके पासआता है, कूआ तो प्यासेके पास नहीं आता कि लो, पानी पी लो।"

उन कन्याओंमें चारों ही वर्णकी थीं। शूद्र किसीको वश करना चाहें, तो सेवाके द्वारा—विनयके द्वारा—दास वृत्ति करके वशमें कर सकते हैं। अतः जो शूद्र कन्यायें थीं, वे कृष्णसे वस्त्र प्राप्त करनेके लिये कहने लगीं—"श्यामसुन्दर! देखो, हम सब तुम्हारी दासियाँ हैं, हमारे ऊपर दया करो हमारे वस्त्रोंको हमें दे दो। बहुत रुलाओ मत।"

यह सुनकर श्यामसुन्दर कुछ बोले नहीं। उन्होंने निषेधात्मक सिर हिला दिया। तब उनमें जो वैश्य कन्यायें थीं वे विनय करने लगीं। वर्णाश्रमी प्रजामें वैश्य सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं। इसीलिये इनकी श्रेष्ठ या सेठ संज्ञा है। वर्णाश्रम धर्ममें क्षत्रिय तो जन्मसे ही शासक माने जाते थे, पूज्य होनेसे ब्राह्मणोंकी प्रजामें गणनाही नहीं होती थी। अब प्रजा कहलाने वाले वैश्य और शूद्र ये ही दो रह गये। उनमें श्रेष्ठ वैश्य होते थे। इनका मुख्य काम है व्यापार। व्यापार क्रोधसे विगड़ जाता है। इसीलिये व्यापारीको क्रोध नहीं करना चाहिये। उसे जिससे स्वार्थ साधना हो, उसके

ऊपरसे—अनुकूल हो जाना चाहिये, मीठी मीठी बातें करके उससे अपना कार्य निकाल लेना चाहिये, इसीलिये कहावत है—"बनिया गुड़ न देगा गुड़से मीठी बात कह देगा।" इसलिये जो वैश्य जातिकी कन्यायें थीं, वे कहने लगीं—व्रजचन्द्र! देखो, तुम हमारे वस्त्र दे दो, तुम जो भी कहोगे वही हम करेंगी।"

श्रीकृष्ण यह सुनकर मुसकरा गये, वे कुछ बोले नहीं। उनकी मुस्कराहटका भाव था, तुम जब मेरी सब बात माननेको तत्पर हो, तो निकलकर आतो क्यों नहीं।"

उन कन्याओंमें जो क्षत्रिय कन्यायें थीं, उनकी आँखें लाल हो गयीं। क्षत्रियका स्वभाव है, वह अपने प्रतिकूल आचरण देख नहीं सकता। अतः वे कहने लगीं—"देखो, श्यामसुन्दर! यह बात अच्छी नहीं है। आप सीधेसे हमारे वस्त्रोंको जहाँ रखे थे, वहीं रख जाओ। अभी तो हम सीधेसे विनयपूर्वक कह रही हैं। यदि तुम सीधेसे न माने, तो हम तुम्हारे बाबासे जाकर कहेंगी। वे भी न सुनेंगे, तो जिसके अधीन वे हैं उन महाराज कंससे जाकर कहेंगी, तब तुम सब हेकड़ी भूल जाओगे।"

हँसकर श्यामसुन्दर बोले—"इस जलमें न तो मेरे बाबा तुम्हें पूछने आवेंगे, न कंस राजा। जाना तो तुम्हें ही उनके पास होगा, फिर उतनी दूर जानेसे लाभ क्या? मैं वस्त्र देनेको मना तो कर ही नहीं रहा हूँ, जब तक तुम सब मेरे अत्यन्त निकट न आओ, तब तक तुम्हें प्रसादी पट प्राप्त नहीं हो सकते।"

उनमें जो ब्राह्मणकन्यायें थीं, वे धर्मका भय दिखाते हुए कहने लगीं। ब्राह्मणको जिससे कुछ कराना होता है, धर्मका भय दिखाता है। कोई अन्याय करता हो, तो उसके यहाँ धर्मके नामसे धरना देकर उसे अन्यायसे रोकता है। उसकी आजीविका ही धर्मसे है। अतः वे बोलीं—"हे नन्दनन्दन!

तुम धर्मके मर्मको जाननेवाले हो। यह तुम अधर्म कर रहे हो। नग्न स्त्रीका दर्शन निषेध है। इसलिये तुम धर्मकी मर्यादाको छिन्न-भिन्न मत करो हमारे वस्त्र हमें दे दो। हम तो तुम्हारे अधीन हो ही गयी हैं। हम तो आपकी किंकरी वन ही गयी हैं। आपकी सेवा प्राप्त करनेके लिये ही तो हमने यह सब किया है।

इसपर नंदनंदन बोले—"अच्छा यदि तुम मेरे अधीन हो, मेरी दासी हो, मेरी आज्ञा माननेको तत्पर हो, तो मैं आज्ञा देता हूँ मेरे समीप आ आकर अपने अपने वस्त्रोंको ले जाओ।"

कुमारिकायें अब क्या करतीं। इधर जाड़ेके कारण उनका शरीर थरथर काँप रहा था, उधर सूर्यदेव अपनी प्रिया प्रातः कालीन सन्ध्याके अञ्चलमें से निकलनेका उपक्रम कर रहे थे। कन्याओंने सोचा—"देर होनेसे सब गुड़ गोबर हो जायगा। अब श्रीकृष्णकी ही बात मानो यही सोचकर वे लजाती हुई हाथ से अपने गुह्य स्थानोंको ढककर जलके वाहर निकलीं और कदम्ब के नीचे खड़ी होकर बोलीं—"श्यामसुन्दर! अब बहुत हो चुका, अब हमारे कपड़े दे दो। हमने तुम्हारी आज्ञाका पालन कर दिया।"

आसपासमें जो सखा खड़े थे, उनसे भगवान‍्ने कहा— "देखो, इनका जो नैवेद्य रखा है उसे उठाकर एकान्तमें जाओ भोग लगाओ।'

गोपोंने कहा—"ले भैया! हम जाते हैं तू अपनी कानाफूँसी कर।" यह कहकर गोप सब दूर चले गये।

भगवान् उनके शुद्ध भावको देखकर अत्यन्त ही प्रसन्न हुए, उन्होंने बहुतसे वस्त्रोंको वृक्षकी शाखाओंसे उतारकर अपने कंधों पर रख लिया।

लड़कियोंने कहा—"हाय! श्यामसुन्दर! तुम कैसा अन्याय

कर रहे हो। लुगाइयोंके पहिने वस्त्रोंको अपने सिरपर चढ़ा रहे हो ?"

भगवान् बोले—"जो मेरे अपने निजके हो जाते हैं, उनमें स्त्री-पुरुषका भेद मैं नहीं देखता। ये तो वस्त्र ही हैं मैं उनकी चरणकी धूलिको अपनी आँखोंमें आँजता हूँ।"

गोपबालायें तो ये प्रेममें पगे अत्यन्त मधुर वचन सुनकर सिहर उठीं। उन्होंने गद्गद कंठसे कहा—"प्राणवल्लभ ! अब हमें अधिक लज्जित न करो, हमारे वस्त्रोंको हमें दे दो।"

भगवान् मंद-मंद मुसकराते हुए बोले—"दे तो देता किन्तु एक अब भी त्रुटि रह गयी ? गोपबालाओंने पूछा—"वह क्या ?"

भगवान् बोले—"वह यह कि तुम सबसे एक बड़ा अपराध बन गया। तुम्हारा सब इतने दिनका किया कराया व्रत चौपट हो गया। जलमें वरुणका निवास रहता है, अतः उसमें नग्न नहाना निषेध है। एक तो वैसे ही नग्न नहीं नहाना चाहिए। फिर तिसपर तुम अनुष्ठानमें थीं, व्रत कर रही थीं। तुम महीनेभर तक नंगी नहाईं इससे तुम्हारे द्वारा वरुणजीका बड़ा भारी अपराध हो गया है। उसका तो तुमने कुछ प्रायश्चित्त किया ही नहीं।

यह सुनकर कन्यायें तो डर गयीं। वे सबकी सब धर्मभीरु थीं। इस बातकी ओर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया था, वे चिन्तित होकर बोलीं—"हाँ, प्राणवल्लभ ! यह अपराध तो हमसे बन गया है, किन्तु हमने जान बूझकर यह अपराध नहीं किया है। अज्ञानमें अनजानमें यह अपराध बना है, इसका क्या प्रायश्चित्त करना होगा ? आप तो सर्वज्ञ हो, हमें इसका प्रायश्चित्त बता दें।"

भगवान् बोले—"देखो, पाप दो प्रकारके होते हैं, एक शुष्क दूसरे आर्द्र। जो जान बूझकर हठपूर्वक वासनाओंकी पूर्तिके

लिये पाप किये जाते हैं, वे आर्द्र पाप हैं। उनमें भी छोटे बड़े का भेद है। बड़े पापोंके लिये गरम काँचको पीकर प्राण छोड़ना पर्वतसे कूदकर, अग्निमें जलकर, उपवास करके प्राणोंको छोड़ना ये प्रायश्चित्त हैं। उनसे कम पापोंके लिये कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत, जप, तप अनुष्ठान बताये हैं। जो अज्ञानसे अनजानमें पाप बन जाते हैं वे शुष्क पाप हैं, उनका प्रायश्चित्त भी थोड़ा होता है। जैसे किसी न देखने योग्य वस्तु पर दृष्टि चली गयी, न छूने योग्य वस्तु छू ली। ऐसे पापोंका सचैल स्नान करना या सूर्यदेवको देखकर उन्हें प्रणाम करना इतना ही प्रायश्चित्त पर्याप्त है। मुख्य प्रायश्चित्त तो है पश्चात्ताप। पाप करके जिसे पश्चात्ताप नहीं होता है, उसके सब प्रायश्चित्त व्यर्थ हैं। पाप करनेके पीछे जो मनमें पछतावा—पश्चात् संताप—होता है, उसे ही पश्चात्ताप कहते हैं। जिनका पाप करनेका स्वभाव होता है। पुरुष कामी हो, स्त्री स्वैरिणी व्यभिचारिणी हो, उन्हें नित्य पाप करके भी पश्चात्ताप नहीं होता। उनका प्रायश्चित्त तो यमराज करेंगे। नरकके कुण्डोंमें पचा-पचाकर चिरकाल तक उन्हें वे ही यातनायें देंगे। तुमसे जो भूलमें पाप हुआ है, उसका यही प्रायश्चित्त है, कि तुम भक्ति भावसे सूर्यदेवको नमस्कार करो और

"नमो विवस्वते ब्रह्मन भास्वते विष्णुतेजसे
जगत् पवित्रे-शुचये नमस्ते कर्मसाक्षिणे।

इस मंत्रको पढ़कर उनसे पवित्रताके लिये प्रार्थना करो।

कुमारियोंने श्रद्धा भक्तिपूर्वक पूर्वकी ओर देखकर सिर झुका कर प्रणाम किया। हँसते हुए भगवान् बोले—"अब भी त्रुटि रह गयी।"

"अब क्या त्रुटि रह गई ? श्यामसुन्दर !" उन सबसे दीन-वाणीसे कहा।

भगवान् बोले—"प्रणाम करनेकी यह विधि थोड़े ही है, कि

एक हाथ कहीं रुका है, दूसरा कहीं रखा है भारतीय संस्कृतिमें, बड़े लोगोंको प्रणाम करनेका नियम यह है, कि दोनों हाथोंकी अञ्जलि बाँधकर, अञ्जलिको सिरपर रखकर, अपना नाम गोत्र लेकर, उनके चरणोंमें सिर रखकर अभिवादन करना चाहिये। तुम्हारी प्रणाम भी पूरी नहीं हुई।"

यह सुनकर उन्हें चेत हुआ। वे सोचने लगीं—"जबहम इन्हें पति रूपमें वरण करनेको व्रत कर रही हैं और ये हमें अपनानेके लिये उद्यत हैं, तो फिर इनसे क्या लज्जा। "लाग लगगई तबलाज कहाँ री।" उनके हृदयका अंधकार दूर हो गया। उन्होंने सबकुछ श्यामसुन्दरको अर्पण कर दिया। उन्होंने सोचा—"जब हमने अपना सब कुछ इन्हें अर्पणकर दिया, तो मुख तो इन्हें दिखाती हैं, दूसरे अंगोंको छिपाती हैं, यह भेदभाव अपनी आत्मासे नहीं किया जाता। अपने आप नंगे होनेमें कोई संकोच नहीं करता। ये तो हमारी आत्माके भी स्वामी हैं।" इस विचारके आते ही उनका संकोच छूट गया। भगवान्‌के वचनोंमे उन्होंने श्रद्धाभक्ति पूर्वक विश्वास किया। उन्होंने अनुभव किया कि वस्त्रहीन होकर स्नान करनेसे अवश्य ही हमारा व्रत खंडित हो गया है। व्रत खंडित होनेपर हमारे मनोरथकी पूर्तिमें देर होगी। अतः व्रतको निर्विघ्न पूर्ण करनेके निमित्त उन्होंने समस्त कर्मोंके साक्षी भगवान् नन्दनन्दनको प्रणाम किया, क्योंकि उनकी दृष्टिमें तो वे ही समस्त पापोंको दूर करनेवाले हैं। उन्हें प्रणाम करनेके अनन्तर उनकी आज्ञासे सूर्यको भी प्रणाम किया।

भगवान्‌ने जब देखा, इनके मनमें अब किसी प्रकारका भेद भाव नहीं है। ये मेरी आज्ञानुसार सब कुछ करनेको उद्यत हैं, तो उन्होंने प्रेमपूर्वक सबके वस्त्र दे दिये। वस्त्रोंको पहिनकर वे लज्जासे सिर नीचा किये हुए हाथोंकी अञ्जलि बाँधकर श्याम सुन्दरके सम्मुख खड़ी हो गयीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! आप इन गोपकन्याओंके प्रेम को तो देखिये। इनकी उत्कट साधनाकी ओर तो दृष्टिपात कीजिये। संसारमें कोई किसीसे प्रेम करे, जिससे प्रेम करे यदि वह उसके अनुकूल व्यवहार न करे, तो प्रेम द्वेषके रूपमें परिणित हो जाता है। यह प्रेम नहीं स्वार्थ है, वासनापूर्तिकी लालसा है। श्रीकृष्णने उनमें कैसी कैसी छल कपटकी बातें कीं। वे प्रसन्नता पूर्वक नहा रहीं थीं, चुपकेसे उनके वस्त्रोंको चुरा ले गये। उनसे कितनी देर तक हँसी विनोद करते रहे। स्त्रियोंके लिये जिस लज्जाका छोड़ना अत्यंत ही कठिन है उसे उन्होंने छुड़ाया। नग्ना वस्थामें उन्हें जलसे बाहर निकाला। जैसे नट कठपुतलियोंको नचाता है उसी प्रकार उन्हें नचाते रहे। यह करो, वह करो ऐसे प्रणाम करो। वे बेचारी सब कुछ करती रहीं। इन बातोंसे रुष्ट होनेकी तो कौन कहे, प्रत्येक बातमें उनका हृदय प्रेमसे परिपूर्ण हो जाता और वे प्रियतमकी प्रत्येक चेष्टायें दिव्य सरसताका अनुभव करतीं। उनके हृदयकमलकी कलियाँ खिल जातीं और प्रेममें विभोर होकर श्यामसुन्दरकी एक-एक चेष्टापर अपना सर्वस्व वार देतीं। ऐसा प्रेमका अलौकिक उदाहरण कहीं भी नहीं मिल सकता। वे तो नित्यसिद्धा थीं, उनके बिना इतना प्रगाढ़ प्रेम और कौन कर सकता है।

छप्पय

जानि विवशता निकरि वारितैं बाला आईं।
गुह्य अङ्ग कर ढाँकि सहमि सगरी सकुचाईं॥
हरि बोले—अपराध वरुनको कीयो तुम सब।
न्हाई नङ्गी करहु विनय करपुट सिरधरि अब॥
निज व्रतकूँ खण्डित समुझि, धर्मभीरु सब डरि गईं।
पाप प्रनाशक प्रभुचरन, कमलमाँहि प्रनमत भईं॥

व्रजबालाओंको वरकी प्राप्ति

(६४०)

याताबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः ।
यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः ॥१

(श्रीभा० १० स्क० १५ अ० २३ श्लो०)

छप्पय

प्रभु प्रसन्न है गये तुरत पट सबके दीये।
पाइ वसन प्रिय परस पहिन निजनिज तिनिलीये ॥
प्रेम विवश बनि गईं सकुचिकें श्याम निहारें।
पूजन-चाहें चरन न मुखतैं बचन उचारें ॥
जानि मनोगत भाव हरि, बोले बाधा ब्ररहु मति।
शरदनिशिनिमहँ रमन मम, संग करोगी सुखद अति ॥

एक कहानी है। दो तपस्वी तप कर रहे थे, एक था कच्चा एक था पक्का। कच्चेने तपस्याको गुड़का पूआ समझ रखा था,

---

१ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! व्रजबालाओंके व्रतसे सन्तुष्ट होकर भगवान् बोले—"हे साध्वियो! अब तुम सब मजमें अपने-अपने घर जाओ। तुम्हारा यह व्रत पूर्ण हो गया। जिस उद्देश्यसे तुमने यह व्रत लेकर कात्यायनी देवीका पूजन किया है, उसकी पूर्ति शरद् ऋतुकी रात्रियोंमें होगी। उन आनेवाली रात्रियोंमें तुम मेरे साथ रमण करोगी।"

उसने सोचा होगा, दस पाँच दिन तपस्या करनेसे भगवान् मिल जायँगे, उनसे सुख सामग्रीका वर पाकर आनंद उड़ावेंगे, चैनकी वंशी बजावेंगे। अतः देखा देखी यह तपस्या करने एक पीपलके वृक्षके नीचे बैठ गया। दूसरा साधक सच्चा था, उसका उद्देश्य भगवान्को पाना ही था, प्रभु प्राप्तिकी उसके अन्तःकरणमें उत्कट अभिलाषा थी। अपने सब सुखोंको छोड़कर एक इमलीके पेड़के नीचे तप कर रहा था। दोनों ही तपस्या करते थे। जो इमलीके नीचे था, उसने बहुत पहिले तपस्या आरंभकी, उसकी देखा देखी पीपलके पेड़के नीचेवालेने प्रारम्भकी थी, कुछ दिनोंके पश्चात् वीणा बजावत हरिगुण गावत भगवान् नारदजो उधर आ निकले। सच्चे साधकने उठकर प्रणाम किया और विनय की— भगवन! आप सदा भगवान्के लोकमें आते जाते रहते हैं, भगवान् से यह पूछियेगा कि वे मुझे कब दर्शन देंगे?" इतनेमें ही वह दूसरा बोल उठा—"महाराज, मेरे लिये भी पूछ लेना।"

नारदजीने कहा—"अच्छी बात है, मैं विष्णुलोकको ही जा रहा हूँ। पूछकर आप दोनोंको बताऊँगा। यह कहकर वे वैकुण्ठ को चले गये। वैकुण्ठमें जाकर उन्होंने प्रभुके पादपद्मोंमें प्रणाम किया। पुनः प्रसंगानुसार उन दोनोंके प्रश्नोंको पूछा। भगवान् हँसे और बोले—"तुम उन दोनोंसे कह देना, जिन वृक्षोंके नीचे बैठकर तुम तप कर रहे हो, उनमें जितने पत्ते हैं उतने जन्मोंके अनन्तर मेरी तुम्हें प्राप्ति होगी।"

यह सुनकर नारदजी पहिले पीपलवाले तपस्वीके निकट आये और बोले—"भैया! जितने इस पीपलके वृक्षमें पत्ते हैं, उतने जन्मोंके अनन्तर तुम्हें भगवान्के दर्शन होंगे।" यह सुनकर उसे बड़ी निराशा हुई। सोचने लगा—"इतने दिन प्रतीक्षा कौन करे, चलो घरमें तबतक संसारी सुख ही भोग लें फिर देखा जायगा।" यह सोचकर वह तपस्या छोड़कर चला गया।

तब नारदजी इमलीके पेड़वाले साधकके पास आये और बोले—"भगवान्‌ने कहा है, जितने इमलीके पेड़में पत्ते हैं उतने जन्मके अनन्तर तुझे मेरी प्राप्ति होगी।" यह सुनकर साधकके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। वह बारबार पूछने लगा—"सच बताइये, भगवान्‌ने स्वयं यह बात अपने श्रीमुखसे कही है" नारदजीके आश्वासन देनेपर वह तपस्या छोड़कर हँसने लगा, उछलने लगा, कूदने लगा। आनन्दमें विभोर होकर पागलोंकी सी चेष्टा करने लगा।

नारदजीने पूछा—"भाई! तुम इतने प्रसन्न क्यों हो रहे हो?"

उसने कहा—"भगवन्! अब एक अवधि तो निश्चित हो गयी। यह विश्वास तो होगया, कि भगवान् मुझे अवश्य मिलेंगे। इमलीके पत्तोंके बराबर जन्मोंको बिताना क्या कठिन है इस आशासे कि इसके अनंतर भगवान् मिलेंगे यह सब समय उनकी प्रतीक्षामें सुन्दर कटेगा।" उसका दृढ़ विश्वास और अत्युत्कट लगनको देखकर भगवान् तुरन्त प्रकट हो गये।

यहाँ इस कथाके कहनेका अभिप्राय इतना ही है, कि साधक जप, तप, अनुष्ठान, भजन, पूजन तथा अन्यान्य साधन तभी तक करता है, जब तक उसे भगवत् प्राप्तिका आश्वासन नहीं मिलता। अवधिका ज्ञान नहीं होता। दृढ़ आश्वासन मिलनेपर अवधिका ज्ञान होनेपर उसके समस्त साधन छूट जाते हैं फिर वह एकमात्र दिन गिनता हुआ प्रियतमकी प्रतीक्षामें ही काल यापन करता है। प्यारेकी प्रतीक्षामें पल पल कितना सुखद प्रतीत होता है। दिन गिनते-गिनते अनेक आशाओंको लगाते-लगाते समय बीतता है, कोई पल, क्षण ऐसा नहीं बीतता जिसमें अपने प्रियतमको उत्कट स्मृति दिनों दिन अत्युत्कट न होती जाती हो। पूर्वानुरागके अनंतर मिलनकी अवधिका ज्ञान होनेपर जो उत्कंठा

होती है, उसमें कितनी मधुरिमा है, कितनी तन्मयता है इसे बिना अनुभव किये कोई समझ ही नहीं सकता।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवानने गोपियोंके वस्त्र दे दिये। वस्त्र देकर मदनमोहनने उनका मन हर लिया। वह नीचा सिर किये हुए श्यामसुन्दरकी ओर लज्जा और संकोचके साथ उनकी ओर निहार रही थीं। वे बड़ी विवशताका अनुभव कर रही थीं उनके रोम रोमसे अनुराग निकल रहा था, प्रिय दर्शनसे उनके खिले हुए कमलके सदृश मुख अधिक रक्तवर्णके हो रहे थे। उनकी बार बार इच्छा थी प्यारेके अति कोमल अरुण चरणोंको अपने हृदयपर धारण करें। प्यारे अपने चरणोंको हमारे हृदयकी धुकधुकीपर धरकर उसे दबादें। हम उनके चरणों को कसकर दबाकर बैठ जायँ, उनका विधिवत् पूजन करें किन्तु ऐसा करनेका उनका साहस नहीं होता था। अबलाही जो ठहरीं। पुरुषकी स्वीकृतिके बिना नारी स्पर्श करनेका साहस नहीं करती, क्योंकि दैवने पुरुषसे चौगुनी लज्जा उसके हृदयमें जो भर दी है। वे सब कुमारी वस्त्र पहिनकर वहाँसे हटीं नहीं। वे चाहतीं थीं चली जायँ किन्तु श्यामसुन्दरने अपनी मीठी मीठी बातोंसे प्रेमपूर्वक चितवनसे उनके चित्तको ऐसा हर लिया था, कि प्यारेको छोड़कर उनके पैर वहाँसे उठते ही नहीं थे। प्रियतमके समागममें आसक्त हुआ उनका चित्त इतना अनुरक्त होगया था कि वे वहाँसे एक पग भी आगे न बढ़ सकीं। लजीली दृष्टिसे उन्हींकी ओर निहारती हुई वहाँकी वहीं खड़ी रहीं।

भगवानको अभी और प्रतीक्षा करानी थी। उन्होंने देखा इनके मनमें अभी कामभाव है। भगवान् जिसे अपनाते हैं और उसके मनमें कामभाव देखते हैं, तो स्वयं भी कामियोंकी-सी चेष्टा करके उसके कामको और बढ़ाते हैं। जब उनकी भावना उत्कट हो जाती है, प्रतीक्षा करते करते मनसे मलिन वासनायें

निकल जाती हैं, अन्तःकरण विशुद्ध बन जाता है—कामके स्थानमें हृदय प्रेमसे परिपूर्ण होजाता है—तब भगवान् सदाके लिये अपना लेते हैं। पहिले कामको भड़का देते हैं, जिसकी तड़पनसे समस्त अशुभ नष्ट हो जायँ। भगवान् समझ गये इन व्रतशीला कुमारियोंका कात्यायनीपूजनका संकल्प मेरे चरणस्पर्शकी कामना से ही है, तो वे उन अबलाओंसे बोले जिनका बल एक प्रकार रूप वासुदेव ही हैं।

भगवान्ने कहा—"साध्वियो! कुमारियो! व्रतशीलाओ! देखो, मैं तुम्हारे संकल्पको जानता हूँ, तुम मुझे यह मत समझो कि मैं किसीके मनके भावोंको न पहिचानता होऊँ। तुम्हारी इच्छा मुझे मालूम है। तुम मुझे पति बनाना चाहती हो न? यह कोई बुरी बात नहीं, मैं तो प्राणीमात्रका पति हूँ। तुम्हारे संकल्पका समर्थन और अनुमोदन करता हूँ। तुम्हारा संकल्प अवश्य सत्य होगा। तुम्हें मेरी प्राप्ति होगी।"

"कब होगी प्राणवल्लभ! हम तो मर रही हैं। इस प्रकार की विवशता तो अच्छी नहीं होती।" निराशा और दुःखके स्वरमें वे गोपबालायें बोलीं।

भगवान्ने कहा—"देखो, निराश होनेकी कोई बात नहीं। जब तक शरीर है तब तक इसमें काम भी रहता है क्रोध भी रहता है। काम संसारी बद्ध पुरुषोंके हृदयमें भी उठता है और भक्तोंके हृदयमें भी काम उत्पन्न होता है। अंतर इतना होता है। संसारी लोगोंके मनमें जो काम उठता है, वह संसारी विषय भोगोंको चाहता है और भक्तोंके हृदयकी कामनाका विषय मैं होता हूँ। वे अपने काम भावको मेरी ओर लगा देते हैं। जो काम भावको मेरी ओर लगा देता है, उसके काम भावको मैं अपनी महिमाके प्रभावसे भस्मसात् कर देता हूँ।"

गोपिकाओंने कहा—"श्यामसुन्दर! तुम तो बड़ी गूढ़ बात

कह रहे हो, यह बात हम अबलाओंकी बुद्धिमें भली भाँति बैठती नहीं।"

भगवान्ने कहा—"अच्छा, यह बताओ काम कहाँ होता है ?"

गोपिकाओंने कहा—"महाराज ! वह तो संकल्प द्वारा अन्तः करणमें होता है।"

भगवान्ने कहा—"हाँ, यथार्थ है। काम संकल्पसे ही होता है। जैसे हम जो कर्म करेंगे उसका पाप या पुण्य कुछ फल होगा, वह फल संचितमें मिल जायगा। उससे प्रारब्ध बनेगी जन्म मरणका चक्कर चलता रहेगा किन्तु मेरे निमित्त जो कर्म किये जायँगे उनसे कर्मबन्धन रूप बीज उत्पन्न न होगा।"

गोपिकाओंने कहा—"भगवन् ! यह कैसे हो सकता है। बीजको पृथिवीमें बोयें और अनुकूल खाद पानी मिलने पर भी उससे अंकुर उत्पन्न न हो। कर्म करेंगे तो उसका कुछ न कुछ फल तो अवश्य ही मिलेगा।"

भगवान्ने कहा—"ऐसी बात नहीं। बीजको तुम भूनकर या उबालकर पृथिवीमें बोओ, फिर चाहे उसमें कितनी भी खाद डालो कितना भी जल दो, उससे अंकुर उत्पन्न नहीं होगा। इसी प्रकार जो कर्म मेरे निमित्त किये जायँगे उनसे बंधन नहीं होगा, वे पुनः प्रारब्धको पैदा करनेवाले न होंगे। मेरा निरन्तरका चिन्तन समस्त अशुभ वृत्तियोंको नाश कर देता है। मेरे भक्तके हृदयमें प्रथम तो काम उत्पन्न ही नहीं होता, होता भी है तो वह नष्ट होनेके निमित्त होता है जैसे बुझनेवाला दीपक एक बार वेगसे जल उठता है।"

गोपकुमारियोंने कहा—"तब अब हम करें क्या ? हम तो व्याकुल हो रही हैं, कब तक प्रतीक्षा करें ?"

भगवान् बोले—"इस समय तो तुम अब अपने २ घर लौट जाओ। व्रत तो तुम्हारा पूर्ण हो गया। अब तुम्हें कोई व्रत

अनुष्ठान करनेकी आवश्यकता नहीं। अब तुम मेरे संगमकी प्रतीक्षा करो।"

निराशा और वेदनाके स्वरमें गोपकन्यायें बोलीं—"कब तक प्रतीक्षा करें, प्राणवल्लभ।"

भगवान् बोले—"अधिक नहीं, दस महीने और प्रतीक्षा करो। आश्विनकी पूर्णिमा आनेपर उन शरदकी सुहावनी रात्रियों में तुम मेरे साथ रमण करोगो।"

सूतजी कहते हैं—"इस प्रकार भगवान्‌की आज्ञा पानेपर उन व्रजबालाओंकी दशा सुख और दुःख, आशा और निराशाके बीचमें विचित्र ही हो गई। आशा तो इस बातकी थी कि दस महीने पश्चात् श्यामसुन्दरका संग होगा, निराशा इस बातकी थी कि आज वे अपने वक्षःस्थलपर श्यामके चरणारविन्दोंको रखकर अपने काम संतापको शान्त करना चाहती थीं, उसे श्यामसुन्दरने

स्वीकार नहीं किया। सुख तो श्यामसुन्दरकी स्वीकृतिका था और दुःख उनके वियोगका। वे जाना नहीं चाहती थीं किन्तु करतीं क्या? श्यामसुन्दर जानेको शीघ्रता कर रहे थे। उनका मनोरथ सफल हो गया था, प्रिय मिलनकी उत्कण्ठा और भी अधिक बढ़ गयी थी। इसलिये वे चितचोर श्रीकृष्णके चरणोंका ही चिन्तन करती हुईं व्रजमें लौट आईं और उसी शारदीय पूर्णिमाकी रात्रिकी प्रतीक्षा करने लगीं। एक-एक दिन गिनकर श्यामसुन्दरके चिन्तनमें ही कालयापन करने लगीं।

इसपर शौनकजी बोले—"सूतजी! यह लीला कुछ आवश्यकतासे अधिक सरस हो गयी। इसमें कुछ अश्लीलता आ गयी। भगवानको ऐसा करना उचित नहीं था।"

गंभीर होकर सूतजी बोले—"क्यों महाराज! अश्लीलताकी तो कोई बात नहीं। जब श्रीकृष्ण सर्वान्तर्यामी परात्पर प्रभु हैं, तो उनसे तो कोई बात छिपी नहीं रहती। अपने आपसे कोई संकोच करता है? यह शरीर पञ्चभूतोंका बना है, इसमें सर्वत्र पंचभूत ही व्याप्त हैं। हम कहें कि हमारे मुखको तो पृथिवी,जल, वायु और आकाश देखें। मल मूत्रको न देखें, तो यह क्या संभव हो सकता है? पञ्चभूतोंके बिना शरीरकी स्थिति नहीं। भगवान तो सभीमें समान रूपसे व्याप्त हैं, उनसे क्या दुराव। क्या जिस जलमें वे अपनेको नग्न नहीं समझती थीं, उस जलमें श्यामसुन्दर नहीं थे। फिर क्या हुआ। जलसे निकलकर वे आकाशमें आ गयीं इसमें अश्लीलताकी क्या बात?

दूसरी बात यह है, कि जब वे सब ही उन्हें पति बनाना चाहती थीं, तो पतिसे तो कोई छिपानेवाली बात रह नहीं जाती।

तीसरे भगवान्की समस्त लीलायें तो भक्तोंको सुख देनेके ही लिये होती हैं। भगवान्के यहाँ माखनकी कुछ कमी नहीं थी, गोपिकायें चाहती थीं कि श्यामसुन्दर हमारे घर आकर

माखन चुरावे, इसलिये वे उनके सुखके लिये चुराने जाते थे। इन गोपिकाओंकी आन्तरिक इच्छा थी, नन्दनंदन हमारे लज्जाके आवरणको हटा दें, तो भगवान्ने उनकी इच्छा पूर्ति की।

चौथे उन्हें लोक मर्यादा भी स्थापित करनी थी। नंगी न नहानेका उपदेश भी देना था, इसलिये यह ललित लीला रची। यदि कहो कि वैसे ही मना कर देते तो वैसे उनपर उसका प्रभाव ही न पड़ता। प्रत्यक्ष करके दिखानेसे प्रभाव अधिक पड़ता है।

पाँचवे व्रजबालाओंको अपने प्रगाढ़ प्रेमकी स्वीकृति देनी थी। उनके हृदयमें सरसताका संचार करना था, लौकिक कामको नष्ट करके उन्हें प्रेम प्रदान करना था इसलिये भी लीला करनी थी। भगवान्की लीलाएँ सभी ललित होती हैं। वे जो भी करते हैं, अच्छा ही करते हैं।

जो लोग भगवान्को ईश्वर नहीं मानते उनके लिये तो शंका को स्थान ही नहीं। भगवान्की उस समय अवस्था आठ साढ़े आठ वर्षकी होगी। अबकी बात छोड़ दीजिये पहिले ७।८ वर्षके लड़की लड़के नंगे डोला करते थे, नंगे नहाते थे। इस अवस्थामें कोई दूषित विचार उठते ही नहीं। इस प्रकार भी अश्लीलता नहीं। संकोच तो महाराज! द्वैधीभावमें होता है। हृदय जिसे एक बार अपना मान लेता है, वहाँ संकोच छूट जाता है।

शौनकजीने कहा—"सूतजी! आपका कथन तो यथार्थ है किन्तु लोकदृष्टिसे यह अच्छा नहीं लगता।

सूतजीने कहा—"महाराज! ये लौकिक लीलाएँ थोड़े ही हैं, दिव्य चिन्मय अप्राकृत लीलायें हैं। यह तो प्रेमकी पराकाष्ठा है। जैसे जीव प्रेमके लिये तड़पता रहता है। प्रेमकी खोज करता रहता है, वैसे ही भगवान् भी तड़पते रहते हैं। जीव उनकी ओर एक पग बढ़ाता है, तो वे ९९ पैर बढ़कर उसे छातीमें चिपटा

लेते हैं। भगवान् जो वनोंमें, गोष्ठोंमें, गाँवोंमें, गौओं और गोपियोंके पीछे पीछे घूमते रहते हैं, वह केवल प्रेमोंकी ही खोजमें घूमते हैं। जो उनसे प्रेम करता है, वह कितनी भी दूर क्यों न हो, उसे वे समीप बुलाकर अपना लेते हैं, दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं। देखिये, मथुराके ब्राह्मणोंकी पत्नियोंके मनोरथको उन्होंने किस प्रकार पूर्ण किया।"

शौनकजीने पूछा—"सूतजी! मथुराकी विप्र पत्नियोंका क्या मनोरथ था और भगवान्ने उसे किस प्रकार पूरा किया, कृपा करके इस कथाको भी हमें अवश्य सुनाइये। भगवान्की प्रेमकी कथाओंमें तो बड़ा आनन्द आता है।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है, महाराज! जिस प्रकार भगवान्ने मथुराकी विप्र पत्नियोंपर कृपाकी उस प्रेम प्रसंगको भी मैं सुनाता हूँ, आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

सुनत श्याम वर बचन भयो सुख-दुख सँगमनमहँ।
हरि आयसु सिर धारि चलीं सब हठवश व्रजमहँ॥
आइ नियम व्रत भूलि प्रतीक्षा करहिँ सदाहीं।
कब मनमोहन मोद भरैं सबके मनमाहीं॥
इत व्रजबाला व्रज गईं, श्याम सखनि सँग बन गये।
निरखि सफल पुष्पित द्रुमनि, तिनहिँ संत समुभत भये॥

कीर्तनीयः सदा हरिः

सचित्र

"भागवत चरित"

सप्ताह

—:o:—

लेखक—श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

जिन लोगों ने श्री ब्रह्मचारीजी द्वारा लिखित "भागवती कथा" पढ़ी होगी, उन्हें विदित होगा कि इसमें प्रत्येक अध्याय के आदि में और अन्त में एक एक छप्पय होती है। ये छप्पय परस्परमें सम्बन्धित होती हैं। केवल छप्पयों को ही पढ़ते जाओ, तो पूरी कथायें क्रमबद्ध आ जायँगी। कहना चाहिये 'भागवती कथा' इन छप्पयों का भाष्य मात्र ही है। इन सब छप्पयों को सात भागों में बाँटकर उनमें भी अध्याय बना दिये गये हैं। बीच बीच में जोड़ने को कथा प्रसंग दोहा, सोरठा, छन्द तथा पद भी सम्मिलित कर दिये गये हैं। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और उनके भक्तोंके चरित्रसे युक्त यह पद्य काव्य साहित्य की एक अपूर्व वस्तु हो गयी है। भगवद्भक्तों के लिये तो रामायण की भाँति पाठ करने के लिये यह अलौकिक वस्तु है। सात दिनों में पारायण करने से भागवत सप्ताह का पूर्ण फल इससे प्राप्त हो जायगा। विलायती सुन्दर चिकने कागज पर इसे छपा रहे हैं। साधनों के अभाव में अभी पाँच सहस्र प्रतियाँ हम छाप रहे हैं लगभग ८००।९०० पृष्ठ इसमें रहेंगे। सैकड़ों सादे और रंगीन चित्र भी रहेंगे। न्योछावर लगभग ५.२५ न० पै० सजिल्द आज पत्र लिखकर प्रति सुरक्षित करा लें।

पता—संकीर्तनभवन, प्रतिष्ठानपुर झूसी [प्रयाग]

॥ श्रीहरिः ॥

श्री बदरीनाथ-दर्शन

(श्रीब्रह्मचारीजीका एक अपूर्व महत्वपूर्ण ग्रन्थ)

श्रीब्रह्मचारीजीने चार पाँच बार श्री बदरीनाथजीकी यात्रा की है। यात्रा ही नहीं की है वे वहाँ महीनों रहे हैं। उत्तराखण्डके छोटे बड़े सभी स्थानोंमें वे गये हैं उत्तराखण्ड कैलाश, मानसरोवर, शतोपन्थ, लोकपाल और गोमुख ये पाँच स्थान इतने कठिन हैं कि जहाँ पहाड़ी भी जानेसे भयभीत होते हैं। उन स्थानोंमें ब्रह्मचारीजी गये हैं वहाँका ऐसा सुन्दर सजीव वर्णन किया गया है, कि पढ़ते-पढ़ते वह दृश्य आँखोंके सम्मुख नृत्य करने लगता है। उत्तराखण्डके सभी तीर्थोंका इनमें सरस वर्णन है, सबकी पौराणिक कथायें हैं। किंवदन्तियाँ हैं, इतिहास है और यात्रावृत्त है। यात्रा सम्बन्धी जितनी उपयोगी बातें हैं, सभीका इस ग्रन्थमें समावेश है। बदरीनाथजीकी यात्रा पर इतना विशाल महत्वपूर्ण ग्रंथ अभी तक किसी भाषामें प्रकाशित नहीं हुआ। आप इस एक ग्रंथसे ही घर बैठे उत्तराखण्डके समस्त पुण्यस्थलोंके रोमाञ्चकारी वर्णन पढ़ सकते हैं। अनुभव कर सकते हैं। यात्रामें आपके साथ यह पुस्तक रहे तो फिर आपको किसीसे कुछ पूछना शेष नहीं रह जाता लगभग सवा चार सौ पृष्ठकी सचित्र सजिल्द पुस्तकका मूल्य ४. रुपया मात्र है थोड़ी ही प्रतियाँ हैं, शीघ्र मँगावें।

—:०:—

पता—संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर झूसी (प्रयाग)

शोक शान्ति

(श्रीब्रह्मचारीजीका एक मनोरञ्जक और तत्वज्ञानपूर्ण पत्र)

इस पुस्तकके पीछे एक करुण इतिहास है। मद्रासके सुन्दर प्रान्तका एक परम भावुक युवक श्रीब्रह्मचारीजीका परम भक्त था। अपने पिताका इकलौता अत्यन्त ही प्यारा दुलारा पुत्र था। त्रिवेणी संगमपर अकस्मात् स्नान करते समय डूबकर मर गया। उसके संस्मरणोंको ब्रह्मचारीजीने बड़ी ही करुण भाषामें लिखा है। पढ़ते-पढ़ते आँखें स्वतः बहने लगती हैं। फिर एक सालके पश्चात् उसके पिताको बड़ा ही तत्वज्ञानपूर्ण ५०। ६० पृष्ठोंका पत्र लिखा था। उस लिखे पत्रकी हिन्दी और अँगरेजीमें बहुत सी प्रतिलिपियाँ हुईं उसे पढ़कर बहुत-से शोकसन्तप्त प्राणियोंने शान्ति लाभ की। इसमें मृत्यु क्या है इसको बड़े ही सुन्दर ढंगसे मनोरञ्जक कथायें कहकर वर्णन किया गया है, लेखकने निजी जीवनके दृष्टान्त देकर पुस्तकको अत्यन्त उपादेय बना दिया है। अक्षर-अक्षरमें विचारक लेखककी अनुभूति भरी हुई है उसने हृदय खोलकर रख दिया है। एक दिन मरना सभीको है अतः सबको मृत्युका स्वरूप समझ लेना चाहिये, जिन्हें अपने सम्बन्धीका शोक हो, उनके लिये तो यह रामबाण औषधि है। प्रत्येक घरमें इस पुस्तकका रहना आवश्यक है। ४० पृष्ठकी सुन्दर पुस्तक-का मूल्य .३१ न० पै० मात्र है। आज ही मँगानेको पत्र लिखें समाप्त होनेपर पछताना पड़ेगा।

—:※:—

पता—संकीर्तन भवन प्रतिष्ठानपुर झूसी (प्रयाग)

॥ श्रीहरिः ॥

हिन्दू-धर्म, हिन्दू-संस्कृति, हिन्दी भाषा का सरस सुबोध और सरल सर्वोपयोगी बृहद् ग्रन्थ

"भागवती कथा"

लेखक—श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

श्री ब्रह्मचारीजी हिन्दी भाषा में एक अत्यन्त ही उपादेय वृहद् ग्रंथ लिख रहे हैं। इसमें समस्त वेद, शास्त्र, पुराण तथा धर्म ग्रन्थों का सार सिद्धान्त रहेगा। पुराणों की चुनी हुई सरल, रोचक शिक्षाप्रद कहानियाँ बड़ी ही ललित भाषा में लिखी जा रही हैं, यह ग्रंथ खंडशः प्रकाशित हो चुके हैं। प्रति मास लगभग ढाई सौ पृष्ठका प्रायः एक खण्ड प्रकाशित होता है। जिसमें एक रंगीन चित्र ७-८ सादे चित्र भी रहते हैं। एक खण्ड का मूल्य १.२५ न० पै० और .९० न० पै० डाकव्यय पृथक्। जो सज्जन १५.१२ न० पै० भेजकर स्थायी ग्राहक बन जायँगे, उन्हें सभी खण्ड रजिष्ट्री से भेजे जायँगे। पूरा ग्रंथ लग-भग १०८ भागों में प्रकाशित होगा। प्रथम खण्ड पढ़कर आप इसकी उपयोगिता समझ जायँगे। सभी श्रेणी के विद्वानों ने इस ग्रंथकी भूरि भूरि प्रशंसा की है, विशेष विवरण जानने के लिये .३१ न० पै० के टिकट भेजकर "भागवती कथा की बानगी" मँगावें। सूचीपत्र बिना मूल्य मँगवाइये।

सब प्रकारके पत्र व्यवहारका पता —

पता—-संकीर्तन-भवन, प्रतिष्ठानपुर झूसी [प्रयाग]

श्रीभागवत चरितकी आरती

भागवत चरित अमृत पीजे।
आरती सब मिलिके कीजे ॥

दयाके सागर हैं यदु चन्द, गहे अजने तिनिपद अरविन्द।
कमलमुख झरें सुधाके विन्दु, तिनहिं पीपीके नित जीजे ॥१॥आरती०

नामको रसना करिके गान, करै मन मोहन मूरति ध्यान।
नयन निरखें सबथल भगवान्, कृष्णको कीर्तन नित कीजे ॥२॥आरती०

यदि जब चरितन की आवै, पुलक तनु सबरो है जावै।
प्रेम सब अंगनिमें छावै, भावमें भक्त रहें भीजे ॥३॥आरती०

हियेपै चढ़े भक्तिको रङ्ग, मिलै भक्तनिको नित सतसंग।
काज सबकरें कृष्णहित अंग, व्यरथ नरजीवन नहिं छीजे ॥४॥आरती०

प्रेम अरु लयतें सब गाओ, पार भव सागर है जाओ।
पदुम-पद-रज प्रभुकी पाओ, आरती भक्त वृन्द लीजे ॥५॥आरती०